अध्याय-सूची

१—माङ्गलिका	३	३२—वेणु-वादन	१८६
२—गोकुल	८	३३—वत्सोद्धार	१९१
३—मथुरा	१४	३४—बक-वध	१९५
४—श्रीबलराम	२२	३५—व्योम-वध	१९९
५—श्रीकृष्णचन्द्र	२८	३६—अघ-अर्दन	२०३
६—कंस की कूटनीति	३८	३७—वन-भोजन	२१०
७—जय कन्हैयालाल की	४४	३८—विधि-विडम्बना	२१४
८—वंदे नंदनंदनं देवं	५३	३९—ब्रह्म-स्तुति	२२१
९—पूतना-परित्राण	६२	४०—गो-चारण	२२६
१०—दुग्धपान	७४	४१—कालिय-मर्दन	२३३
११—शकट-भञ्जन	७८	४२—धेनुक-वध	२४५
१२—नामकरण	८५	४३—दधि-दान	२५०
१३—भूमि का भाग्य	९०	४४—दुग्धा की होली	२५५
१४—व्रजराज के प्राङ्गण में	९३	४५—प्रलम्ब का पाखण्ड	२५८
१५—अन्न-प्राशन	९९	४६—दावानल-पान	२६३
१६—तृणावर्त-त्राण	१०४	४७—गोवर्धन-पूजन	२६९
१७—वर्षगाँठ	१०९	४८—गिरिधर	२७५
१८—बालक्रीड़ा	११३	४९—गोविन्द	२८३
१९—मृद्-भक्षण	११८	५०—दिव्यदर्शन	२८८
२०—फल-विक्रयिणी	१२४	५१—चीर-हरण	२९४
२१—विप्र का सौभाग्य	१२८	५२—विप्र-पत्नियाँ	३०२
२२—व्रजजनानन्द	१३२	५३—मदन-विजय	३१०
२३—माखन-चोर	१३६	५४—मान-भङ्ग	३१९
२४—तस्कराणां पतये नमः	१३९	५५—महारास	३२८
२५—दामोदर	१४७	५६—सुदर्शन-उद्धार	३३३
२६—कर्ण-वेध	१५७	५७—शङ्खचूड़-वध	३३८
२७—गोकुल-परित्याग	१६१	५८—अरिष्ट-संहार	३४१
२८—वृन्दावन	१६९	५९—केशी-वध	३४६
२९—ऊधम	१७२	६०—अक्रूर का आगमन	३५१
३०—गोदोहन	१७६	६१—मथुरा-प्रस्थान	३६०
३१—गोपाल	१८१	६२—नगर-दर्शन	३७०

अघ-अर्दन

एवं विमृश्य सुधियो भगवत्यनन्ते सर्वात्मना विदधते खलु भावयोगम् ।
ते मे न दण्डमर्हन्त्यथ यद्यमीषां स्यात्पातकं तदपि हन्त्युरुगायवादः ॥

—भागवत ६ । ३ । २६

अघ—पाप के मुख में अनन्त काल से प्राणी स्वतः प्रविष्ट हो रहे हैं। वे प्रविष्ट होते हैं क्रीड़ा के लिये—सुखबुद्धि से। पच जाते हैं वहाँ। नष्ट हो जाते हैं।

असुर अघ ने कितनों को भ्रान्त किया, कितनों को पचाया, कोई गणना नहीं।

श्रीकृष्ण के सखा—उनके जन भी उसके मुख में पहुँच गये। नवीन बात थी उस दिन—उन्होंने श्यामसुन्दर से पूछा नहीं, उसे साथ नहीं लिया, बुलाया भी नहीं—उससे पृथक् आमोद क्रीड़ा करने चले!

'कुपथं तद्विजानीयाद् गोविन्दरहितागमम् ।'

गोविन्द से रहित हुए और अघ के उदर में गये। 'अमृषा मृषायते।' जो असत्य है, उसे सत्य और जो सत्य है, उसे असत्य—अघ की—अघरूप इस संसार की यही तो माया है। इसके परम दुःखद, महाभीषण रूप को रोचक, सुखद मानकर ही तो सब इसके दुर्गन्धपूरित मुख-विवर में प्रविष्ट होते हैं। प्रविष्ट हुए वे बालक भी; पर वे उन अनन्त जीवों में से नहीं थे, जिन्हें अघ ने पचा लिया था। श्रीकृष्ण के जन थे वे—संदेह हुआ, आशङ्का थी; पर 'कन्हैया जो है!'

'तथा चेद्बकवद् विनङ्क्ष्यति' 'इसने नष्ट करना ही चाहा तो श्याम इसे बक की भाँति मार डालेगा!' यह विश्वास था वहाँ। गये भी थे वे अपने सखा का मुख देखते हुए ही।

अघ ने मारा नहीं उन्हें—वह श्रीकृष्ण की प्रतीक्षा कर रहा था। श्रीकृष्ण—उनकी विस्मृति के बिना उनके जनों को अघ पचा सकता ही नहीं।

श्याम—जहाँ उसके सखा—उसके जन, वहाँ वह। उसे छोड़कर उसके सखा अघ के उदर में चले गये--क्रीड़ाबुद्धि ने उन्हें उससे दूर अघ के अन्तर में पहुँचा दिया--तब उसे भी वहीं होना ही चाहिये। सखाओं ने नहीं बुलाया तो वह स्वयं जायगा।

श्रीकृष्ण के सखा-जन भी क्रीड़ा-बुद्धि से अघ के अन्तर में जाते तो हैं—जाते हैं तो श्याम से दूर होकर ही जाते हैं, भ्रान्तिवश ही जाते हैं। अपने नित्य सखा की ओर देखते हुए जाते हैं।

वहाँ--अघ के अन्तर में पहुँचकर--वहाँ तो मूर्छित होना ही है। वहाँ स्मृति—चेतना रह नहीं जाती। मुग्ध हो जाते हैं।

श्याम जो सजग रहता है उनके लिये! वह स्वयं वहाँ आता है। अघ के मुख में ही वे श्रीकृष्ण का सांनिध्य पाते हैं! उन्होंने पुकारा नहीं--मूर्छित थे वे तो! श्रीकृष्ण आये थे—वे ही आते हैं।

'अघोऽपि यत्स्पर्शनधौतपातकः' यह क्या अघ रह जायगा जहाँ श्यामसुन्दर पहुँच जाय! वह अघ—सायुज्य प्राप्त हो गया उसे!

सखाओं ने प्रायश्चित्त किया? शुद्ध हुए?

किस लिये?— वे जहाँ गये, वह अघ तो अघ रहा ही नहीं। औरों के लिये ही अघ था वह। जिनके लिये अघ था, उन्हें पचा जाता था। वे प्रायश्चित्त करते निकल नहीं पाते थे। जिन्हें वह पचा न सका--उनके लिये सदा को वह क्रीड़ागह्वर हो गया।

श्रीकृष्ण के सखाओं ने जिसे क्रीड़ागह्वर समझा--उसे तो उनका क्रीड़ागह्वर ही बनना होगा! वह अघ है--रहे, जो विनोद श्रीश्यामसुन्दर के सखा चाहते हैं, वह तो उसे देना होगा!

वह भी उसी रूप में। वह अघ नहीं--क्रीड़ागह्वर, विनोद मात्र रहेगा। उसका विष—उसकीपतन-कारिणी शक्ति नष्ट होगी; क्योंकि कन्हैया के जन सुखबुद्धि से जब उसमें आये तो कन्हैया भी तो आयेगा वहाँ !

नित्य ही वह नटनागर अपने सुहृदों के लिये अघ—पाप को प्राणहीन क्रीड़ागह्वर बनाया करता है !

अघ--जो उस बकारि का मुख देखते नहीं प्रविष्ट होते, उन्हीं को पचा पाता है।

बक--पाखण्ड को जिसने चीर फेंका. उसके सखाओं को उसी बक का छोटा भाई अघ पचा लेगा ? आकर्षित करना मात्र उसके बस में है और तब वह मरता ही है।

बहुत पहिले—द्वापर में ही अपने सखाओं के लिये श्याम ने अघ को मार डाला। अमूर्त--आध्यात्मिक जगत् में नहीं--मूर्त जगत् में ! श्रीवृन्दावन धाम में !

× × × ×

आज श्यामसुन्दर अरुणोदय से पूर्व ही जग गया। सायंकाल ही उसने मैया को बार-बार सावधान किया था कि कल बड़े प्रातः बछड़ों को ले जाना है। उसके छीके में खूब-सा मक्खन, बड़ी मोटी रोटी, मिश्री—सब अभी रात्रि में ही रख दी जाय। कई बार उसने मैया को स्मरण कराया, कई बार पूछा कि छीका ठीक हो गया या नहीं। कभी सब वस्तुएँ जो छीके में रखनी होतीं, गिना देता और थोड़ी देर में स्मरण करके कहता—'मैया उसमें नमक भी रखना, मूली भी।' पता नहीं क्या क्या बताया। बड़ी कठिनता से मैया मना सकी उसे कि रोटी और मक्खन वह रात्रि के पिछले प्रहर में बनाकर ताजे रख देगी। अभी रखने से वे बासी हो जायँगे। 'भूल जाय तू तो ! देर हो जायगी !' माता को बहुत हँसी आती थी, फिर भी उसने विश्वास दिला दिया कि वह भूलेगी नहीं।

अब तक बछड़े पास ही चरते थे व्रज के। बालक कलेऊ करके जाया करते थे घरों से और मध्याह्न का भोजन वे घर पर आकर कर जाते थे। कल सबों ने परस्पर निश्चय किया कि अगले दिन थोड़ी दूर श्रीयमुनाजी के तट पर जहाँ खूब पुष्प खिले हैं, वे बछड़ों को ले जायँगे। वन में ही मध्याह्न के लिये भोजन-सामग्री लायेंगे। संध्या को घरों को लौटेंगे। सबने अपने घरों पर जाकर माताओं से यह बता दिया।

बाबा ने तो सरलता से आज्ञा दे दी, पर मैया मानती नहीं थी। 'श्यामसुन्दर दिनभर वन में रहेगा !' यह बड़ी दुःखद एवं आशङ्कापूर्ण कल्पना है। 'कल तो दाऊ भी साथ नहीं रहेगा ! उसके करों से गोदान कराना है ब्राह्मणों को। उसका जन्मनक्षत्र है कल।' लेकिन कन्हैया तो हठी है। वह सखाओं के साथ वन-भोजन का निश्चय कर आया है। अपनी बात छोड़ना जानता नहीं। उसके मनको दुःख भी नहीं होना चाहिये। समझाने का प्रयत्न सफल होते न देखकर मैया ने किसी प्रकार स्वीकृति दे दी है।

'मेरा छीका भर गया क्या ?' सम्भवतः उल्लास में श्रीकृष्ण सोया ही नहीं। आशङ्का के लिये कोई कारण नहीं था। मैया स्वयं अनेक पक्वान्न बनाने में लगी थी। जब भी कन्हैया ने पूछा, उसे उत्तर मिला—'तू तनिक नींद तो ले ले ! अभी तो बहुत रात्रि है !' इतने पर भी वह अँधेरा रहते ही उठ बैठा। और दिनों मुख धोने, कलेऊ करने, सबके लिये मैया को आग्रह करना पड़ता था; परन्तु आज तो बात ही दूसरी है। आज शीघ्रता श्यामको है। 'मेरा पटुका ? मेरा लकुट कौन ले गया ? दाऊ भैया पता नहीं कहाँ रख आता है रोज ऐसे !' कलेऊ भी थोड़ा ही किया उसने।

'भद्र को आने दे, बाबा के पास से; छीका वह ले जायगा !' माताने छीके में अनेक पदार्थ सजाये हैं। वह बहुत भारी है; परन्तु कन्हैया मानता कहाँ है। उसने बायें कंधे पर लटका लिया उसे। कटिकी कछनी में मुरली लगायी, दाहिने हाथ में वेत्र—लकुट लिया और बायें में शृङ्ग।

'बहुत दूर मत जाना ! सखाओं के साथ ही रहना ! बछड़े भाग भी जायँ तो उनके पीछे दौड़ने की आवश्यकता नहीं, वे घर चले आयेंगे ! यमुनाजी में स्नान करने या जल पीने मत जाना !' मैया पता नहीं कितनी चेतावनी देती, परन्तु श्याम तो हँसता हुआ द्वार से बाहर हो गया।

"धूतू, धूतू, धू, धू," गोपबालक चौंककर अपने-अपने छीके उठाने लगे। 'यह तो कन्हैया का शृङ्गनाद है!' नित्य तो सब अपने घरों से बाबा के द्वार पर प्रस्तुत होकर आ जाते हैं, तब कहीं आप सोकर उठते हैं, धीरे-धीरे मैया की मनुहार से मुख-हाथ धोकर कलेऊ करते हैं। मैया सखाओं को भी विवश करती है दुबारा श्याम के संग कलेऊ करने के लिये। इस प्रकार घड़ी-दो-घड़ी में तो निकल पाते हैं और आज.....आज सबको स्वयं बुलाने लगे हैं, इतना शीघ्र! भद्र चुपके दाऊ के पास माता रोहिणी के समीप आ गया था—वह आज दाऊ का छीका ले जायगा।

उत्सुकता सबको है। सभी कुछ शीघ्र उठे हैं। सबके छीके विविध व्यञ्जनों से भरे हैं। व्रज में रात्रि भर घर-घर कड़ाहियाँ छनन-मनन करती रही हैं। माताओं ने बालकों को कलेऊ करा दिया है। मुक्ता एवं गुञ्जा की माला, स्वर्णाभरण, मणिजटित कुण्डल, केयूर, दर्पणजटित अङ्गद प्रभृति आभूषणों से सब भूषित किये गये हैं। सब प्रथम निकलने के प्रयत्न में थे—लेकिन आज बाजी कन्हैया ने मार ली। वह शृङ्ग बजाकर सबको बुला रहा है, इतने जोर-जोर से शृङ्ग बजा रहा है, जैसे समझ लिया कि अभी सब सो रहे हैं, उन्हें जगाना है।

मयूरमुकुट मन्द-मन्द वायु में हिल रहा है, दोनों कर्णों के पद्मराग-कुण्डल कपोलों में प्रतिबिम्बित होकर झलमला रहे हैं, भाल गोरोचन की पीताभ खौर से ऐसा हो गया है जैसे नील जलद पर भास्कर की रश्मियाँ और भृकुटियों से ऊपर सीध में कुङ्कुमतिलक के मध्य मैया ने कस्तूरिका का कृष्णबिन्दु रख दिया है, भ्रमरशिशु परागपटल पर बिखरे दो पाटलदलों के मध्य आ बैठा हो जैसे। नेत्र कुछ ऊर्ध्वोत्थित हैं और चञ्चलता से इधर-उधर देख भी लेता है। अधरों में वही टेढ़ा शृङ्ग लगा है। वनमाला, मुक्तामाल, कङ्कण, अङ्गद आदि आभूषणों की चर्चा कौन करे। मैया ने आज अपने श्याम को खूब सजाया है।

सहस्रों उज्ज्वल, लाल, काले, पीताभ, कर्बुर, चित्र-विचित्र वर्ण वाले चञ्चल, सुपुष्ट बछड़े सम्मुख चल रहे हैं। वे चञ्चल कूदते हैं दौड़ते हैं और फिर पीछे मुख करके अपने अलौकिक चरवाहे की ओर देखने लगते हैं। उसे सूँघकर फिर कूदते हैं। गलियों से, गृहों से बछड़ों के यूथ-के-यूथ दौड़ते चले आ रहे हैं। यह मुख्य यूथ बढ़ता ही जा रहा है। बछड़ों के समूहों के पीछे उनके चरवाहे भी दौड़ते आते हैं। अन्ततः वे बछड़ों के बराबर तो दौड़ नहीं सकते। बछड़े अपने दल में और चारक अपने दल में बढ़ रहे हैं। शृङ्ग बजता ही जा रहा है। प्रत्येक सखा के आते ही श्याम उसकी ओर देखता है। उसकी दृष्टि में उल्लास है। वे नेत्र मानो कहते हों 'क्या करूँ, तुम नहीं आये तो मैंने बुलाया! अभी और तुमसे भी आलसी हैं, उन्हीं को बुलाने के लिये बजा रहा हूँ इसे!'

'अच्छा, आज तनिक शीघ्र उठ गये तो यह रंग!' सखाओं के नेत्र उत्तर देते जा रहे हैं। वे हँसते हैं खुलकर। 'शृङ्गनाद बज रहा है! प्रबुद्ध कर रहा है! श्यामसुन्दर बुला रहा है! कितने आलसी हैं जो नहीं सुनते, नहीं जागते, नहीं दौड़ते, क्या करे वह?' परन्तु व्रज में कोई आलसी नहीं। अट्टालिकाएँ भर उठी हैं। मार्ग के दोनों ओर पुरुष एवं वृद्धाएँ खड़ी हो गयी हैं। श्याम आज मध्याह्न में नहीं लौटेगा। पूरे दिन भर उसके दर्शनों से नेत्र दूर रहेंगे। एक बार देख लेने की लालसा सबको खींच लायी है।

शृङ्ग बज रहा है, बछड़े उछल रहे हैं, गोपबालक दौड़ते आ रहे हैं। कंधों पर छीके, हाथों में वेत्रदण्ड—स्नेहमय गोपबालक। मन्द गति से बछड़ों को आगे करके कन्हैया चला जा रहा है। राजपथ से ऊपर से पुष्प फेंके जा रहे हैं उस समूह पर—लाजा, अक्षत और दूर्वा भी। वृद्धाएँ आशीर्वाद दे रही हैं। विप्रवर्ग स्वस्तिवाचन कर रहे हैं। अधिकांश नेत्र बाष्परुद्ध किये अपलक हैं।

ऊपर—अट्टालिकाओं के ऊपर कूदता कपिदल साथ किलकता जा रहा है। पक्षियों के लिये जैसे उड़ने को और कहीं स्थान ही न हो। उनके पक्ष की छाया ने पूरे मार्ग पर छत्र लगा रक्खा है और वन-सीमान्त अपने अनन्त नेत्रों से प्रतीक्षा कर रहा है इस अद्भुत अतिथि की। पूरे वन के पशु सीमान्त पर आकर मुख उठाये ग्राम-मार्ग की ओर देख रहे हैं। मयूरों ने पंख फैलाकर नाचना प्रारम्भ कर दिया, बुलबुल फुदक-फुदक कर संवाद सुना आया, मृगों ने दीर्घ दृगों में आलोक

सजाया, बंद मुख से मृगराज ने गूज दी, कीर एवं कोकिल के कण्ठों से स्वागत-गान निकला—वनश्री का अधिष्ठाता वन में प्रवेश कर रहा है।

× × × ×

बछड़ों की गणना है कोई—कन्हैया ने अपने बछड़ों का यूथ पृथक् किया—सबने अपने-अपने बछड़े पृथक् करने चाहे! भला, चञ्चल बछड़े क्या भेड़ हैं जो एकत्र होंगे; अन्ततः सबको एक कर देना ठीक जान पड़ा। बड़ा विशाल है यह वत्स-यूथ। चरना किसे है—बछड़ों ने तो भरपेट दूध पिया है माताओं का। गोप-गण जानते हैं कि बछड़ों को आवश्यकता से कुछ अधिक दूध पिलाने से वे कम कूदेंगे और वन में बालकों को कष्ट न देंगे। बछड़े परस्पर खेलते या चरवाहों के साथ उछलते रहते हैं। कन्हैया से दूर जाना उनके स्वभाव में नहीं है।

बालकों ने देखा लाल-लाल गोल-गोल त्रिपत्रिका के फल, पीले सुचिक्कण कटेरी के फल, उज्ज्वल धारीदार मज्जिकाफल बड़े सुन्दर लगते हैं। किसी ने उन्हें अपने कङ्कण में बाँधा और किसी ने अङ्गद में लटकाया। कन्हैया के कुण्डलों के पद्मरागमणि बिम्बाफलों से द्विगुण हो गये। एक दूसरे के कानों पर आम के लाल-लाल किसलय उन्होंने रख दिये और लवङ्गलतिका, दन्तिका, माधवी के गुच्छों से सजाने लगे अपने आप को। अलकों में रङ्ग-विरङ्गे पुष्प ग्रथित हुए। कन्हैया ने मयूर-पिच्छ धारण किया है तो दूसरे शुक, नीलकण्ठ एवं हंसों के पिच्छ धारण करके चित्र-विचित्र शोभा से सम्पन्न हो गये।

'मैं तेरी भुजा पर कपोत बनाऊँगा!' एक छोटा-सा गोपबालक दुग्धोज्ज्वल मृत्तिका ले आया और उसने श्रीकृष्ण की दक्षिण भुजा अपनी गोद में रख ली।

'तेरे कपोत के चोंच और पद मैं रँग देता हूँ।' दूसरा गेरू लेकर वाम बाहु पर कुछ बनाते उसे छोड़कर दक्षिण बाहु के समीप आया। 'तू मेरे खञ्जन पर थोड़ी उज्ज्वल रेखायें तो खींच दे!'

'कनू, देख मैंने कितना बड़ा बंदर बनाया!' दो ने मधुमङ्गल के हाथ पकड़ लिये हैं और एक ने उसके पेट पर रामरज से बड़ा-सा पीला कपि चित्रित कर दिया है। सब किसी-न-किसी की पीठ, पेट, भुजा, वक्ष पर अपनी कला प्रदर्शित कर देना चाहते हैं। श्यामसुन्दर तो पूरा चित्रमन्दिर बन गया इस उद्योग में।

'मेरा छीका क्या हुआ?' श्रीदाम ने देखा, किसीने उसे कहीं खिसका दिया है! 'कन्हैया, यह परिहास अच्छा नहीं, तू छीका दे दे, भला!' यही नटखट सदा उसके पीछे पड़ा रहता है।

'मैं यहीं तो बैठा हूँ!' जैसे आप को कुछ पता नहीं।

'हूँ, तू अपना छीका उठा तो सही!' श्रीदाम ने बहुत ढूढ़-ढाँढ़ के पश्चात् देखा कि सुबल के कंधे पर उसका छीका बहुत मोटा दीखता है।

'पूरे ऊधमी हो तुम सब!' श्रीदाम इधर-से-उधर कहाँ तक दौड़े। सुबल ने पता लगते ही छीका दूसरे को दे दिया। उसके पीछे भागे तो उसने तीसरे को दिया। सब हँस रहे हैं ऊपर से। अन्तमें झल्ला उठा वह।

'ले! रो मत!' पास लाकर देने का नाट्य करके भी सब दे नहीं रहे हैं। बड़ी कठिनता से वह एक को पकड़ पाया। कदाचित् शान्ति देखकर देने के लिये ही वह पकड़ में आ गया। इस दौड़-धूप में कइयों के छीके, वेत्र, पटुके लुप्त हो गये। वही अन्वेषण, दौड़-धूप, उन्मुक्त हास्य।

'मैं छूऊँगा!' एक दौड़ा!

'छू चुका तू!' दूसरे की गति उससे तीव्र है।

—और सब-के-सब दौड़ रहे हैं। कहाँ? वह श्यामसुन्दर अपराजिता के गुच्छे देखने चला गया है न—बस, उसीके पास।

'कनू, देख! मैं तेरे-जैसी वंशी बजा लेता हूँ न?' एक सखा ने मुरलिका के छिद्रों पर अँगुली रक्खी।

'रहने दे अपनी पें-पें!' दूसरे ने शृङ्ग मुख से लगाया और 'धूतू-धू' करके कानन गुञ्जित कर दिया।

एक छोटा गोपबालक भौरों के साथ 'गुन-गुन' कर रहा है। दूसरे ने 'कुहू, कुहू' करके कोकिल को चिढ़ाना प्रारम्भ किया। पक्षी उड़ रहे हैं। बालक उनकी छाया पर दौड़ते चले जाते हैं। एक हंस के साथ धीरे-धीरे चरणक्षेप करता चलने का नाट्य कर रहा है और एक-दो बगुलों के साथ एक पैर पर स्थिर बैठने का अभिनय करने में लगे हैं।

'ताथेइ, ताथेइ, ता-ता थेइ, थेई, श्यामसुन्दर मयूर के साथ चारों ओर मुख घुमा-घुमाकर नाचने में लगा है। कुछ सखा ताल दे रहे हैं। एक ने एक बंदर के बच्चे को पकड़ लिया है। एक-दो बालक बाल-कपियों को पकड़ने के लिये उनके साथ पेड़ों पर चढ़ रहे हैं। बंदरिया दाँत दिखला रही है और वे भी दाँत दिखाकर उसे चिढ़ा रहे हैं। बंदरों के साथ कुछ कूदने में लगे हैं।

कुछ मेढ़कों के साथ बैठकर कूद रहे हैं, कुछ ने स्नान करना प्रारम्भ कर दिया और कोई बड़े जोर से हँस रहे हैं। गिरिराज से उस हास्य की प्रतिध्वनि आती है और वे फिर हँसते हैं। कुछ ने प्राप्त ध्वनि को पाजी, उजड्ड, नटखट, भीरु, ऊधमी, बनाया। सब खेलने में लगे हैं। आनन्द-क्रीड़ा—निश्चल हास्य!

बछड़े, मयूर, मेंढक, हंस, कपि, भ्रमर, पुष्प, बगुले—यहाँ तक कि जड पर्वत तक उनके सहचर हो गये हैं। श्रीकृष्ण उनमें क्रीड़ा कर रहा है और सब सचराचर क्रीड़ामय है उनके लिये। उनकी क्रीड़ा के ही लिये सम्पूर्ण प्रकृति-सम्भार है।

× × × ×

आज पहिली बार कन्हैया वनभोजन करने आया है। पहिली ही बार दाऊ के बिना वह वन में आया और पहिली ही बार इतनी दूर आया। पहिली बार कंस ने देखा भी अपने उस महाकाल को। वृन्दावन से गोप-बालक दूर आ गये हैं कुछ। मथुरा-नरेश अपने पार्षदों के साथ आखेट करने आये थे। बछड़ों का शब्द, वेणुरव, शृङ्गनाद, बच्चों की किलकारियाँ और प्रतिध्वनि को पुकार-पुकारकर डाँटना उन्होंने सुना। हृदय काँप गया। इस प्रकार अकस्मात् श्रीकृष्ण के सम्मुख होने को वे प्रस्तुत नहीं थे; फिर इस खुले कानन में? परंतु अपना भाव उन्होंने प्रकट नहीं होने दिया। बालक-मण्डली गिरिराज के पाद-प्रान्त में है, शिखर पर ऊँचाई से अपने को तरु-लताओं के ओट में करके कंसराज अपने दलके साथ इनकी क्रीड़ा देख रहे थे।

"कैसे उछल-कूद रहे हैं! एक श्वास में ही सबको खींचकर निगल जाऊँ।" अघासुर ने धीरे-धीरे अपने-आप कहा। उसकी अङ्गार-सी दृष्टि नीचे लगी थी। यह क्रीड़ा उसे असह्य लग रही थी। दूसरों का सुख यों ही कलुषित-प्रकृति लोगों को असह्य होता है, फिर वह तो सर्प ठहरा।

'यदि तुम ऐसा कर सको! मैं बड़ा प्रसन्न होऊँगा!' कंस ने उस अजगर की फुस-फुसाहट सुन ली। 'जाओ, सबको उदरस्थ कर लो! देखो, सावधान रहना, वह काला लड़का कहीं छिटककर भाग न जाय!' अघ को आदेश मिला। वह सरकता हुआ पर्वतशिखर से उतरा। घनी झाड़ियों में से खिसककर बालकों की दृष्टि बचाता उसके मार्ग में मुख फाड़कर शान्त पड़ रहा। जैसे उसमें प्राण ही न हों, निष्कम्प—निश्चल।

'हे प्रभु!' आकाश में विमानों की पंक्तियाँ लगी हैं। देवता श्यामसुन्दर की मनोरम क्रीड़ा देखने में तन्मय हो रहे थे। सहसा दृष्टि उस अजगर पर गयी। एक पल में सबने भयपूर्वक उस सर्पाकार महादैत्य को देखा। उनके विमान और ऊपर—ऊपर चले गये। 'इन बछड़ों और बच्चों से तो उसका उदर भरना है नहीं। कौन जाने ऊपर मुख करके श्वास खींच ले! अमृत पीकर अमर होना क्या अर्थ रक्खेगा उसके उदर की जठराग्नि में!'

'यह काला लड़का—इसी ने मेरी बड़ी बहिन पूतना को मारा और मेरे बड़े भाई बक को भी चीर डाला है!' अघासुर पड़ा-पड़ा सोच रहा था। 'मैं आज इसे और इसके सब साथियों को निगल जाऊँगा। मेरे बन्धु जहाँ गये, वहीं इन सबको भी भेज दूँगा! इन लड़कों के न रहने पर व्रजवासी स्वयं मृतप्राय हो जायँगे! महाराज को उनके मारने में कोई प्रयास न होगा!'

असुर बछड़ों और बालकों की ओर एकटक देख रहा था। वे खेलते, कूदते, उछलते धीरे-धीरे उसी की ओर बढ़े आ रहे हैं। पर्वत से कंस का दल और नभ से देववर्ग उत्सुकता, आशङ्का से वहीं दृष्टि लगाये हैं।

'अरे, यह क्या है ? बड़ी अद्भुत गुहा है यह तो !' भद्र की दृष्टि पड़ी अजगर पर। वही सबसे आगे है। उसने दूसरों को पुकारकर बताया। कन्हैया पीछे है। वह कलापी के साथ नाचने में तन्मय हो रहा है। शेष सब बालक दौड़ आये। बछड़े आगे ही हैं। वे पता नहीं क्यों ठिठक गये हैं।

'हम सब कभी इधर आये ही नहीं। वृन्दावन में यह कितनी सुन्दर गुफा है !" समीप खड़े होकर वे ध्यान से उसे देखने लगे हैं।

'ठीक ऐसी है, जैसे किसी अजगर का मुख हो !' सुभद्र ने कल्पना दौड़ायी।

'सच—हू ब हू अजगर के मुख-जैसी !' सुबल ने कल्पना को पूरा रूपक बना दिया। 'वह गैरिक भाग ऊपर का, उसपर सूर्य की किरणें पड़कर चमक रही हैं, जैसे वह ऊपर का ओष्ठ हो। उसीका प्रतिबिम्ब पड़ने से यह नीचे का भाग लाल होकर नीचे का ओष्ठ बन गया है। दाहिने-बायें काले पाषाण गैरिक स्तर में निकल आये हैं और उनमें से जल मन्द-मन्द स्रवित हो रहा है, जैसे लाला-लिप्त सर्प के दोनों जबड़े हों। ये उज्ज्वल-उज्ज्वल नुकीले पाषाण-शिखर दाँतों की भाँति लटक रहे हैं और यह खुरदरा चौड़ा द्विधा मार्ग जो इसमें जा रहा है, ऐसा लगता है जैसे सर्प की बीच से फटी जिह्वा हो। ऊपर दोनों गुफाओं से लाल-लाल ज्योति निकल रही है। वे अजगर के नेत्रों के समान जान पड़ती हैं। अवश्य भीतर दावाग्नि लगी है। वही उन गुफाओं से दीख रही है।'

'सर्प के श्वास के समान यह उष्ण वायु इसमें दावाग्नि के कारण ही तो आ रही है !' श्रीदाम ने भी अपना भाग पूरा किया। 'जैसे सर्प ने बहुत जीव खाये हों और उसकी श्वास में दुर्गन्ध हो। बेचारे पशु-पक्षी दावाग्नि में भस्म हो रहे हैं। उन्हीं की गन्ध आ रही है !'

'आओ, भीतर चलकर देखें !' मणिभद्र आगे बढ़ा !

'कन्हैया तो अभी वहीं नाच रहा है !' सुबल ने पीछे देखा।

'बछड़े भी सब हाँक लो भीतर ! हम सब इस अँधकार में, जो सर्प के मुख के समान जान पड़ता है, छिप जायँगे। श्याम को ढूँढ़ने तो दो !' श्रीदामा को दूसरा कौतुक सूझ पड़ा।

'कहीं यह सचमुच अजगर हुआ और भीतर जाने पर सबको गट् से निगल गया तो ?' मधुमङ्गल को इस दुर्गन्धित वायु से भरे अन्धकार में प्रवेश करना रुचिकर नहीं लग रहा है।

'तू तो डरपोक है !' भद्र ने परिहास किया। 'ऐसा हो भी तो बगुले की भाँति मर जायगा यह। कन्हैया कहीं चला नहीं गया है ! वह रहा--वह नाच रहा है !' ताली बजायी सबने इस बात पर। श्रीकृष्ण के मुखकी ओर देखा और अँधेरे में शीघ्रता से छिपने के लिये बछड़ों को सम्मुख दौड़ाते हुए घुस गये।

'हैं ! हैं !' श्यामसुन्दर सहसा चौंका। पुकारा उसने, परंतु बालकों को तो शीघ्र छिप जाने की धुन है। उन्होंने सुना ही नहीं।

'ओह !' एक क्षण के लिये मुख गम्भीर हो गया। 'इस दुष्ट के जीवन का क्या उपयोग—अपने लिये भी तो यह अपने घोर कर्मों से परिताप-संताप-पीड़ा ही प्रस्तुत करेगा ! मेरे सखा, मेरे बछड़े, उनका विनाश तो नहीं ही होना चाहिये।' कदाचित् कुछ इसी प्रकार की बातें सोच रहा है वह।

अघ—उसने अभी बच्चों और बछड़ों को निगला नहीं। वह काला लड़का तो अभी बाहर ही है। आ रहा है, वह भी आ रहा है। वह भीतर आये और मुख बंद कर लूँ !' प्रतीक्षा कर रहा है वह। वह आया उसके मुख में। खुरदरी जिह्वा पर चरण रखता सीधा गले तक चला गया। भय से विमानों पर देवता हाय-हाय करने लगे। कंस ने अट्टहास किया। उसके साथियों ने भी साथ दिया उसका।

'मुख बंद कर लूँ !' अघ ने सोचा। हाय-हाय, मुख तो बंद ही नहीं होता कदाचित् सब बछड़े और बालक गले के छिद्र में ही अटके हैं। उसे क्या पता कि वे तो मुख में पहुँचते ही

मूर्छित हो गये। गले तक तो वह नीलमणि सरक गया है और अकेला वही पूरे छिद्र को रोककर खड़ा है, जैसे महाकाय हो गया है वह।

गलेका गोल छिद्र, नासिका का मिलने वाला एक छिद्र और वहाँ, नेत्रों के स्नायुछिद्र—वह विशाल अजगर! बड़ी गिरिकन्दरा-सा उसका गला। परन्तु कन्हैया तो ऐसा वहाँ अड़ा, जैसे उसका शरीर वहीं निरोध के लिये ही गठित हुआ हो। कहीं से तनिक भी वायु निकल नहीं पाती। सर्प ने पूँछ पछाड़ी। शरीर मोड़ने का प्रयत्न किया। उसके नेत्र प्राणरोध से निकल आये। मस्तक में वायु भरने से वह गुब्बारे-सा फूलता जा रहा है। नस-नस फट रही है। जोड़-जोड़ उखड़ रहे हैं। अन्त में जैसे अधिक वायु भरने पर फुग्गा फूटता है, फड़ाक से मस्तक फट गया। बड़े वेग से वायु निकली। उसी वेग से उसके साथ मुख में स्थित सब बालक और बछड़े बाहर कोमल हरित तृण-भूमि पर गिर पड़े। पिचकारी में भरकर उन्हें बाहर फेंक दिया गया हो जैसे।

कन्हैया जैसे गया था, वैसे ही निकला। उसी जिह्वा पर चरण रखता मुख से ही। वायु के साथ दैत्य के शरीर से एक दिव्य ज्योति निकली। वह महाज्वाला के समान ज्योति इस प्रकार चारों ओर मँडरा रही थी, जैसे किसी की प्रतीक्षा में हो, किसी का अन्वेषण कर रही हो। श्याम-सुन्दर ने जैसे ही बाहर चरण रक्खा, वह उस चरण में ही प्रविष्ट हो गयी।

देवता हर्ष से जयनाद कर रहे हैं। गगन से पुष्प-वर्षा हो रही है। दूर—सघन वृक्षावलियों के पीछे स्तब्ध, मूक कंस अपने रथ पर बैठने जा रहा है मथुरा जाने के लिये और उसके अनुचर उसका अनुगमन कर रहे हैं। श्याम की दृष्टि यहाँ नहीं है। उसके सखा, उसके बछड़े अस्त-व्यस्त इतस्ततः घास पर मूर्छित पड़े हैं। बड़ी ही करुणापूर्ण दृष्टि से उसने उन सबों की ओर देखा। जैसे वे सब सोकर उठे हों, भागकर उन्होंने घेर लिया श्यामसुन्दर को।

'बड़ी भयंकर थी उष्णता और दुर्गन्ध!' सब-के-सब श्रीकृष्ण का एक-एक अङ्ग ध्यान से देख रहे हैं। छूकर जान लेना चाहते हैं कि कन्हैया को कहीं खरोंच तो नहीं लगी।

'कितना बड़ा अजगर है!' मधुमङ्गल अब भी भय से उस महासर्प की ओर देख रहा है। 'तू ने मारा कैसे इसे?'

'कहीं सुबल की लाठी से तो उसका सिर नहीं फूटा है?' श्रीकृष्ण ने हँसते हुए पूछा।

'अरे हाँ, हम सब ने लाठियाँ उठा रक्खी थीं। तालू ही फूट गया इसका!' एक साथ हास्य गूँज गया।

'चलो, स्नान करें। चरण पिच्छल हो गये हैं; पटुके में और श्रीअङ्गों पर भी कहीं-कहीं कुछ आर्द्रता आ गयी है। बछड़े और बालकों के शरीर तथा वस्त्रों पर सर्प के मुख का रस एवं रक्त के छींटे पड़े हैं। श्रीकृष्णचन्द्र ने यमुनाजी की ओर प्रस्थान किया।

'कन्हैया, तू सर्प के मुख से गिरा ग्रास हो गया है।' श्रीदाम ने तनिक दूर हटकर न छूने का नाट्य किया।

'तुझे तो रक्त लगा है!' उत्तर मिला।

'हम मुख से जाकर मुख से ही तो नहीं निकले!' इस तर्क में सबका समर्थन है। सब हँस रहे हैं, तालियाँ बजा रहे हैं। आकाश में दुन्दुभियाँ बज रही हैं, जयघोष हो रहा है, वहाँ से पुष्पों की झड़ी लगी है—यह सब देखने का अवकाश उन्हें नहीं है।

उनके श्यामसुन्दर ने अघ को मार डाला! अघ को भी शुद्ध कर दिया और अब वे स्नान करने जा रहे हैं श्रीयमुनाजी में। शुद्ध होने के लिये? क्रीड़ा करने के लिये।

अघ—मर गया वह तो। उसका शरीर पड़ा है वहाँ। सूख गया धीरे-धीरे। श्रीकृष्ण के सखा उसे छिपने का गह्वर ही तो बनाना चाहते थे। उन्हीं के लिये नहीं, समस्त व्रजवासियों के लिये क्रीड़ा-गह्वर हो गया वह। आँखमिचौनी के समय बालकों को छिपने के लिये वह बड़ा सुन्दर स्थान हो गया।

—❀○❀○❀—

वन-भोजन

बिभ्रद्वेणुं जठरपटयोः शृङ्गवेत्रे च कक्षे
वामे पाणौ मसृणकवलं तत्फलान्यङ्गुलीषु।
तिष्ठन् मध्ये स्वपरिसुहृदो हासयन् नर्मभिः स्वैः
स्वर्गे लोके मिषति बुभुजे यज्ञभुग् बालकेलिः॥

—भागवत १०।३३।११

कालिन्दी की श्यामल तरल तरङ्गें, उनमें विकच शारदीय कमल, पुण्डरीक, इन्दीवर, कह्लार, शतपत्र लहरा रहे हैं, भ्रमर गूँज रहे हैं। पिङ्गल सुरभित पराग लहरियों पर तैर रहा है। पटुके एवं धोतियाँ किनारे उतारकर, मालाएँ रखकर गोप-बालकों का मण्डल स्नान कर रहा है। कन्हैया ने भी मयूर-पिच्छ, वनमाला आदि तट पर रख दिये हैं। वे परस्पर एक दूसरे पर छींटे उछाल रहे हैं, जैसे पद्मपत्रों से मुक्तावृष्टि हो रही हो। एक दूसरे के शरीर मल रहे हैं। हाथ-पैर पटक-कर तैर रहे हैं। पुष्प तोड़कर एक-दूसरे के ऊपर फेंकते जाते हैं। श्याम के कमलदलायत लोचन जलस्पर्श से अरुणिम हो गये हैं। काली अलकें नील जलराशि पर तैर रही हैं और चरणों तथा करों की क्रीड़ा से रक्तिम कमलों की शोभा भी लज्जित हो रही है। उल्लास, हास, चाञ्चल्य—सब एकत्र हो गया है।

स्नान समाप्त हुआ। अलकों से मुक्ताबिन्दु गिराते वे तट पर आये। आर्द्र अङ्गों को पोंछने का झंझट कौन पाले, तट पर के वस्त्र पहिन लिये। धोतियों के ऊपर लपेटे कछौटे के लघु वस्त्र को धारण करके ही उन्होंने स्नान किया है। वे वस्त्र-खण्ड निचोड़ लिये गये। सबने अपने-अपने लकुट धोये। श्याम ने बड़ी सम्हाल से मुरली को प्रक्षालित किया।

'बड़ा सुन्दर है यह पुलिन। खिले कमलों की मधुर सुगन्ध लेकर सुन्दर वायु आ रही है। यह रेत हम लोगों के खेलने योग्य कोमल है। सुचिक्कण मृदुल स्थल है लेकिन मुझे भूख लग गयी है। सूर्य कितने ऊपर आ गये हैं! बछड़ों को जल पिला दें और फिर हम लोग यहाँ भोजन करें!' बात सबके मनकी ही कन्हैया ने कही। सबने बछड़ों को, जो वन में बिखर गये थे, घेरा और जल पिलाया।

'कुछ लोग बछड़े देखें और जब सब भोजन कर लें, तब वे लोग पीछे करें! ऐसा न हो कि हम लोग भोजन करने लगें और ये भाग जायँ कहीं दूर!' सुबल ने सूचना दी। बात तो ठीक है; परतु श्याम के साथ भोजन करने का लोभ छोड़े कौन? सब एक-दूसरे का मुख देखने लगे। किसे पीछे प्रतीक्षा करने को कहा जाय?

'ना, आज तो हम सब साथ ही भोजन करेंगे!' कन्हैया ने प्रतिवाद किया। 'मैं वन की ओर मुख करके बैठता हूँ। कितनी हरी-हरी घास है पास में। बछड़े जायँगे कहाँ! उनको घास पर एकत्र करके छोड़ दें। देखो, वे चर तो रहे नहीं हैं—एक-एक तृण धीरे-धीरे नोच रहे हैं। चरते रहेंगे पास में!' चाहते यही सब हैं। बछड़ों को हरित भूमि पर घेरकर वे पुलिन पर आ गये।

एक ओर सघन कानन, फलभार से झुके विटप, पुष्पित लतिकाएँ। दूसरी ओर नील सलिलपूर्ण लहराती यमुनाजी। उनमें खिले कमलदल। वन में मयूर नृत्य कर रहे हैं। कीर एवं कोकिल कलगान मत्त हैं। जल में सारस पुकार रहा है। हंस तैर रहे हैं। जलपक्षी डुबकियाँ ले रहे हैं। दोनों के मध्य में विशाल रजत पुलिन। स्वच्छ कोमल वालुका। वालुका पर पीताम्बर-परिवेष्टित नीलमणि बैठा है और उसे चारों ओर से घेरकर चित्र-विचित्र वस्त्रों में सरल, कोमल,

गौरवर्ण व्रज-बालक बैठे हैं। कन्हैया का मुख किधर है ? जिधर से जो देखे—उधर। श्रुति उसे 'सर्वतोमुख' जो कहती है। वह अपने गौरवर्ण सखाओं को कमलदल बनाकर स्वयं कर्णिका बन गया है। कर्णिका का मुख किधर ? सब के मुख उसकी ओर हैं और उसका मुख सबकी ओर।

कानन से कपिदल पुलिन पर आ गया। वह बालमण्डली को दूर से घेरकर बैठा है, जैसे इस स्वर्णकमल का रक्षक दल हो। ऊपर देवताओं के विमान छाया किये हुए हैं, पक्षियों का समूह वहीं घूम-फिरकर मँडरा रहा है, जैसे किसी के लिये और कहीं कोई कार्य न हो।

गोपबालकों ने अपने एक ओर लकुट तथा शृङ्ग रख लिये और एक ओर छीके। उनके सम्मुख अनेक प्रकार के पात्र हैं। किसी ने केले के पुष्प को पत्तल के समान बिछा लिया है, किसी ने शतपत्र कमल के दलों को। किसी का पात्र केले या कमल का पत्ता बना है, किसी का भू-कूष्माण्ड का विस्तृत अङ्कुर। किसी ने नारिकेल फल को पात्र बनाया और किसी ने बाँस का त्वक्पत्र या भूर्जपत्र बिछाया। कुछ लोगों ने चिकने पत्थर सम्मुख रख लिये हैं और कुछ छीका ही सम्मुख रक्खे बैठे हैं। अपने-अपने छीकों में से वे भोज्यपदार्थ निकालकर पात्रों पर सजा चुके हैं।

कन्हैया—उसने मुरली तो कटि-वस्त्र में खोंस ली। शृङ्ग तथा वेत्रलकुट कक्ष में दबा रक्खे हैं। दाहिनी ओर उसका छीका खुला पड़ा है। बायें हाथ की हथेली पर एक ग्रास रख लिया है उसने। उसी बायें हाथ की अँगुलियों की संधियों में द्राक्षा, अमरूद, कदली के फल दबा रक्खे हैं। दाहिने हाथ से तनिक-तनिक, छोटे-छोटे ग्रास मुख में डालता है। उसी हाथ से छीके में से भाँति-भाँति के पकान्न निकाल-निकालकर सखाओं को बाँटता जाता है। वह शृङ्ग-वेत्र दबाये इस प्रकार बैठा है, जैसे कहीं जाने को प्रस्तुत हो। बछड़ों की रक्षा का भार आज उसने लिया है और पता नहीं मध्य में कब उन्हें हाँकने जाना पड़े, इसलिये प्रस्तुत है पूर्व से ही।

'तेरा दही तो खट्टा है !' एक सखा ने उसके मुख में दही की मलाई डाली। मुख बनाया उसने। सखा का मुख तनिक मलीन हुआ। उसने छीके में से कुछ दूसरा मधुर पदार्थ निकालना चाहा, इधर लपककर दधिपात्र उठा लिया श्याम ने और पूरी मलाई दही की मुख में भर ली।

'मेरा खट्टा दही क्यों खाता है तू !' जो उसने मुख फेरा तो निहाल हो गया। वाणी में कृत्रिम उलाहना है। श्याम अँगूठे नचा रहा है और दूसरे हँस रहे हैं।

'मैया ने यह मोदक बड़ा मधुर बनाया है।' तनिक-सा मुख से लगाकर उसने सुबल की ओर हाथ बढ़ाया। 'उहूँ, मुख खोल !' हाथ पर देना स्वीकार नहीं है। बड़ा-सा मोदक मुख में बलपूर्वक ठूँस दिया। सुबल के लिये मुख चलाने में कठिनाई हुई, दूसरों के पेट में हँसते-हँसते बल पड़ गये।

'कन्हैया, तनिक यह मठरी तो देख !' श्रीदाम ने केवल दिखाया दूर से। वह ललचा रहा था। श्याम ने ऐसा मुख बनाया जैसे बहुत रद्दी मठरी है, उसकी तनिक भी रुचि नहीं। किंतु श्रीदाम उसे मुख तक ले जाय, तब तक तो श्रीमान् का दाहिना हाथ झपट ले गया। छीना-झपटी से बचने के लिये पूरी मठरी कपोलों को ऊँचा करके मुख में विराज गयी।

'टेंटी बहुत स्वादिष्ट तली है !' जान-बूझकर मधुमङ्गल को टेंटी देने चले। उसने मुख बनाया 'मैं तेरा जूठा नहीं खाऊँगा !'

'यह मक्खन—मोदक' अबकी बढ़िया माल है कर में।

'तेरी श्रद्धा, गोरस में उच्छिष्ट-दोष मैं नहीं मानता !' मधुमङ्गल ने बड़ी गम्भीर मुद्रा से कहा, जैसे महापण्डित हो वह।

'हूँ !' अँगूठा दिखाकर बहुत थोड़ा मुख से काट सके। इस बार झपटने की बारी मधुमङ्गल की है।

परस्पर परिहास चल रहा है। कन्हैया के वाम कर का कवल (ग्रास) परिवर्तित होता जा रहा है। प्रत्येक चाहता है, उसके छीके में जो भी स्वादिष्ट पदार्थ हैं, कन्हैया ही उन्हें भोजन करे। थोड़ा तो अवश्य ले उसमें से। कन्हैया भी अपने छीके में से सब-का-सब दूसरों को ही बाँटने में लगा

है। कन्हैया का छीका—पता नहीं मैया ने कितने पदार्थ भरे हैं उसमें। वह थोड़ा भी घटता नहीं जान पड़ता। श्याम भी आज भोजन करने पर तुला बैठा है। वह किसके प्रेम का अनुरोध अस्वीकार कर दे।

वाम करतल का ग्रास—बहुत कम उठाता है वह उसमें से। तनिक सा उठाते-न-उठाते कोई हथेली पर हाथ मार देता है। दूसरी ओर से सार्थक होने दूसरा ग्रास पहुँच जाता है उस पर। सखा उसकी हथेली पर ग्रास रखकर ही संतोष नहीं कर लेते। अधिकांश अपने हाथों ही उसके मुख में ग्रास दे रहे हैं। वह भी तो अपने छीके के पदार्थ दूसरों के पात्र या कर पर नहीं दे रहा है।

दो चार उज्ज्वल छींटे उदर पर पड़ गये हैं और दो-एक भुजाओं तथा कपोलों पर भी। अधरों की छटा तो दधि की उज्ज्वलता से लिप्त होकर अद्भुत हो रही है। दक्षिण हस्त की अँगुलियों तथा वाम हथेली की भी विचित्र शोभा है। दधि से उज्ज्वल हास्य है सबके मुखों पर।

कपिवृन्द छीना-झपटी की घात में नहीं; किंतु मध्य में कुछ पदार्थ बालक जब उनकी ओर फेंक देते हैं, तब सब उस पर टूट पड़ते हैं। उस पदार्थ के लिये धमाचौकड़ी मचती है। पक्षी भी उसके एकाध कण के लिये झपटते हैं। देवता—वे देवता हैं न। उनके मुखों में जल भर आया है। उनके अमृत में यह स्वाद कहाँ! इस उच्छिष्ट का एक कण पा जाते—पर इन वंदरों और पक्षियों की छीना-झपटी में यह सौभाग्य कहाँ। यदि वे भी कपि या पक्षियों में कोई होते—हीन है देवत्व इस सौभाग्य के सम्मुख।

'बछड़े किधर गये?' सहसा सुबल की ही दृष्टि सम्मुख गयी। एक भी बछड़ा दिखायी न पड़ा। चरते, कूदते वे सब दूर चले गये थे कहीं। सघन वनराजि में पता नहीं किधर गये। सबकी दृष्टि वन की ओर गयी। तनिक-से चिन्तित हुए वे विकचसरोजमुख। भोजन का उल्लास एवं विनोद विरमित हो गया।

'मैं अभी सबको हाँक लाता हूँ!' कोई कुछ निर्णय करे, इससे पूर्व ही कन्हैया खड़ा हो गया। वह तो पहिले से प्रस्तुत है।

'नहीं, कनूँ!' सुबल ने रोका। 'चञ्चल बछड़े पता नहीं कहाँ गये होंगे। तू कहाँ भटकेगा। हम सब ढूँढ़ लायेंगे। तू यहीं बैठ और भोजन कर!'

'अकेले-अकेले तो मुझसे भोजन होगा नहीं।' कन्हैया ने सबको उठने से रोका। 'मेरे तो पुकारने से ही सब दौड़ आयेंगे और तुम सब जाओगे तो बड़ी देर होगी।' बात ठीक है। बछड़े श्याम का शब्द सुनते ही उसके समीप दौड़ आयेंगे और दूसरों को देखकर तो वे दूर भाग सकते हैं।

'लेकिन वन-पथ बड़ा बीहड़ है!' भद्र से रहा नहीं गया। 'तू काँटे-कंकड़ों में भटकता फिरे, यह ठीक नहीं। हम घेर लायेंगे उनको। थोड़ी देर ही तो लगेगी।'

'हूँ, मैं अभी भूखा हूँ। मुझे देर नहीं करने देना है और भोजन तो तुम सबके साथ ही करूँगा।' यह श्याम भी बड़ा हठी है। जो हठ पकड़ ले, उसे छोड़ना जानता ही नहीं। 'मैं कहाँ काँटे-कंकड़ों की ओर जाता हूँ। वहाँ—उस हरित भूमि से आगे तक जाकर देखता हूँ। वहाँ से तो बछड़े दिखलायी ही पड़ेंगे। फिर तो पुकार लूँगा सबको!' सबका अनुमान यही है कि बछड़े बहुत दूर नहीं गये होंगे। उस हरित कुञ्ज के आगे जाने पर वे दीख जायँगे।

'अच्छा, चल!' सुबल साथ चलने को लकुट उठाने लगा।

'नहीं, तुम सब बैठो! उठने से भोजन का आनन्द भङ्ग हो जायगा। मैं अकेला ही जाऊँगा। अभी चुटकी बजाते लौटता हूँ।' वह अकेला ही चल पड़ा।

'बछड़े कहाँ गये?' गोप-बालकों ने परस्पर एक-दूसरे का मुख देखा। कन्हैया के अनुरोध से वे बैठे रहे; किंतु उनकी दृष्टि वन की ओर जाते श्रीकृष्ण पर लगी है। वह—वह जा रहा है श्याम। वह तो और आगे जा रहा है। बछड़े वहाँ से भी कदाचित् दृष्टि नहीं पड़ते। कितनी दूर गये वे?' उन्होंने मुड़कर पुकारा, लौट आने का आग्रह किया; किंतु श्रीकृष्णने मुड़कर पीछे देखा, उन्हें हँसकर बैठे रहने का संकेत किया। ऐसा भाव दिखाया जैसे बछड़े निकट ही हैं। वे बैठे रहे।

कन्हैया दृष्टिपथ में नहीं है। वृक्षों के झुरमुट की ओट में निकल गया। कहाँ जा रहा है वह, किस मार्ग पर, किस स्थल पर वह चरण रख रहा है। कहाँ रुककर वह इधर-उधर उझककर देखता है, सब बालक हृदय से यह देख रहे हैं। पल-पल भारी हो रहा है।

कच्छ में वेत्र एवं शृङ्ग दबाये, वाम कमलारुण हथेली पर नवनीत का एक उज्ज्वल स्निग्ध ग्रास रक्खे, उसी हथेली की अङ्गुलियों में कुछ फल दबाये श्यामसुन्दर वन-पथ में चला जा रहा है। चला जा रहा है वह। दक्षिण कर की अङ्गुलियाँ दधि से सनी हैं। मुख में भोज्यपदार्थ का कुछ भाग लगा है। जूठे मुँह, जूठे हाथ, हाथ पर ग्रास रक्खे वह बछड़े ढूँढ़ रहा है। अब दक्षिण हस्त ग्रास को स्पर्श नहीं करता। उसके सखा उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं भोजन के लिये, फिर वह कैसे भोजन कर सकता है। वह लताओं को हटाता, वृक्षों का चक्कर करता, इधर-उधर देखता, कहीं रुकता, कहीं उझकता चला जा रहा है।

'हरित भूमि—तृणों पर कोई चिह्न नहीं। वन-पशु एवं पक्षी पुलिन पर एकत्र हो गये हैं। कपि होते तो वे भी उछल-कूद से कुछ संकेत करते। यहाँ तो कोई पशु भी नहीं। बछड़े गये कहाँ? विलम्ब हो रहा है। सखा मार्ग देखते होंगे।' बछड़ों को लौटाये बिना लौटने पर सखा चिढ़ायेंगे। बछड़ों को तो ढूँढ़ना ही है। वह चला जा रहा है वन-पथ में—चला ही जा रहा है।

विधि-विडम्बना

यावद् वत्सपवत्सकाल्पकवपुर्यावत् करांघ्र्यादिकं
यावद् यष्टिविषाणवेणुदलशिग्यावद्विभूषाम्बरम् ।
यावच्छीलगुणाभिधाकृतिवयो यावद्विहारादिकं
सर्वं विष्णुमयं गिरोऽङ्गवदजः सर्वस्वरूपो बभौ ॥

—भागवत १० । १३ । १९

श्रीकृष्ण अन्वेषण कर रहा है—कन्हैया ही ढूँढ़ता है। वह 'सुहृदं सर्वभूतानां', श्रुति के 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया' का चिरसखा ही अपने सखाओं को खोजता है। वह स्वयं न खोजे तो उसे कौन पायेगा ? वह अन्वेष्य नहीं, अन्वेषक है। उसे अन्वेषण करके पा ले—ऐसा अन्वेषक कहाँ ? 'यमैवेष वृणुते तेन लभ्यः।'

उसके सखा—वत्स एवं वत्सप दोनों ब्रह्मा की माया से मोहित पड़े हैं। यह जगत्कर्ता ब्रह्मा की माया का विस्तार—दृश्य प्रपञ्च—मोहित ही तो किये है समस्त प्राणियों को। मोहित हैं सब—वर्ष चले जाते हैं और क्षण भी प्रतीत नहीं होता। विवश जीव ! पर जो श्रीकृष्ण के हैं—उसके सखा हैं, उन्हें तो वह ढूँढ़ ही लेगा। वह अन्वेषण कर रहा है—जूठे मुख, जूठे हाथ, भोजन छोड़ कर, वन-वन अन्वेषण कर रहा है। उसके वाम हस्त पर बड़ा मधुर, बड़ा स्निग्ध ग्रास है—किस के लिये ? जिन्हें वह अन्वेषण कर रहा है।

× × × ×

'कन्हैया तो लौटता नहीं है !' सखाओं की प्रतीक्षा की सीमा बहुत छोटी है। वे इधर-उधर उझकने लगे। 'वह पुकारता भी नहीं है—बछड़े दूर चले गये !' अब वे बैठे नहीं रह सकेंगे। श्याम पता नहीं कहाँ भटक रहा है। बछड़े बड़े चञ्चल हैं। उन्हें भी दूर भागने की अभी सूझी थी। लेकिन नेत्र क्यों बंद हो रहे हैं ? झपकी सी क्यों आती है ? उठा क्यों नहीं जाता ? सचमुच उनके नेत्र बंद हो गये अकस्मात्।

'अघासुर—इतना प्रकाण्ड दैत्य मार डाला श्रीकृष्ण ने !' ब्रह्माजी अपने धाम से देवताओं का जयनाद सुनकर आये थे। उन्होंने आश्चर्य से मृत अजगर के मुख से श्रीकृष्णचन्द्र को निकलते देखा। उनके चरणों में उस असुर का तेजोमय तत्त्व देखते-देखते प्रविष्ट हो गया। 'पृथ्वी का भार दूर करने के लिये मैंने प्रार्थना की और भगवान् ने उसे स्वीकार कर लिया। करुणा करके उन्होंने अवतार ग्रहण किया है !'

'द्वापर के युगावतार तो श्रीबलरामजी हैं ?' ब्रह्माजी के मनमें संदेह हुआ। शास्त्रों का जितना जिसे अधिक ज्ञान हो, उसे उतना ही संदेह भी तो होता है। 'जीवका तेज तो भगवान् नारायण को छोड़कर दूसरे में प्रविष्ट नहीं होता। सायुज्य देने की सामर्थ्य तो श्रीहरि में ही है ! यह नवजलधरवर्ण—जान पड़ता है, प्रभु ने इस बार दो स्वरूपों में अवतार धारण किया है !'

'यह गोपकुमारों का उच्छिष्ट भोजन—सर्वेश ने वेदोद्धार के लिये अवतार धारण किया और उन्हीं के द्वारा मर्यादा का यह अतिक्रम ?' वेदों के मूर्त रूप की निष्ठा त्रयी तक ही तो होगी। सखाओं के मध्य श्यामसुन्दर को भोजन करते देख वे विचलित हो गये। 'श्रीपति भला, उच्छिष्ट क्यों ग्रहण करेंगे ?'

'अघासुर का ज्योतिर्देह ?' इस प्रत्यक्ष को कैसे अस्वीकार किया जाय। 'प्रभु यह कौन-सा नाट्य कर रहे हैं ? उनकी यह कौन-सी मनोहर लीला है ?' बहुत सोच-विचार करके पितामह ने परीक्षा

लेने का निश्चय किया। बछड़े जैसे ही वन में गोप-बालकों की दृष्टि से ओझल हुए उनको माया से मोहित करके एक गुफा में वे रख आये। जब कन्हैया बछड़े ढूँढने गया, तब बालकों को मोहित किया और उन्हें भी छीके, पात्र, लकुट प्रभृति के साथ उसी गुफा में ले जाकर रख दिया। वे वहाँ माया-निद्रा में सो गये।

× × × ×

'बछड़े गये कहाँ ?' कन्हैया वन में ढूँढ रहा है। 'वे पर्वत पर तो नहीं चले गये ? किसी गम्भीर गुफा में तो नहीं हैं ? कदाचित् वहाँ से निकलने का मार्ग न पाते हों।' गोवर्धन पर चढ़ कर उसने पुकारा। आस-पास की सब गुफाएँ देख डालीं।

'किसी कुञ्ज में सब चरकर बैठे होंगे और पागुर करते होंगे !' कुञ्जें देख ली गयीं। पुकारने पर कोई 'हुम्मा' भी तो नहीं करता। 'कहीं किसी खड्ड में तो नहीं गिरे ! हरे तृणों के लोभ से ऐसा होना अशक्य नहीं !' चरण चञ्चल हो गये। बड़ी आतुरता से उसने एक-एक खड्ड झाँक लिया।

'मुझे बहुत देर हो गयी ! सभी सखा व्याकुल होंगे। बछड़े अकेले मिलते दीखते नहीं। सबको बुला लाऊँ। सब मिलकर ढूँढेंगे। कहीं सब-के-सब घर न भाग गये हों !' वह पुलिन की ओर लौटा। बछड़े घर चले गये हो सकते हैं, सखाओं को चिन्तित करना ठीक नहीं।

'मैं आज मार्ग भूल रहा हूँ !' पुलिन पर कोई नहीं है। लेकिन यहीं तो सब बैठे थे। यह क्या रेत पर सबके बैठने के चिह्न हैं !' अब भी वहाँ पक्षी एकाध कण पा जाने के प्रयत्न में हैं। कपिदल सीमान्त से कन्हैया के पास लौट आया ! बंदर विचित्र भाँति से मुख बनाकर देख रहे हैं और कूद रहे हैं। यह सब देखने का अवकाश नहीं है श्याम को।

'मुझे बहुत विलम्ब हुआ !' श्रीकृष्ण ने विचार किया। 'बेचारे प्रतीक्षा करते-करते थक गये तो छीके लेकर वन में मुझे ढूँढने चले गये।' अब वन की ओर पुनः लौटना था।

'तनिक यहाँ रुकूँ, कदाचित कोई सखा लौट आये !' एक क्षण को चरण रुके। 'बुलाना ठीक होगा !' 'श्यामसुन्दर यह ग्रास तो अब कहीं-न-कहीं विसर्जित ही करेंगे, सखाओं के बिना भोजन तो वे करने से रहे !' इन्द्र, वरुण, कुबेर आदि उसके एक-एक कण की आशा लगाये थे; किंतु ग्रास तो कन्हैया ने बंदरों को दे दिया। झटपट हाथ-मुख पोंछ लिये पटुके से और कक्ष से निकाल-कर शृङ्ग फूँका। एक बार, दो बार—कई बार। कहाँ ? कहीं से किसी का शृङ्ग उत्तर कहाँ देता है।

'सखा दूर वन में चले गये !' वह बड़ी तीव्रता से पुनः कानन में प्रविष्ट हुआ। बछड़े तो घर भाग गये हो सकते हैं, किंतु कोई सखा उसे वन में छोड़कर घर जाने की बात भी नहीं सोच सकता। अवश्य वे उसे ही अन्वेषण करने गये हैं।

'सुबल ! श्रीदाम ! भद्र ! अरे कहाँ हो सब ? छिपो मत ! मैं थक गया हूँ, बोलो तो !' पुकार—कोई उत्तर नहीं इस बार-बार की पुकार का। अनेक बार का शृङ्गनाद भी केवल पर्वतों से ही प्रतिध्वनित होता है।

जिसकी श्रुतियाँ युग-युग से स्तुति करती हैं, साधन-परिशुद्ध हृदय जिसे बड़ी आकुलता से प्रतिपल पुकारता है, आज वह गोपकुमारों को पुकारते-पुकारते थका जा रहा है। यज्ञों में जिसका बड़ी विधि से आह्वान होता है, वह आज स्वयं पल-पल आतुर आह्वान कर रहा है। बड़ी प्रबल लालसा लेकर भाव-विभोर हृदय जिसके कर्णों तक एक बार अपनी प्रार्थना पहुँचा देना चाहता है, उसके कर्ण सखाओं की एक किलक अथवा बछड़ों की एक 'हुम्मा' सुनने को उत्कर्ण हैं। योगियों की युगों की समाधि जिसके रूप की एक पल की झाँकी पर निछावर होकर सार्थक होने की प्रतीक्षा करती है, उसके नेत्र भी किसी सखा के पटुके की कोर की झलक को आज उत्कण्ठित हैं। जिसे प्रकृति का कण-कण अनन्त काल से ढूँढ रहा है, जो समस्त साधनों का अन्वेष्य है, वही आज वन-वन भटक-कर आभीर-बालकों का अन्वेषण कर रहा है।

'मेरे सखा—कहाँ गये वे ? पता नहीं कितने व्याकुल होंगे !' मध्याह्न हुआ, सूर्य पश्चिम की ओर चले, सायंकाल समीप आ गया; किंतु उसे बैठने का अवकाश नहीं। उसके चरण रुकते नहीं। क्षुधा पता नहीं कहाँ चली गयी। बार-बार शृङ्ग बजता है, बार-बार पुकार होती है। 'कहाँ गये सब ?'

'कोई असुर·····' प्रेम बड़ा शङ्काशील होता है। 'मैंने सब वन तो देख डाला!' सचमुच कन्हैया ने एक-एक कुञ्ज, एक-एक गुहा, प्रत्येक झुरमुट छान लिया। सायंकाल समीप आ चुका है, सखा घर तो लौट सकते ही नहीं।

ये बंदर क्यों मेरे पीछे पड़े हैं? ये इस प्रकार मुख बनाकर क्यों ऊपर देखते हैं? क्यों बार-बार मेरा पटुका खींचते हैं ये?' अब तक सखाओं के अन्वेषण में ध्यान होने से कपियों के अद्भुत व्यवहार पर ध्यान नहीं गया था। 'मेरे साथी कहाँ गये?' ध्यान जाने पर कुछ विचित्र चेष्टा लगी। अवश्य ये कुछ कहते हैं। उसने पूछा।

'ऊपर-ऊपर क्या?' बंदरों का संकेत बराबर ऊपर है। वे ऊपर हाथ उठाते और किलकते हैं। 'ऊपर तो देवताओं के विमान हैं? कोई असुर आकाश में तो सबको नहीं ले गया? नहीं, असुर आता तो देवविमान पलायन करते या संघर्ष। ऐसा कुछ नहीं हुआ। तब क्या देवताओं में से किसी को परिहास सूझा है? कौन होगा वह?' वह विमानों को एकाग्र दृष्टि से देखने लगा।

'अच्छा!' खुलकर हँस पड़ा। विमानों में पितामह के हंस का पता नहीं। पितामह पधारे थे, यह तो देख ही लिया था उसने; भले ही देवताओं ने स्रष्टा को न देखा हो। 'वृद्ध पितामह को बच्चों से परिहास सूझा है! बे बड़े हैं, प्रसन्न करना चाहिये उन्हें!'

सब गोप-बालक, समस्त बछड़े एक क्षण में प्रकट हो गये। वैसे ही बछड़े, उन्हीं रङ्गों के, वैसे ही चपल। उन्हीं अवस्थाओं के गोप-बालक, वैसे ही स्वभाववाले, उन्हीं वस्त्राभरणों में, वैसे ही वेत्र-लकुट, शृङ्ग एवं छीके लिये। सब गुण, स्वभाव, नाम, रूप, अवस्था से जैसे वे ही हों। सम्पूर्ण अभिव्यक्ति कन्हैया की ही तो है। श्रुति उसे ही तो कहती है कि 'रूपं-रूपं प्रतिरूपो बभूव।' आज कन्हैया प्रत्यक्ष अपने सखा एवं बछड़ों के रूप में होकर श्रुति की सत्यता का समर्थन कर रहा है।

संध्याकाल समीप है। बछड़े आगे हो गये, सखाओं ने श्यामसुन्दर को घेर लिया। कन्हैया ने मुरली रक्खी अधर पर, सखा ताली बजाकर गाते जाते हैं। यह आज का चिन्मय गोपबालक-वत्स-समूह व्रजेन्द्र के भवन की ओर वन से चला।

× × × ×

'श्याम कब आयेगा? संध्या तो होने को आयी, वह अभी लौटा नहीं। पता नहीं कहाँ होगा। दिन भर भूखा रहा वह। भला, शीतल भोजन क्या रुचा होगा!' मैया की चिन्ता का पार नहीं। वह बार-बार देहली से बाहर आती है। घर में एक पल रुका नहीं जाता। 'दाऊ, तू देख तो, कनू आ रहा है?' बाबा पहिले ही आगे जा चुके। कई दूसरे लोगों को भेजने पर भी संतोष नहीं हुआ तो उन्होंने बलभद्र को कहा।

व्रज में आज सब विक्षिप्त-से ही हैं। दिन भर से वह श्याममुख देखने को नहीं मिला। उन्हें लगता है युग व्यतीत हो गये। कर्ण मुरली-ध्वनि सुनने को उत्कण्ठित हैं। बार-बार नेत्र वन-पथ की ओर जाते हैं। घर से निकलकर देख लेना सबके लिये स्वाभाविक हो रहा है। अन्त में पथ पर आ रहे सब।

'वह बजी मुरली!' अट्टालिकाएँ झूम उठीं। मार्ग के दोनों ओर पंक्ति बन गयी। गायों ने गोष्ठ में हुंकार भरना प्रारम्भ किया। 'वे पक्षी मँडरा रहे हैं! वह धूलि उड़ रही है! वे रहे बछड़े!'

'आज यह क्या है?' दाऊ ने मन-ही-मन सोचा। नित्य तो व्रज के सब लोग कन्हैया के पीछे-पीछे बाबा के द्वार तक जाते थे। बछड़े भी सब अपने गोष्ठ में ही जाते थे। सब सखा सायं-कालीन जलपान कन्हैया के साथ ही करते थे। श्रीव्रजराज के गोष्ठ से गोप अपने-अपने बछड़े हाँक लाते थे। पर आज तो ऐसा कुछ नहीं हुआ गोपों ने अपने बच्चों को उल्लसित होकर हृदय से लगाया। बछड़ों को गोप-बालकों ने मार्ग से ही अपने घरों की ओर हाँक दिया। बछड़े भी अपने गोष्ठों की ओर उछलते चले गये। माताएँ द्वार तक अपने बच्चों को लेने दौड़ी आयीं। दाऊ, कन्हैया, और नन्द बाबा अपने बछड़ों के साथ ये ही अपने गोष्ठ तक पहुँचे। 'जान पड़ता है, सब दिन भर बन में रहने से बहुत क्षुधित हैं। इसी से घर चले गये।' दाऊ ने अपना समाधान कर लिया।

गोष्ठ में गायों ने बछड़ों को देखा, उनके स्तनों से दुग्ध-धारा झरने लगी। बछड़े दूध पीने लगे। गायें चाटने लगीं उन्हें। इन बछड़ों से छोटे बछड़े हैं गायों के, ये दूध छोड़ चुके हैं; किंतु आज नवीन वात्सल्य जग गया है गौओं में।

'श्याम मेरा पुत्र होता !' व्रजदेवियों में यह भाव नित्य उन्हें उद्विग्न करता था। गायें उस नीरदनील को चाटने के लिये मुख बढ़ाकर रुक जाया करती थीं। इतना कोमल शरीर खुरदरी जिह्वा से चाटा कैसे जाय—पशु होने पर भी इतनी समझ तो उनमें है ही। आज व्रजदेवियों को अपने पुत्रों में, गायों को बछड़ों में वही रस, वही आनन्द मिल रहा है। उस भक्त-भावन ने सबकी भावना पूर्ण कर दी आज।

'मेरा लाल !' आज प्रत्येक माता के हृदय में मैया यशोदा का वात्सल्य उमड़ आया है। प्रत्येक गोप-बालक कन्हैया जो है। 'मुख सूख गया है। दिन भर से भूखा है !' माताओं ने गोद में उठा लिया। वात्सल्य उज्ज्वल दुग्ध बनकर हृदय से निकल रहा है। मुख धोकर कलेऊ कराया उन्होंने। प्रत्येक गृह आज नन्दभवन है। प्रत्येक गृह में बच्चों को उसी स्नेह से स्नान कराया जा रहा है, वस्त्र बदलकर तैल लगाया जा रहा है, तिलक किया जा रहा है या खिलाया जा रहा है, जो स्नेह श्याम को प्राप्त है।

× × × ×

'कनूँ !' दाऊ ने सम्बोधित किया। श्याम ने एक बार शिखर से पूँछ उठाये दौड़ती आती गायों की ओर देखा और मुस्करा पड़ा। गायें हुंकार कर रही हैं। लताएँ तोड़ती, पत्थर लुढ़काती वे वेग से दौड़ती नीचे आ रही हैं। मार्ग की उन्हें चिन्ता नहीं। उन्होंने गिरिराज के शिखर पर चरते समय नीचे चरते अपने बछड़ों को देख लिया और दौड़ पड़ीं।

हाँफते, लाठी उठाये, स्वेद से लथपथ, क्रोध से कुछ अरुणाभ मुख किये गोप पीछे दौड़ते आ रहे हैं गायों के। उनकी पगड़ियाँ अस्त-व्यस्त हो गयी हैं। गायों को रोकने का प्रयत्न करके विफल हो चुके हैं वे। पूरी शक्ति से दौड़कर भी उन्हें आगे से घेर नहीं पा रहे हैं। 'अवश्य वे आकर गायों को एकाध लाठी तो मारेंगे ही। यह कैसे देखा जायगा !' दाऊ के सम्बोधन में यह आशङ्का है।

गायें आयीं और सीधे अपने-अपने बछड़ों को चाटने में जुट पड़ीं। बछड़े दूध पीने लगे। पीछे गोप आते होंगे, यह भूल ही गया उन्हें। गोप दो क्षण पीछे ही आये। क्या हुआ उनका क्रोध ? बालकों पर दृष्टि पड़ी। लाठियोंवाले हाथ नीचे हो गये। 'तू यहीं है ?' प्रत्येक ने अपने बच्चे को हृदय से लगा लिया। प्रत्येक अपने बालक के सिर पर हाथ फेर रहा है। 'शीघ्र घर लौट जाना !' बड़ी कठिनता से बच्चों को पृथक् कर सके वे। गायें दूध पिला चुकने पर किसी प्रकार हाँकी जा सकीं। वे बार-बार भाग आने का प्रयत्न करती हैं। गोप मुड़-मुड़कर बच्चों को देखते जाते हैं।

'कन्हैया की ओर इनमें से किसी का ध्यान ही नहीं गया। जैसे वह यहाँ है ही नहीं !' दाऊ को आश्चर्य हुआ। 'ये गायें अपने इन बच्चों से इतना प्रेम क्यों करती हैं ? यह तो पशु-स्वभाव के विपरीत है !' वे सोचने लगे।

'उस दिन—हाँ, स्मरण आया एक वर्ष पूर्व जिस दिन श्याम प्रथम दिन दिन भर वन में रहा, उसी दिन से व्रज में यह व्यतिक्रम हुआ है। पहिले तो सब केवल कन्हैया से ही प्रेम करते थे। मनुष्य-गायें-कपि और पक्षी भी; परंतु उसी दिन से यह दशा हो गयी है। फिर गायें अपने दूध पीते बछड़ों से स्नेह क्यों नहीं करतीं ? इन बछड़ों में क्या विशेषता है ? उसी दिन से व्रजवासियों का स्नेह बालकों में बढ़ता ही जाता है। वह सीमातीत हो चुका है। पक्षी, कपि—वे भी किसी बालक के साथ हो लेते हैं। उसी दिन से—पूरा वर्ष होने को आ रहा है—सायंकाल गोपियाँ, गोप, कोई उत्सुक नहीं होता कन्हाई के लिये। सब अपने ही बच्चों को लेकर घर चले जाते हैं। मैं ही कनू के साथ घर आता हूँ। गायें भी अब इन बछड़ों से ही स्नेह करने लगी हैं। मैया के पास न गोपियाँ आजकल आतीं, न द्वार पर गोपों का समुदाय एकत्र होता। कन्हैया तो प्रेम करने के लिये ही है। वह

तो है ही प्रेममय—परंतु सभी बालकों में उसके समान ही प्रेमाकर्षण क्यों ?' दाऊ को अपने कान्ह की उपेक्षा लगी इसमें !

'हाँ—मैं उस दिन कन्हैया के साथ नहीं जा सका था। उस दिन मेरा जन्मन-क्षत्र था। उसी दिन से यह विचित्र स्थिति प्रारम्भ हुई। वनमें कोई असुर आया उस दिन ? उसने कोई माया फैलायी है, जिससे व्रजवासियों का आकर्षण श्रीकृष्ण से दूर हो जाय ?' आशङ्का हुई। बात ठीक है, यदि व्रज के लोगों का प्रेम श्रीकृष्ण से पृथक् हो जाय तो श्रीकृष्ण व्रज की रक्षा करना छोड़ देंगे। वे तो प्रेम के वश में हैं। फिर व्रज का विनाश करना सहज होगा। राक्षस ऐसा सोच तो सकते हैं।

'आसुरी माया कन्हैया के सांनिध्य में टिकेगी कैसे ? देवताओं में से किसी की माया हो तो ?' देवता बड़े ईर्ष्यालु हैं। श्यामसुन्दर को सब लोग इतना चाहें, उनसे यह देखा न गया होगा।

'एक वर्ष हो गया, मुझे इस रहस्य का पता तक न लगा। मेरे मनमें अब तक संदेह न आया !' दाऊ की ऐश्वर्यशक्ति उपस्थित हो गयी। 'मुझे वर्ष भर तक तो क्या, क्षण भर भी प्रभावित कर सके—ऐसी शक्ति राक्षस, यक्ष, गन्धर्व, देवता, किसी में नहीं। मुझे तो केवल मेरे श्यामसुन्दर की योगमाया ही विस्मृत कर सकती है। वही मुझे मोहित करने में समर्थ है। यह कोई कृष्ण की ही लीला है !'

दाऊ ने छोटे भाई के मुख की ओर देखा। वह मुस्करा रहा है। 'क्या लीला है ?' एक क्षण को नेत्र बंद हो गये। 'अच्छा !' हँस पड़े वे।

'सब एक ही है, सब भेदों में अभेद व्याप्त है—श्रुति ऐसा क्यों कहती यदि तू यह नाट्य न करता !' लेकिन दूसरे ही क्षण उनका स्वर्णगौर अरुणाभ मुख गम्भीर हो गया। 'कनू, अपने सखा गुहा में बंद हैं न ?' लीला तो ठीक; परंतु वे परम दयामय सखाओं को इस प्रकार माया-मुग्ध समझते ही क्षुब्ध-से हो गये।

'वे सब बड़े आनन्द से सो रहे हैं !' बड़े भैया से बहानेबाजी व्यर्थ है। श्याम ने सीधे कह दिया। 'आप दो क्षण यहीं रुकें, उनके उठने की व्यवस्था हुई जाती है !' यों कहकर एक ओर एक कुञ्ज की ओट में चला गया।

× × × ×

'मेरी तो एक त्रुटि हुई, परंतु मनुष्यों का एक वर्ष हो गया !' ब्रह्मलोक की ओर जाने में हंस को जैसे कोई उत्साह नहीं। अपने आरोही के असमञ्जस ने उसे शिथिल कर दिया था। 'प्रभु क्या करेंगे ? यहीं रहूँ या ब्रह्मलोक जाऊँ ?' हृदय कोई समाधान नहीं दे रहा था। ब्रह्माजी सहसा लौटे। 'नन्हे-नन्हे बच्चे, छोट-छोटे बछड़े, उनको गुफा में कोई कष्ट तो नहीं हुआ ? उनका कोई प्रारब्ध ऐसा नहीं, जिससे उन्हें कष्ट हो। उनके माता-पिता, बन्धु-बान्धव, स्वजन—बड़ा अन्याय हुआ मुझसे। मैंने यह तो देखा ही नहीं कि उन मनुष्यों या गायों में से किसी के प्रारब्ध कर्म स्वजन-वियोग का दुःख दें, ऐसे नहीं। बिना प्रारब्ध के कष्ट मिलना तो महान् अनर्थ है। आज यह नवीन बात हुई।' लोकपितामह से कौन पूछे कि इन बच्चों और बछड़ों तथा व्रजवासियों का कोई और भी प्रारब्ध आपको दीखता है या यही प्रारब्ध देखने चले हैं आप। वे आपकी सृष्टि के हों तो प्रारब्ध दीखे। वे चञ्चल हो गये। हंस समीप आ गया।

'बच्चे तो अभी सो रहे हैं ! उन्हें कोई कष्ट हुआ, ऐसे लक्षण नहीं हैं।' मार्ग में पहिले गुफा देख ली। अभी बालकों एवं बछड़ों को उठा देना ठीक नहीं। व्रज की परिस्थिति देखकर उन्हें अनुकूल समय पर उपस्थित करना ही समीचीन जान पड़ा। हंस वृन्दावन की ओर चल पड़ा।

'हैं !' हँस रुका। स्रष्टा के आठों नेत्र नीचे लगे हैं। उनके विस्मय का पार नहीं। 'ये श्रीकृष्णचन्द्र ये गोप-बालक, ये बछड़े ? मैंने तो व्रज में एक बछड़ा या बालक छोड़ा नहीं था। ये श्रीकृष्ण के साथ खेलनेवाले कहाँ से आये ?' सृष्टिकर्ता को गणना करने में विलम्ब नहीं

हुआ। 'उतने ही बालक, उतने ही बछड़े ! इन सबकी आकृति भी ठीक वैसी ही है और हैं भी सब अवस्था में उतने ही बड़े। वय में केवल एक वर्ष का अन्तर पड़ा और वही अन्तर जो इस बीच में व्यतीत हुआ है !'

'कहीं वे गुफा से मुझसे पहिले ही तो यहाँ नहीं आ गये ?' ब्रह्माजी फिर गुफा की ओर उड़े। 'ये तो यहीं सो रहे हैं !' लौटने पर व्रजभूमि में फिर वही दृश्य। बड़े चकराये। सच्चे बालक एवं बछड़े कौन-से हैं ? दोनों में से एक तो मायिक प्रतीत होने ही चाहिये। दोनों स्थानों को उन्होंने आकाश से एक साथ देखा। चतुर्मुख के दो मुख गुफा की ओर थे और दो वृन्दावन की ओर। कोई लाभ नहीं हुआ इससे। स्रष्टा का प्रयत्न व्यर्थ है। ये सोनेवाले उनकी सृष्टि के प्राणी नहीं और न ये खेलनेवाले इन्द्रजाल हैं। उनकी बुद्धि इस चिन्मय तत्त्व को भेदन करने में असमर्थ है। उन्होंने नित्य प्रारब्ध के कारण जीवों की विडम्बना ही की थी। आज व्रज की प्रेमभूमि में स्वयं विधि की विडम्बना का अवसर था।

ब्रह्माजी ने मस्तक झुका लिया क्षण भर को। पुनः सिर उठाकर देखा और देखते रह गये। वही वृन्दावन, वही कालिन्दी की धारा; परंतु गोप-बालक, बछड़े, श्रीकृष्ण—कोई नहीं है वहाँ। प्रत्येक बालक या बछड़ा—नहीं-नहीं, वे तो साक्षात् भगवान् विष्णु हैं इतने रूपों में। प्रत्येक शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी तथा किरीट, कुण्डल, मणिमाला एवं वनमाला से आभूषित। पार्षद—पार्षद भी भगवद्रूपधारी होते हैं, पर पार्षद नहीं हैं ये। प्रत्येक के वक्षपर श्रीवत्स का चिह्न है, भृगुलता है, शङ्ख-जैसे कण्ठ में कौस्तुभमणि है। सारूप्य-प्राप्त पार्षदों में ये लक्षण तो होते नहीं। करों में कङ्कण, पैरों में नूपुर, भुजाओं में अङ्गद, कटि में किङ्किणी तथा अँगुलियों में अँगूठियाँ धारण किये हैं सब। यहीं तक नहीं—महान् पुण्यात्माओं द्वारा चढ़ायी हुई नवमञ्जरीयुक्त कोमल तुलसीदल की मालाओं से मस्तक से लेकर श्रीचरण तक सबके सम्पूर्ण अङ्ग सुसज्जित हैं। भगवान् के अतिरिक्त—दूसरा कोई चरणों पर तुलसी कैसे धारण करेगा—कोई महापुरुष चढ़ा ही कैसे सकता है किसी दूसरे के चरणों पर तुलसीदल। तब सब श्रीहरि हैं—इतने श्रीहरि ? हानि क्या—बहुत-से ब्रह्माण्डों के पालक विष्णु आ गये होंगे आज यहाँ। अनन्त ब्रह्माण्ड हैं, अतः भगवान् विष्णु के इतने स्वरूपों का एकत्र होना कोई बड़ी बात नहीं है।

यह समाधान ब्रह्माजी को संतोष दे, ऐसी स्थिति नहीं है। इन विविध रूपों में से प्रत्येक भगवद्रूप अपने निर्मल चन्द्रज्योत्स्ना-जैसे हास्य से सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों के पालक विष्णुस्वरूपों को पुष्ट कर रहा है। अपने कमलारुण नेत्रों के अरुणिम कटाक्ष से वहाँ के अधिष्ठाता सृष्टिकर्ताओं को सर्जनशक्ति दे रहा है और उसका कुटिल भ्रूमण्डल ही ब्रह्माण्डों के विनाशक रुद्रों की संहार-शक्ति का उद्गम है। अपने उज्ज्वल हास्य, करुण कटाक्ष, कुटिल भ्रूकुञ्चन से प्रत्येक रूप सत्व, रज एवं तमोगुण के अधिष्ठाताओं का भी पालक स्पष्ट ब्रह्माजी को दृष्टि पड़ रहा है। भला, इस परात्पर स्वरूप को ब्रह्माण्डाधीश कैसे समझ सकते हैं वे। परात्पर रूप और वह भी इतनी संख्या में ?

वे रूप अकेले-अकेले नहीं हैं। तृण से लेकर ब्रह्मलोक तक के अधिष्ठाता देवता प्रत्येक की उपासना कर रहे हैं। प्रत्येक के समीप दूसरे देवताओं के साथ एक-एक ब्रह्मा भी हैं उपासकों में। वे उपासक नृत्य करते हैं, अनेक प्रकार से गाते हैं, शङ्खादि वाद्य बजाते हैं। उपासना-लग्न हैं सब। अणिमा-महिमादि सब सिद्धियाँ, माया-योगमायादि समस्त विभूतियाँ, प्रकृति-महत्तत्त्व-अहंकारादि चौबीसों तत्त्व—ये सब मूर्तिमान् होकर प्रत्येक की सेवा कर रहे हैं। काल, कर्म, स्वभाव, संस्कार, वासना, गुण प्रभृति सबके अधिदेवता उनकी सेवा में हैं। अपने प्रभाव से ही इन सब देवताओं के मलिन स्वभाव को उन्होंने निरस्त कर दिया है। शुद्ध, शान्त होकर सब वहाँ प्रत्येक की उपासना में लगे हैं।

ब्रह्माजी व्याकुल हो गये। एक क्षण के लिये एक बार जैसे विद्युत् स्पर्श कर जाय, हृदय में एक अनुभूति झलक दे गयी। 'जिनका माहात्म्य अनन्त है एवं उपनिषत् के परममर्मज्ञों की अन्त-

दृष्टि भी जिसका स्पर्श तक नहीं कर पाती, ये तो उसी सत्य, ज्ञान एवं आनन्द के घनीभूत रसमय विग्रह हैं! जिनके आभास से—प्रतिबिम्ब से ही सचराचर प्रकाशित है चैतन्य एवं सत्ता में है, वही परमब्रह्म इन सम्पूर्ण रूपों में प्रत्यक्ष है।' एक ही बार, एक ही क्षण के लिये यह अनुभूति हुई। नेत्र बंद हो गये। सम्पूर्ण इन्द्रियाँ सुप्त हो गयीं। ब्रह्माजी इस प्रकार निश्चल हो गये जैसे हंस पर किसी ने चतुर्मुख प्रतिमा बनाकर रख दी हो। आये थे श्यामसुन्दर को मोहित करने और स्वयं मोहित हुए हंस पर बैठे हैं।

समर्थ नहीं हैं वे उस स्वरूप के साक्षात् करने में। एक क्षण की अनुभूति ने ही 'यह क्या?' इस प्रकार स्तब्ध कर दिया उन्हें। वे उसे देखने में समर्थ न हो सके। श्यामसुन्दर ने उनकी ओर देखा और दूसरे ही क्षण उस अनुभूति पर पर्दा पड़ गया।

इन्द्रियों में चेतना आयी, जैसे ब्रह्माजी का पुनर्जन्म हुआ हो। प्रत्येक इन्द्रिय में क्रमशः चेतना, हिलने की शक्ति आ गयी। बड़ी कठिनाई से वे धीरे-धीरे पलकें खोल सके। पहिले उन्होंने अपने को ही देखा। यहाँ वे क्यों आये हैं, यह स्मरण हुआ। स्मृति लौटी। झटपट चारों ओर देखने लगे। उन्होंने नीचे देखा—वही वृन्दावन! लताएँ झूम रही हैं, वृक्ष फलभार से लदे हैं,। शुक, पिक, मयूर—सब अपनी-अपनी क्रीड़ा में लगे हैं। बंदर उछल रहे हैं और आश्चर्य से कभी ऊपर और कभी श्यामसुन्दर की ओर देख रहे हैं।

'यह वृन्दावन!' ब्रह्माजी ने देखा 'यहाँ तो मनुष्य, मृग, सिंह, मयूर, सर्प, वृक, शशक—सब प्राणी साथ रहते हैं! इस भूमि में स्वतः मन का कषाय नष्ट हो जाता है। क्रोध, द्वेष, छल यहाँ पशुओं तक में नहीं।'

'वृन्दावन के अधीश्वर, गोपकुमार का नाट्य करने वाले ये अनन्त ज्ञानघन अद्वय परात्पर परमब्रह्म श्रीकृष्णचन्द्र!' दृष्टि वन से हटकर व्रजेन्द्रकुमार पर गयी। वही वेष—वही नाट्य! कटि में मुरली लगाये, कक्ष में वेत्र दबाये, बायें हाथ की हथेली पर एक ग्रास रक्खे, दाहिने हाथ में शृङ्ग लिये 'ओ सुबल, अरे श्रीदामा! हे भद्र! कहाँ हो तुम सब? अरे छिपो मत! बोलो तो सही!' चारों ओर सखाओं को ढूँढ़ता फिर रहा है श्यामसुन्दर।

'क्षमा! क्षमा! करुणामय! प्रभो!' ब्रह्माजी हंस के भूमि पर उतरने की प्रतीक्षा नहीं कर सके। कूद पड़े सीधे और जैसे स्वर्णदण्ड किसी के हाथ से छूटकर भूमि पर गिर पड़ा हो, उन हिरण्यगर्भ का शरीर पृथ्वी पर गिर पड़ा। उनके चारों मुकुटों के किरीटों का अग्रभाग श्रीकृष्ण के चरणों का स्पर्श कर रहा है। किरीटों की उज्ज्वल मणियाँ, उस चरणाग्र की अरुणिमा से रञ्जित हो उठी हैं। श्याम—वह तो मुसकराता हुआ शान्त खड़ा है।

—❀:⊂:❀:⊂:❀—

ब्रह्म-स्तुति

नौमीड्य तेऽभ्रवपुषे तडिदम्बराय गुञ्जावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाय।
वन्यस्रजे कवलवेत्रविषाणवेणुलक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपाङ्गजाय॥

— भागवत १०। १४। १

वाम पद्मारुण हथेली पर नवनीत का उज्ज्वल खण्ड लिये, कक्ष में वेत्र दबाये, कटि में मुरली लगाये, दाहिने हाथ में शृङ्ग लिये वह पीताम्बरपरिवेष्टित मयूरमुकुटी वनमाली नवजलधरश्याम अपने चरणों के सम्मुख लेटे, चतुर्मुख, स्वर्णगौर, रजतश्मश्रु स्रष्टा की ओर देख रहा है। अधरों पर मन्द स्मित है और नेत्रों में एक विचित्र कुतूहलभाव।

प्रकृति स्तब्ध है। वृक्षों के पत्ते तक नहीं हिलते। कीर का बोलना बंद है। पिक मूक हो गया है। कपियों में उछल-कूद नहीं रही, केवल उनके नेत्र अवश्य आश्चर्यचकित हैं। जैसे सब जड-चेतन देख रहे हैं—यह क्या हो रहा है? कन्हैया को आज यह क्या परिहास सूझा है।

ब्रह्माजी—उन्हें केवल वे श्रीचरण दीखते हैं। अरुण, मृदुल, ज्योतिर्मय श्रीचरण। उनके आठों नेत्रों से धारा चल रही है। प्रेमाश्रु की धारा— क्योंकि चार अश्रु तो देवताओं के ही नेत्रों में नहीं आते। वे किसी प्रकार उठते हैं, कन्हैया के अङ्गुष्ठाग्र का पलकों से स्पर्श करते हैं और फिर साष्टांग करने लगते हैं। उनके प्रणामों को विराम नहीं है। वे उठते हैं और फिर प्रणाम करते हैं। कन्हैया चुपचाप खड़ा है। उसके दोनों चरण अश्रुधारा से धुल गये हैं—धुल रहे हैं। ब्रह्मा जी उठते हैं, उस देखी हुई महिमा का स्मरण करते हैं और फिर प्रणत हो जाते हैं। बड़ी देर तक यह क्रम चलता रहा।

बहुत देर—शत-शत प्रणिपात के अनन्तर सृष्टिकर्ता ने अपने को तनिक आश्वस्त किया। वे धीरे से उठे, नेत्र पोंछे। एक बार श्यामसुन्दर की ओर देखा—गर्दन झुक गयी। दोनों हाथ जोड़ लिये। जैसे अपने को वे निराश्रय अनुभव कर रहे हों और आश्रय की याचना करते हों। मन उस श्याम रूप में एकाग्र हो रहा था। शरीर में कम्प था। गद्गद वाणी से वे स्तुति करने लगे।

'नवजलधरश्याम, विद्युद्वसन, गुञ्जागुच्छों को कुण्डल बनाये, मयूरमुकुटी, वनमाली, हथेली पर ग्रास रक्खे, कक्ष में वेत्र दबाये, कटिवस्त्र में मुरलिका खोंसे, दक्षिण हस्त में शृङ्ग लिये, शोभासिन्धु, किसलयकोमलचरण गोपाल, स्तवनीय प्रभु, आपको प्रणाम!' दृष्टि ने शरीर का वर्ण देखा, वसन देखे और फिर कुण्डलों की अरुणाभा से मयूर-मुकुट तक जाकर वह क्रमशः श्रीचरणों पर उपस्थित हो गयी। ब्रह्माजी इस छवि में क्षण भर निमग्न रहे।

'करुणामय, आपने यह गोपाल-वेश मुझ पर कृपा करने के लिये—मेरी प्रार्थना पर, मेरे सर्जन की विकृति को दूर करने के लिये धारण किया है। आपका यह स्वेच्छा-विग्रह—इसमें पाञ्च-भौतिकता की गन्ध तक नहीं। इस आपके साक्षात् विग्रह की महिमा भी मन के द्वारा हृदय में लाने में मैं असमर्थ हूँ, जिसका अनुभव आपने कृपा करके एक क्षण के लिये अभी कराया।

'ज्ञानस्वरूप का अनुभव हो भी तो क्या लाभ— मैंने सदा देखा है कि ज्ञानस्वरूप की अनुभूति का प्रयत्न छोड़कर, बिना घर से कहीं गये, घर पधारे संतों के श्रीमुख से निकली आपकी कथा का श्रवण करते हुए जो लोग आपको ही प्रणाम करते हैं, शरीर से आपकी अर्चा करते हैं, वाणी से आपका गुणानुवाद गाते हैं, मनसे आपका चिन्तन करते हैं, त्रिलोकी में सबसे अजेय होने पर भी आप उनके द्वारा जीत लिये जाते हैं।

'दूसरी ओर जो आपकी कल्याण-स्रोतस्विनी भक्ति की उपेक्षा करके कैवल्यज्ञान की प्राप्ति का ही प्रयत्न करते हैं, उनको केवल क्लेश ही प्राप्त होता है। धान्य की भुस कूटनेवाले को श्रम के अतिरिक्त और क्या हाथ लगना है।

'यह नवीन बात—इस व्रजभूमि में आकर हो गयी हो, सो नहीं। प्राचीन काल से बहुत-से योगी अपनी समस्त इच्छाएँ आप पर छोड़कर; अपने प्रारब्धप्राप्त भोगों पर संतुष्ट रहते हुए, आपकी अमृतमयी कथा से प्राप्त भक्ति के द्वारा आपके आराध्य स्वरूप को जानकर इस संसार से आपके शाश्वत, च्युतिहीन, निर्मल परम धाम को प्राप्त हुए हैं।

'इतना होने पर भी, हे विभु, जो निर्मल-अन्तःकरण पुरुष हैं, वे ही आपके निखिलगुण-गणैकधाम स्वरूप को जान पाते हैं; क्योंकि आपका स्वरूप निर्विकार, स्वानुभवरूप, समस्त रूपों से परे होने से एकात्मरूप से ही जानने योग्य है। दूसरा कोई मार्ग ही नहीं उसके जानने का।

'आप सम्पूर्ण गुणों की आत्मा हैं। सम्पूर्ण गुण आप से ही अपना गुणत्व प्राप्त करते हैं। अतः मेरे कल्याण के लिये अवतार धारण किये आपके गुणों की गणना करने में कौन समर्थ हो सकता है! अनन्त काल में भूमि के रजःकण, आकाश के तारे, वायु में उड़नेवाले त्रसरेणु भले गिने जा सकें, परंतु आपके गुणों का वर्णन तो सम्भव नहीं।'

इसलिये जो, आप कब कृपा करेंगे!' इस प्रकार आपके कृपा-कटाक्ष की अनवरत प्रतीक्षा करते हैं, प्रारब्ध के भोगों को शान्त भाव से भोगते हुए, हृदय, वाणी एवं शरीर से आपके प्रति प्रणत रहकर जीवनयापन करते हैं, मुक्तिपद के तो वे स्वतःसिद्ध अधिकारी हैं।'

श्यामसुन्दर-छवि सम्मुख है। 'मुझपर कृपा करके ही प्रभु इस रूप से धरा पर आये हैं' यह स्मरण हुआ—श्रीविग्रह का महत्त्व मन से वाणी में प्रकट हुआ। उस श्रीविग्रह से स्नेह एवं उससे पृथक् साधना के परिपाक पर ध्यान गया। इस सौन्दर्यघन के प्रम ने कितनों को परिपूत किया है, यह भी मानस में प्रत्यक्ष हुआ। 'यह लीलामय रूप—निर्गुण स्वरूप भी इसी का है; पर वह तो निर्मल अन्तःकरण की सम्पत्ति है। लीलाचिन्तन, गुणकथन ही उपाय है एक मात्र; परंतु गुणों का तो कोई पार ही नहीं। तब? तब जिसकी कृपा की प्रतीक्षा में ही मुक्तिपद 'दाय' बन जाता है वहाँ की करुणा का कोई ठिकाना है! 'ऐसे दयामय से मैंने छल किया!' ब्रह्माजी का मस्तक और झुक गया। उनकी वाणी और गद्‌गद हो गयी।

'मैं आर्यमर्यादा का प्रतिष्ठाता कहा जाता हूँ; किंतु प्रभो! मेरा अनार्यत्व तो देखिये! महामाया के स्वामी, अनन्त, अनादि आप परात्पर प्रभु के ऐश्वर्य को देखने के लिये मैंने माया की—जैसे अग्नि की एक तुच्छ शिखा भास्कर को प्रकाशित करके देखना चाहे। अच्युत! नाथ! आप मुझे क्षमा करें। मैं रजोगुण का अधिष्ठाता हूँ—मेरी यह राजसिकता—मैंने आपसे पृथक् अपने को मान लिया। आपकी महामाया से मेरे नेत्रों पर तमस् की यवनिका पड़ गयी। मुझपर आपका परम अनुग्रह हुआ। मैंने समझा—मैं अनाथ नहीं हूँ। मेरे भी नाथ हैं! मैं तो तुच्छ हूँ, पञ्चतत्त्वों से निर्मित इस सात वितस्ति (सात लोक) के अखण्डरूप शरीर को धारण करनेवाला कहाँ मैं और कहाँ वह आपकी महा महिमा—वह विराट् स्वरूप, जिसके एक-एक रोम-कूप में ऐसे अनन्त-अनन्त ब्रह्माण्ड परमाणुओं-से चिपके रहते हैं।'

'मैं क्षम्य हूँ—क्योंकि, हे अधोक्षज, शिशु जब माता के गर्भ में पैर पटकता है, तब माता उसे अपराध नहीं मानती। अनन्त प्रभु—यह 'है और नहीं है' का सम्पूर्ण प्रपञ्च आपके भीतर ही तो है! प्रपञ्च ही क्यों—श्रुति कहती है कि प्रलयपयोधि में शेषशय्या पर सोये श्रीमन्नारायण की नाभिनाल से ही ब्रह्मा उत्पन्न हुआ है। मैं आपका पुत्र हूँ—इसे आप अस्वीकार नहीं कर सकते! तब क्या पिता से पुत्र को क्षमा भी न मिलेगी?'

अच्छी रही—ये पक्वकेश वृद्ध पितामह तो पुत्र हैं और यह कन्हैया, यह गोपाल पिता है उनका। अच्छा हुआ कि दाऊ नहीं है पास में। लेकिन ब्रह्मा बाबा तो कहते ही जा रहे हैं—

'आप सचमुच उस अनन्त समुद्र में सोनेवाले नारायण नहीं हैं। आप तो सबके हृदय में रहनेवाले, सबके आत्मरूप, सम्पूर्ण लोकों के स्वामी और सबके द्रष्टा हैं! वैसे वह आपके शरीर से ही उत्पन्न जल में सोया आपका शरीर भी मिथ्या नहीं। वह आपका योगमाया से आश्रित विग्रह भी सत्य ही है। मैंने सृष्टि के आदि में जल में सोये आपके उस शरीर का साक्षात् किया, उस शरीर में सम्पूर्ण संसार को देखा, फिर उसी रूप को अपने हृदय में भली प्रकार साक्षात् किया। जब मैंने ध्यान किया, तभी आपने कृपा करके शीघ्र ही मुझे दर्शन दिया है।' श्यामसुन्दर मुस्करा रहा है। पता नहीं ब्रह्माजी ये किसकी बातें कह रहे हैं। उस स्मित को स्रष्टा ने देख लिया; किंतु वे अब भ्रान्त होने से रहे।

'योगमाया को स्वीकृत करके आपका यह अवतार—इस अवतार में भी तो इस जगत् में और इससे बाहर जो कुछ है, वह सब आपने अपने उदर में ही मैया को दिखला दिया था। जिसके उदर में ही यह सब जड-चेतन विश्व अपने सम्पूर्ण अङ्गों के साथ ज्यों-का-त्यों है, उसकी यह अन्वेषण-क्रीड़ा माया नहीं तो और है क्या? आपकी माया का साक्षात् तो मैंने अभी ही किया है। पहिले अकेले थे; फिर समस्त बालकों एवं बछड़ों के रूप में हो गये; फिर उतने ही चतुर्भुज स्वरूप, जो मेरे सहित सम्पूर्ण देवताओं से उपासित थे, दिखलायी पड़े और फिर वही अकेले खड़े हैं। सर्वरूप में और सबको निरस्त करके अद्वय ब्रह्मस्वरूप—यही तो शिक्षा दी आपने मुझे?'

श्रीनन्दनन्दन का वह श्रीविग्रह—मयूरमुकुटधारी गोपाल-वेश सम्मुख है। कुछ ही समय पूर्व ब्रह्माजी ने उसे गोप-बालकों एवं बछड़ों के रूपोंमें, फिर चतुर्भुजरूपों में देखा है। सृष्टि के आदि में जिस भगवान् नारायण का साक्षात् दीर्घकालीन तप से उन्होंने किया था, वही रूप तो वे सब चतुर्भुज रूप थे। ब्रह्माजी ने समग्र ब्रह्म का वर्णन प्रारम्भ किया। निर्गुण स्वरूप, परात्पर सगुण रूप, दोनों का एकत्व और दोनों का अभेद-तत्त्व यह सम्मुख गोपाल-वेश में प्रस्तुत है। उपनिषदों का सर्वात्मवाद वाणी में—ब्रह्मवाणी में व्यक्त होता रहा। वह तत्त्वज्ञान तो श्रीमद्भागवत में ही देखने योग्य है।

श्यामसुन्दर के मुख पर वही मन्द स्मित। ब्रह्माजी सारा वेदान्त कह गये, पर वह ज्यों-का-त्यों खड़ा है। वाणी तनिक रुकी—वे पुनः बोले—'प्रभो! मैंने यह सब वैदिक ज्ञान जाना भर है। आपके तत्त्व को, आपकी महिमा को तो आप के चरणकमलों की कृपा के लेश से ही कोई परम भागवत जानते हैं। दूसरा तो कोई भी चिरकाल तक मनन करके भी उसे जान नहीं सका है। किसी ने जाना भी हो तो जाने—मुझे उसे जानने की कोई इच्छा नहीं। मैं तो अपना यह परम सौभाग्य मानूँगा कि इस शरीर में या और किसी भी पशु-पक्षी आदि शरीर में रहकर आपके किसी एक प्रिय-जन का सेवक होकर आपके चरणकमलों की सेवा कर सकूँ! मेरा यह ज्ञान, यह ब्रह्मपद—व्यर्थ है सब! ये व्रज की गोपिकाएँ, ये सुरभियाँ धन्य हैं—जिनके स्तनों के अमृत का आपने अत्यन्त प्रसन्न होकर पान किया है। उनके बच्चे और बछड़े बनकर इतनी तृप्ति से इनका दुग्ध पिया है—आप उसी यज्ञभोक्ता ने परम तृप्ति से आरोगा है, इनके दूधको जिसे अब तक कोई यज्ञ तृप्त करने में समर्थ न हुआ। ये नन्दव्रज के निवासी धन्य हैं, परम सौभाग्य है इनका! परमानन्द, पूर्ण, शाश्वत ब्रह्म इनका मित्र है।'

'देव! इनके भाग्यों की महिमा का वर्णन तो असम्भव है; किंतु हम ग्यारह इन्द्रियों के ग्यारह अधिष्ठाता देवता भी अत्यन्त भाग्यशाली हैं। इनकी इन्द्रियों को पात्र बनाकर निरन्तर हम आपके उसी अमृतासव को पान करते हैं, जिसके लिये भगवान् शंकर आपके चरण-कमलों के ध्यान में लगे रहते हैं। पर—यह इन्द्रिय-अधिष्ठाता देवता के रूप में, अंशतः तृप्ति कहाँ संतुष्ट करती है। मुझे तो इस व्रज में ही आप कुछ बना दीजिये! कुछ भी—तृण, पाषाणादि कुछ! मुझे यह ब्रह्मा-पद नहीं चाहिये। मेरा बड़ा सौभाग्य होगा कि गोकुल के किसी के भी श्रीचरणों की रज मुझपर पड़ेगी। यहाँ तो सबके जीवन-सर्वस्व वही आप हैं, जिनकी चरण-रज श्रुतियाँ अब तक ढूँढ़ रही हैं। श्रुतियों का यह मूर्तरूप मुझे नहीं चाहिये!'

'प्रभो! करुणामय! मैंने बड़ा अनर्थ किया है। मैंने इन व्रजवासियों को संतति-वियोग देना चाहा! वह सफल हो या विफल, परंतु मैंने तो अपनी ओर से किया ही। उसका परिमार्जन होना चाहिये। इन सबको कुछ पुरस्कार मिलना चाहिये। मैं तो स्वयं इनकी चरण-रज का भिक्षुक कंगाल हूँ। मैं इन्हें क्या दे सकूँगा। अच्छा या बुरा, मैं आपका पुत्र हूँ! आप ही मेरे इस अपराध का मार्जन कर दें। आप ही इन्हें पुरस्कृत करें!'

लेकिन—लेकिन आप इन सबको क्या देंगे? मेरा चित्त तो बड़ा चञ्चल हो रहा है यह सोचकर। विश्व का समस्त भोग तो उन्होंने आपको समर्पित कर दिया है। मोक्ष—आपका परम धाम? कैसा अन्याय होगा। विष देने आनेवाली पूतना को उसके समस्त कुल के साथ आपने अपना धाम दिया है; फिर जिन्होंने आपके लिये घर, सुहृद्, प्यारे प्राण, चित्त—सब समर्पित कर रक्खे हैं, उन्हें भी वही पुरस्कार कैसे दिया जा सकेगा? आप उन्हें निर्मल-चित्त कर देंगे—यह सोचा ही नहीं जा सकता। वे तो स्वतः परम पावन हैं। रागादि तभी तक हृदय में रहते हैं, घर तभी तक बन्धन-कारक होता है, मोह तभी तक मोहित करता है, जब तक कोई तुम्हारा नहीं हो जाता!'

अब तक योगमाया का प्रभाव चल रहा था। व्रजवासियों को कुछ देने की इच्छा थी। लेकिन कब तक? श्यामसुन्दर के जनों के निर्मल स्वरूप का चिन्तन करते ही रहस्य हृदय में प्रत्यक्ष हो गया। स्रष्टा चौंके—

'देव! यद्यपि आप प्रपञ्चहीन हैं, तथापि है सब यह आपकी ही माया। आपने ही मुझे इस प्रकार अपनी लीला का पात्र बनाया है। यह सब तो अपने शरणागतों की आनन्द-वृद्धि के लिये लीला कर रहे हैं आप। अतएव जो इस लीला रहस्य को जानते हों, वे जानें। मैं तो केवल इतना जानता हूँ कि आपका ऐश्वर्य मन, वाणी एवं शरीर से परे है। यह जगत् आपका है। आप ही इसके स्वामी हैं। आपने ही मुझे इसकी रचना का भार दिया है। अतः अब आज्ञा दीजिये कि मैं क्या करूँ।'

'वृष्णि-कुल-कमल को प्रकाशित करनेवाले महासूर्य, पृथ्वी-देवता-विप्र-गौ की अभिवृद्धि करनेवाले नाथ, धर्मध्वंसी नरेशों एवं राक्षसों के विनाशक, कल्प-कल्प तक भगवान् भास्कर के समान पूज्य भगवान् श्रीकृष्ण! आपके श्रीचरणों में प्रणाम!' ब्रह्माजी पुनः साष्टाङ्ग प्रणिपात करने लगे भूमि पर लोट कर।

पितामह, आप बछड़े तो यहाँ समीप छोड़ दें और सखाओं को वे जहाँ जैसे बैठे थे, बैठा दें! शीघ्रता करें! दाऊ भैया आने ही वाला है। वह प्रतीक्षा करते ऊब रहा है। अब ब्रह्मलोक पधारें! सृष्टिकर्त्ता का कमलासन आपकी प्रतीक्षा कर रहा है!' कन्हैया ने बड़े शान्त स्निग्ध स्वर से कहा।

ब्रह्माजी उठे। उन्होंने हाथ जोड़े। कुछ कहनेवाले थे; किंतु श्यामसुन्दर के नेत्रों में भाव है 'अब हो गया—आप शीघ्र पधारें!' उनका हंस चुपचाप एक ओर बैठा है, अतः उन्होंने तीन बार परिक्रमा की, पुनः चरणों में प्रणाम किया। हंस पर बैठे।

× × × ×

'कन्हैया, अरे आ गया तू! बड़ी जल्दी आया! हम सबने अभी तक एक ग्रास नहीं खाया है!' सारे गोप-बालक उल्लसित हो उठे। उन्होंने देखा, श्यामसुन्दर हाथ पर वही ग्रास रक्खे, बछड़ों को साथ लिये चला आ रहा है। 'ओह, दाऊ भैया भी आ गया!' उल्लास द्विगुणित हो गया। बछड़े तो पास हरितभूमि पर चरने लगे और श्याम-बलराम सखाओं के मध्य आ विराजे।

बालकों ने समझा—श्यामसुन्दर क्षण भर में लौट आया है। एक वर्ष व्यतीत हो चुका—किसी को पता नहीं। यही तो होता है—अनन्त-अनन्त जन्म ब्रह्मा की माया में मोहित, संसार-स्वप्न देखते व्यतीत हो जाते हैं; किंतु जब वह नित्य सखा आता है—ये वियोग के कल्प—स्मरण भी आता है क्या इनका? क्षण के बराबर भी तो नहीं लगते। ब्रह्मा की माया—पर ब्रह्मा की माया कहाँ मुग्ध कर सकती है श्याम के सुहृदों को। ये बालक—ये तो अपने इसी चपल की योग माया से मुग्ध थे।

वही पुलिन, वही बाल-मण्डली, वे ही छीके, वे ही पात्र और वही भोजन का आदान-प्रदान। वही हास्य, वही उल्लास। इस बार थोड़ा-सा अन्तर पड़ा। कर्णिका पर श्याम के साथ दाऊ भी है और वह पता नहीं क्यों विचित्र ढंग से बीच-बीच में मुस्करा रहा है। उसके आजाने से तनिक कन्हैया कम चापल्य करने लगा है। एक वर्ष—पूरा एक वर्ष हो गया, बालकों को क्षणार्ध लगा है। उनके सब पदार्थ—योगमाया ने उसी प्रकार तो सुरक्षित रक्खा है सब को।

भोजन समाप्त हुआ। कपियों एवं पक्षियों ने उच्छिष्ट पात्रों पर छीना-झपटी प्रारम्भ की। सब ने कालिन्दी-सलिल में हाथ-मुख धोये। इतनी मछलियाँ, इतने कछुए, ये सब जल-पक्षी—सब-के-सब वहीं एकत्र हो गये। मछलियाँ एक के ऊपर एक उछल रही हैं। कछुए एक दूसरे पर चढ़े जाते हैं। पक्षी उनकी पीठों पर बैठे फुदक रहे हैं। बगुले तक मछलियों की ओर नहीं देखते। जल में घुला एक कण—उस जल का एक बिन्दु—सबकी छीना-झपटी हाथों से धोये उच्छिष्ट के लिये ही है। प्रवाह के साथ वे उस जल को लेने झपटे बह रहे हैं।

बालकों ने कमल-पत्र तोड़े—पत्र-पुटक से जल पिया। कन्हैया ने एक के दूसरे के पटुके से हाथ पोंछ दिये और तीसरे के उत्तरीय से मुख। सब एक दूसरे के उत्तरीय को खींच-खाँचकर उससे हाथ-मुख पोंछ रहे हैं। भोजन के अनन्तर वृक्ष की छाया में थोड़ी देर विश्राम हुआ। कोई बैठा, कोई लेटा, कोई गाता रहा। बछड़े भी बैठ गये हैं।

'यह अजगर का चर्म! कैसी अच्छी गुफा बन गयी खेलने योग्य!' कन्हैया ने अघासुरका शरीर दिखलाया।

'यह तो सूख भी गया! बड़ी तीव्र धूप थी आज।' भद्र ने उसे छूकर मस्तक हिलाया। उनकी समझ से तो आज ही सूखने के लिये धूप ही कारण हो सकती है। घर लौटे वे सायंकाल। व्रज में एक वर्ष पूर्व का जीवन आ गया। सब बछड़े नन्द-गोष्ठ में भाग गये और वहाँ से लाये गये। माताओं को बालकों को बलात् मैया यशोदा के यहाँ से घर लाना पड़ा, किसी को अद्भुत न लगा—जैसे सब स्वाभाविक हो। घर-घर बच्चों में एक ही चर्चा है—कन्हैया ने आज वन में बड़ा भारी अजगर मारा है! बहुत बड़ा अजगर!'

—❀⊃❀⊃❀—

गो-चारण

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं बिभ्रद् वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम् ।
रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दैर्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः ॥

—भागवत १०।२१।५

'बाबा, अब मैं बड़ा हो गया न ?' कन्हैया ने बाबा की गोद में बैठकर दोनों हाथ उनके गले में डाल दिये।

'हाँ, हाँ, तू अब बड़ा हो गया और चतुर भी !' बाबा ने उसे हृदय से लगा लिया और पुचकारा।

'बाबा, तब मैं अब सब गायें और वृषभ चराने को ले जाया करूँगा !' श्याम ने पहिले ही सखाओं से मन्त्रणा कर ली है।

'अरे नहीं, गायें चराने योग्य बड़ा तू कहाँ हुआ है।' बाबा चौंके। उन्हें क्या पता था कि इस प्रकार की बात कहने के लिये भूमिका बना रहा है उनका यह कृष्णचन्द्र।

'नहीं, मैं बड़ा हो गया हूँ ! मैं सब गायें ले जाऊँगा ! कल से सब ले जाऊँगा !' एक बार कोई हठ पकड़ लेने पर वह हठी क्या मानता है। उसने बाबा की दाढ़ी में अपनी अँगुलियाँ उलझा दीं और मचलने लगा।

'गायें बड़ी चञ्चल होती हैं। वे भाग जाती हैं दूर-दूर। वृषभ तो परस्पर लड़ने लगते हैं।' बाबा ठीक ही कह रहे हैं। गोपों ने उनका अनुमोदन किया।

'मैं वृषभों को लड़ने नहीं दूँगा ! वे लड़ेंगे तो कान पकड़कर अलग कर दूँगा। गायें तो मेरे पुकारते ही दौड़ आयेंगी ! अब भी तो वे मेरे पास वन में दौड़ आती हैं।' कौन कहे कि कन्हैया ठीक नहीं कह रहा है। सब जानते हैं, वृषभ लड़ते हों और श्याम वहाँ पहुँच जाय तो वे लड़ना भूलकर एक साथ उसके समीप दौड़ जायँगे। गायें वन में उसकी मुरली-ध्वनि सुनकर या पटुके का छोर देखकर जब कान उठाकर, पूछें ऊची करके हुंकार करती दौड़ती हैं, गोप उन्हें रोकने में कभी सफल नहीं हो पाते।

'गायों को दूर चराने ले जाना पड़ेगा ! तू थक जायगा।' गायें क्या दो-चार हैं या नन्हे बछड़े हैं, जो उन्हें पास ही घुमाकर लाया जा सके। सहस्र-सहस्र गायों को चराने के लिये विस्तृत वन में गये बिना कैसे काम चल सकता है।

'मैं थकूँगा नहीं !' कन्हैया को तो दूर वन में जाने को मिलेगा, यह एक कुतूहल मिल गया है।

'तू कुछ और बड़ा हो जा तब !' बाबा ने उसे समझाने का प्रयत्न किया।

'मैं कल सबको खोल दूँगा और फिर भगा ले जाऊँगा !' श्याम रूठकर भाग गया। उसकी धमकी ने बाबा को चिन्तित कर दिया। सचमुच जब गोप गायें ले जाने लगें, उस समय वह उन्हें पुकार ले तो कैसे गायों को रोका जा सकता है। गायें उसके पीछे निश्चय ही भाग जायँगी।

'नीलमणि पाँच वर्ष का हो गया है ! बालक का आग्रह तोड़कर उसके हृदय को दुखी नहीं करना चाहिये। गोप उसके साथ जायँगे।' वृद्ध उपनन्दजी तो सदा श्याम का ही समर्थन करते हैं। जब श्याम मानता ही नहीं, तब उपाय भी क्या। उस हठी से कोई उपाय चलने से रहा। महर्षि शाण्डिल्य से पूछकर गो-चारण-महोत्सव शुभ-मुहूर्त में प्रारम्भ करना निश्चित हो गया।

× × × ×

'कन्हैया गायें चराने जायगा !' मैया को कोई यह बात समझा दे। 'वह बछड़े चराने जाता है, यही क्या कम है। जब वह प्रातः घर से जाता है, वह बेचैन हो जाती है। श्याम चञ्चल है। पता नहीं कितनी दूर चला गया हो। कहीं यमुना किनारे न चला जाय। वह बार-बार किसी-न-किसी को भेजती रहती है यह देखने के लिये कि उनका नीलमणि समीप ही है न। फिर ये असुर—यहाँ वृन्दावन में भी वे पहुँचे ही रहते हैं। पता नहीं व्रजेश्वर को यह क्या सूझी है। एक ही तो पुत्र है। घर में गायें चरानेवाले सेवकों का क्या अभाव है। गायें लेकर दूर जाना पड़ेगा। नन्हा-सा कन्हाई—थक जायगा वह। पता नहीं मध्याह्न में लौट भी सकेगा या नहीं। गोप साथ तो जायँगे; परंतु वह चञ्चल गोपों की बात क्या मानेगा ? गोप उसे क्या यमुनातट पर, ह्रद में, आतप में जाने से रोक सकेंगे ? इन गोपों का ही क्या भरोसा—ये सब स्वयं तो छाया में बैठ जायँगे और उसके भोले, सुकुमार लाल को गायों के पीछे दौड़ा-दौड़ाकर थका डालेंगे !' मैया जितना ही सोचती है, उतनी ही व्याकुल होती है। वह करे क्या ? व्रजेश्वर का उसने कभी प्रतिवाद किया नहीं। हृदय मानता नहीं और व्रजेश्वर के सम्मुख मुख खुलेगा नहीं।' वह बार-बार सोचती है कि दृढ़तापूर्वक अस्वीकार कर देगी इस प्रस्ताव को; पर स्वयं सोचती है कि व्रजेश के सम्मुख होने पर ऐसा कैसे कर सकेगी।

'व्रजेश कभी आग्रह करना या आज्ञा देना जानते ही नहीं। उनको तो सहज सहमत किया जा सकता है; पर यह श्याम—यह बड़ा हठी है। व्रजेश कह ही तो रहे थे कि वह सबसे बड़े वृषभ 'धर्म' के सींग पकड़कर लटक गया था।' मैया का हृदय धक्-से हो गया ! 'कहीं वृषभ ने तनिक सिर हिलाया होता ! पता नहीं कितने उत्पात करेगा वह अपनी हठके पीछे।' पृथ्वी पर मचलकर लोटते, गोष्ठ में गायों के मध्य भूमि पर पड़े, कमल-लोचनों से अश्रु बहाते श्यामसुन्दर की हठ का स्मरण करके ही मैया के सब निश्चय डावाँडोल हो उठते हैं।

× × × ×

'कृष्णचन्द्र, तू हठ मत कर, बेटा !' प्रातः ही कनूँ गोष्ठ में जा खड़ा हुआ। वह अड़ा है कि आज सब गायें ले जायगा। बाबा ने उसे पुचकारा गोद में उठाकर। 'आज ही मैं महर्षि शाण्डिल्यजी से मुहूर्त पूछूँगा। तू गायों की पूजा करके तब उन्हें ले जायगा न ?'

'महर्षि के समीप मैं भी चलूँगा !' गो-पूजन श्याम को बहुत प्रिय है। गायों की पूजा होगी, वह उन्हें सजायेगा, यह तो बड़ी अच्छी बात है। कहीं बाबा महर्षि को मना कर दें तो—उसने हठ की तुरंत मुहूर्त निश्चित करा देने के लिये। बाबा को विवश होना पड़ा, उसी समय महर्षि के यहाँ जाने को।

'कार्तिक शुक्लाअष्टमी कल ही तो है !' आज कन्हैया गोप-बालकों के साथ बड़ी उमंग में है। वह कल गो-पूजन करेगा। कल से उसका गो-चारण प्रारम्भ होगा। सखाओं को साथ लिये आज वन में वह मयूरपिच्छ, गुञ्जा, मणि, पुष्प एकत्र करने में लगा है। 'यह कामदा के लिये है ! यह धर्म को पहिनाऊँगा ! यह माला कृष्णा के गले में सुन्दर लगेगी और यह नन्दिनी के !' ढेरों सामग्री एकत्र की सबने। जब वे वन से लौटे, माता को बड़ी कठिनाई हुई ब्यालू कराने में। बड़ी देर तक वह अपनी सामग्री दिखाता और सम्मति लेता रहा। मैया को, रोहिणीजी को, बाबा को, पता नहीं किसको-किसको उसने अपने संचय दिखाये। सभी सखाओं ने कुछ-न-कुछ संग्रह किया है। सब में उत्साह है दिखाने का। सब मानते हैं कि उनका संकलन सर्वश्रेष्ठ है।

श्याम कल गो-चारण प्रारम्भ करेगा। उसके साथ सभी गोप-बालक अपनी गायें ले जाये बिना कैसे मान सकते हैं। सबको यह महोत्सव करना है। नन्दग्राम और बरसाने के एक ही आचार्य हैं—महर्षि शाण्डिल्य। उनकी अनुमति से बृहत् पटमण्डप गोपों ने दोनों ग्रामों के मध्य में खड़ा कर दिया है। अन्ततः लक्ष-लक्ष गायें, शतशः गोप-बालक और सभी नर-नारियों के एकत्र होने को स्थान भी तो चाहिये।

बालक का गो-चारणारम्भ—गोकुल का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संस्कार—व्रज का महामहोत्सव और वह कल ही है। प्रत्येक घर में उसी की प्रस्तुति हो रही है। प्रातःकाल ही नन्दबाबा ने महर्षि से मुहूर्त पूछा है। दिनभर गोप और गोपियाँ व्यस्त रहे हैं। भवन, मार्ग, द्वार, सभी सज्जित किये गये हैं। मण्डप तो किसी चक्रवर्ती सम्राट् के अभिषेकमण्डप से भी अधिक शोभा-सम्पन्न हो गया है। कदलीस्तम्भ, तोरण, मालाएँ, रत्नहार, कलश, फल, पुष्प—जैसे सम्पूर्ण व्रज आज एक छोटा पीठ बन गया है। साज-सज्जा का विपुल विस्तार उसमें सीमित ही नहीं हो पाता। गोपों के कुशल कर आज विश्वकर्मा से अधिक कलामय हो उठे हैं।

समिधा, आज्य, दधि, दुग्ध, शाकल्य, शर्करा, मधु, तिल, अक्षत, चन्दन, सुगन्धित ओषधियाँ, तीर्थजल, पता नहीं क्या-क्या अभी से एकत्र होने लगा है। विप्रवर्ग वेदियाँ, हवनकुण्ड, मण्डल आदि बनाने-बनवाने में लगा है। स्वयं महर्षि शाण्डिल्य निर्देश कर रहे हैं।

'व्रजेश, इस ओर उच्चासन देवताओं के लिये! यहाँ तीन रत्नासन त्रिदेवों के लिये! यहाँ बृहत् विस्तृत भाग ऋषिगण के लिये!' महर्षि केवल ब्राह्मणों को ही नहीं, मण्डप के सभी निर्माण में आदेश दे रहे हैं। भला, कौन महर्षि या देवता कन्हैया के इस महोत्सव में पहुँचने का सौभाग्य छोड़ देगा। महर्षि शाण्डिल्य लगे हैं सबकी यथोचित सम्मान-व्यवस्था की पूर्व प्रस्तुति में।

गोपियाँ—उनके कार्यों का भी ठिकाना नहीं। गायों, बछड़ों, वृषभों के लिये यथोचित रत्नखचित झूलें चाहिये। आभरण छाँटने हैं उन सबके लिये। गृह एवं द्वार को सज्जित करना है। बालकों के लिये, अभ्यागतों के लिये, विप्रों के लिये वस्त्र-रत्नादि सज्जित करने हैं। पूजन-सामग्री प्रस्तुत करनी है।

पूरे दिन भर और पूरी रात्रि भर समस्त व्रज आनन्द, उल्लास, उत्साह और कार्य में व्यस्त रहा। गोपियों ने जैसे ही सबको भोजन कराया, वे स्थान-परिष्कार करके पकान्न बनाने में लग गयीं। रात्रि भर उनके कलकण्ठ से कन्हैया के मधुर चरित सहज रागबद्ध निकलते रहे। कङ्कण क्वणित होते रहे। कड़ाही छन-मन करती रही।

गोप रात्रिभर प्रकाश किये गोष्ठ सज्जित करते रहे, मण्डप में सामग्री पहुँचाते रहे और इधर-उधर उनका आवागमन बना रहा। ब्राह्मणों को कहीं सर्वतोभद्र बनाना है और कहीं दूसरे मण्डल! उनकी सात्विक कला कदाचित् ही अन्यत्र कभी इस पूर्णता से अभिव्यक्त हुई हो।

कन्हैया सायंकाल में, रात्रि में देर तक जागता रहा है। सखाओं के साथ वह मण्डप में, द्वार पर, गोष्ठ में, गृह में, पता नहीं कहाँ कितने चक्कर काटता रहा। 'यह क्या है? इसका क्या होगा? इसे यहीं क्यों लगाया जाय?' उसे जैसे आज ही सब समझ लेना है। लेकिन इतना अवकाश उसे है नहीं कि अपने प्रश्न के पूरे उत्तर सुनने के लिये खड़ा रहे। बड़ी कठिनाई से माता ने उसे सुलाया है। सभी सखा आज नन्दभवन में ही सो गये हैं।

× × × ×

'मैया, प्रभात नहीं हुआ क्या?' रात्रि में कई बार कन्हाई ने माता रोहिणी से पूछा है। वह ब्राह्ममुहूर्त में ही जाग्रत् हो गया। आज सब सखाओं को उसी ने जगाया। अरे उठो भी, अपनी गायें जल्दी से सजा लाओ तो!'

गोप-बालक उठे और उन्होंने घर जाने के लिये किसी के साथ की भी अपेक्षा नहीं की। चारों ओर जागरण हो रहा है। घर-घर गायनध्वनि उठ रही है। गोप इधर-से-उधर जा रहे हैं। बालकों को साथ की आवश्यकता प्रतीत ही नहीं हुई। मैया बहुत थोड़े बालकों के पीछे सेवक दौड़ा सकी।

क्षितिज पर अरुणिमा आयी। यज्ञमण्डप से गम्भीर शङ्खनाद हुआ। गायों ने एक साथ हुंकार किया, जैसे उन्हें आज के महोत्सव से अपने सम्बन्ध का पता है। गोपों ने उन्हें स्नान कराके वस्त्र से पोंछ दिया है, भली प्रकार सजा दिया है। उनके शृङ्ग, खुर स्वर्ण-रत्नों से भूषित हो चुके हैं। उनके शरीर पर बहुमूल्य झूल है। उनके कण्ठों में मौक्तिक, हीरक मालाएँ हैं। गोष्ठों से सुगन्धित धूप उठ रही है। बड़ी शान्ति से गायें, वृषभ, बछड़े निकले गोष्ठों से। बछड़ों ने बहुत

कम उछल-कूद की। अवश्य ही वे सिर हिलाकर अपने कण्ठ की मालाओं को ध्वनित करते रहे। जब सब यज्ञमण्डप में निश्चित स्थान पर एकत्र हो गये, चपल बछड़े तक मस्तक हिलाना भूल गये—जैसे वे बड़े आश्चर्य में पड़े हों कि यह सब क्या हो रहा है।

रङ्ग-विरङ्गे वस्त्रों, आभूषणों से सजे, नूतन लकुट लिये गोप-बालक पंक्तिबद्ध बैठ गये। उनकी चञ्चलता आज दृगों में ही सीमित हो गयी है। गोपियों और गोपों ने भी नवीन वस्त्राभरण धारण किये हैं। आनन्द से बाबा का अङ्ग-अङ्ग पुलकित है।

आवाहन से पूर्व ही देवताओं ने अपने आसन स्वीकार कर लिये। मण्डप के बाहर मङ्गल-वाद्य बजे, नभ के दिव्य वाद्यों ने जैसे प्रतिध्वनि की। गोपियों के कलकण्ठ के साथ सूत-मागधों का स्तवन और विप्रों का मन्त्रपाठ एकाकार हो गया। नट अपनी कला का प्रदर्शन करने में लगे हैं, मागध और वन्दी अपनी स्मृति तथा प्रतिभा का और वादकगण अपने कौशल का।

कन्हैया - पूजन कर रहा है। गणपति-पूजन, कलश-पूजन, देविका-पूजन, उसके हाथों सम्पन्न कराके महर्षि ने अग्न्याधान किया। व्रज में अग्निदेव अरणि की प्रथम मन्थन-रज्जु के घूमते ही प्रकट हो जाया करते हैं, जैसे वे प्रतीक्षा ही कर रहे हों! देवताओं ने प्रत्यक्ष यज्ञभाग स्वीकार किया। उनकी सविधि अर्चना हुई। पूर्णाहुति देकर महर्षि ने गो-पूजन का उपक्रम किया।

'धर्म!' कन्हैया ने अपने करों में जलपात्र लेकर पुकारा! हिमधवल, पर्वतोत्तुङ्ग, महाककुभ्, वृषभश्रेष्ठ धर्म हुंकार करता सम्मुख आ खड़ा हुआ। उसके चरण धोये गये, शृङ्गों पर जल डालकर उससे महर्षि ने श्याम को सिक्त किया। चन्दन, अक्षत, माल्य, धूप, दीप और नैवेद्य। गोपाल ने अपनी अञ्जलि भरकर मोदक, संयाव, मृदुल दूर्वादल दिये उसे और तब नीराजन करके साष्टाङ्ग प्रणिपात किया।

'भद्र, नन्दी का तू पहले पूजन कर! गोप-बालक श्याम के साथ ही पूजनकृत्य करते चल रहे हैं। अब तक वह पूजन का अग्रणी रहा है। अब उसने बारी-बारी से सखाओं को प्रधानता देनी प्रारम्भ की। वृषभ-पूजन के पश्चात् जैसे ही उसने कपिला के लिये अर्घ्य उठाया, उस धेनु के चारों थनों से अखण्ड उज्ज्वल दुग्धधारा झरने लगी। पूजन-वेदिका से दुग्ध प्रवाहित हो चला।

'कृष्णचन्द्र, तुम लोग एक-एक धेनु एवं एक-एक वत्स का पूजन कर लो!' महर्षि ने स्नेह-पूर्वक समझाया। व्रज का सम्पूर्ण गोधन आज एकत्र है। यदि सबको ये बालक केवल तिलक भी करें—लक्ष-लक्ष गोवंश को पूजित करने में कितना विलम्ब होगा।

'मैं सबकी पूजा करूँगा!' कन्हैया का आग्रह भी ठीक है। आज नवजात बछड़ा भी उसके हाथों मोदक एवं माल्य पाने को समुत्सुक है। किसे इस समारम्भ में निराश किया जाय।

महर्षि ने एक बार गम्भीर दृष्टि से देखा उन कमलनेत्रों की ओर और मौन स्वीकृति दे दी उन्होंने। पता नहीं क्यों उनके नेत्र सजल हो गये। गोपों ने, विप्रों ने, सखाओं ने, सबने प्रत्यक्ष देखा कि प्रत्येक गाय, वृषभ, बछड़े की षोडशोपचार से सविधि पूजा हुई। अकेले कन्हैया ने ही नहीं, सभी सखाओं ने सम्मिलित पूजन किया सबका। न बालकों ने उतावली की और न महर्षि ने। यज्ञ-मण्डप में दुग्ध-कीच हो गयी। दुग्ध बाहर प्रवाहित होने लगा। समस्त पशुओं के कण्ठों में बालकों द्वारा अर्पित पुष्प एवं रत्न-मालाएँ हैं। सबके भालपर तिलक हैं। कैसे यह अपार पशुओं का पूजन कुछ ही देर में सम्पन्न हुआ, कौन कह सकता है। बाबा, मैया, गोप, गोपियाँ इसे महर्षि का योग-चमत्कार बतलाते हैं।

गो-पूजन के अनन्तर श्याम ने सखाओं के साथ आचार्य का पूजन किया। बाबा ने महर्षि के चरणों में अपना सर्वस्व रख दिया। विप्र-पूजन हुआ और उधर मैया ने गोपियों के साथ विप्र-पत्नियों का पूजन किया। असंख्य गायें दान की गयीं। अन्न, वस्त्र, आभरण, रत्न किसे कितने दिये गये या मिले, इसकी न दाता गणना कर सकते हैं और न ग्रहीता। मागध, सूत, वन्दीजन, याचक, सबके लिये समस्या बन गयी कि प्राप्त पदार्थ ले कैसे जायँ। देना चाहकर भी वे ऐसा किसी को नहीं देखते, जो उसे स्वीकार करे।

'बच्चे भूखे होंगे !' मैया ने धीरे से बाबा की ओर मुख करके कहा। वे कहाँ तक यह बात मन में दबाये रहें। आज किसी ने कलेऊ नहीं किया। कन्हैया प्रातः ही क्षुधातुर हो उठता है। आज तो मध्याह्न का भोजन-समय भी व्यतिक्रान्त हो रहा है। विप्रवर्ग के सुपूजित होकर भोजन कर लेने पर मैया ने महर्षि को सुनाने के लिये ही कहा है। गोप तथा गोपियाँ तो अब सायंकाल प्रसाद ग्रहण करेंगी, पर बालक कैसे रहेंगे।

'श्यामसुन्दर, तुम लोग प्रसाद ले लो तो फिर अग्रिम कृत्य हो। गो-चारण से पूर्व कलेऊ कर लेना चाहिये तुम लोगों को !' महर्षि ने आदेश दिया।

मैया को संतोष नहीं है। उसे लगता है, किसी बालक ने कुछ खाया नहीं। सब-के-सब संकोची हैं। यहाँ सबके सम्मुख सब भला, क्या खाते। मुख भर जूठा कर लिया सबने। प्रातः से भूखे हैं और तनिक-तनिक प्रसाद भर लिया। उत्सव की उत्सुकता में इन सबों को इस समय खिलाया भी तो नहीं जा सकता।

× × × ×

मयूरमुकुट एवं रत्नाभरणों से भूषित, अङ्गरागखचित मनोहर श्याम अङ्ग, काजल लगे दीर्घ नेत्र, कुङ्कुम का महर्षि द्वारा खींचा ऊर्ध्वपुण्ड्र और उस पर चिपके चार-पाँच अक्षत, कानों में रत्नकुण्डल, कक्ष में पूजित व्रजेश्वरप्रदत्त वेत्रलकुट, कंधे पर पीतपट एवं कोमल कामरी, अधरों पर मुरलिका—कन्हैया गो-चारण करने जा रहा है। उसी के समान सुसज्जित शत-शत गोप-बालक हैं उसके साथ। आगे है गायों, वृषभों, बछड़ों, का पूजित, सज्जित, अपार समुदाय। दोनों ओर गोप अपने दण्ड लिये चल रहे हैं। गायें, वृषभ बार-बार हुंकार करते हैं। लौट-लौटकर, घूम-घूमकर अपने अद्भुत चरवाहे को देखते हैं और बछड़े तो कूदते, उछलते उससे दूर जाकर फिर उसी के पास लौट आते हैं।

आगे शृङ्ग, नगारे, भेरी आदि वाद्य बज रहे हैं। दोनों ओर आरती का थाल सजाये गोपियाँ खड़ी हैं। उनके करों से और गगन से पुष्पवृष्टि हो रही है। महर्षि शाण्डिल्य विप्रवर्ग के साथ बालकों के पीछे स्वस्तिपाठ करते चल रहे हैं। सस्वर सामगान के साथ अभिषेक करता जाता है विप्रवर्ग। शत-शत शङ्ख निनादित हो रहे हैं। बाबा, वृद्ध गोप-गण और उनके पीछे सेवक, वन्दी आदि। सबके पीछे मैया को आगे करके मङ्गलगान करता गोपियों का समूह चला जा रहा है।

× × × ×

'कनूँ, तू इनको भी चराया कर !' वनसीमा से कुछ ही दूर दिखायी पड़ा मृगयूथ। वे दौड़े हुए आये और गायों में मिल गये। भद्र ने हँसकर ताली बजायी।

'अरे इन सबों को एक-एक फूल ही दे दे, !' सुबल ने व्याघ्र, सिंह, महिष, खड्गी, गवय के उस दल की ओर संकेत किया, जो अभी-अभी दौड़कर गायों के साथ मिलकर चलने लगा है।

'कनूँ, देख न वे भल्लूक कैसे नृत्य करते हैं !' केवल भल्लूक ही नहीं, कपि-मयूरादि सभी थिरक रहे हैं। मधुमङ्गल को भल्लूकों ने अधिक आकर्षित किया।

'तू इन शशकों का कूदना तो देखता ही नहीं !' कन्हैया के चरणों में ही कई उज्ज्वल शशक उलझे-से कूद के चल रहे हैं। वे गायों और गोप-कुमारों के दल में झुंड-के-झुंड आ गये हैं। कुचल जाने की शङ्का भी उन्हें नहीं।

वन्यपशु तो आज गायों के साथ हो गये हैं। ऐसा चरवाहा मिले तो कौन उसके नियन्त्रण में चलने को लालायित न हो। बेचारे पक्षी अवश्य ऊपर ही चहकते उड़ रहे हैं। छोटे पक्षी ही तो पशुओं की पीठ पर बैठ सकते हैं। ये बछड़े तो उन्हें भी बैठने नहीं देते।

आज तो वनसीमा में प्रवेश मात्र करना है। महर्षि ने बहुत शीघ्र लौटने का आदेश दे दिया। गोपियाँ मार्ग के दोनों ओर हो गयीं। गोपों ने भी दोनों ओर होकर मार्ग दिया। विप्रवर्ग भी स्थिर होकर मन्त्र-गान करने लगा। श्याम सखाओं के साथ गायों के मध्य से आगे बढ़ गया।

उसने अपना नन्हा लकुट उठाया और पशु घूम गये। वाद्य पुनः आगे हुआ। गायें चलीं उनके पीछे और तब क्रमशः सबको अधरों पर वेणु धरे, सखाओं से घिरे गोपाल को अपने सम्मुख से निकलते देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

× × × ×

धर्म ने गम्भीर हुंकार की। आज केहरी भी उसके सम्मुख सामान्य क्षुद्र पशु है। गायों और वृषभों ने कान उठाये। गोपों को स्मरण आया कि उत्सव का सबसे मनोरञ्जक अंश तो अब आया है। वाद्य पूरे वेग से बजने लगे। सुविस्तृत भूमि के चारों ओर सब लोग पंक्तिबद्ध खड़े हो गये। समस्त पशु मध्य में हो गये उस मण्डल के। सखाओं के साथ श्याम भूमि के मध्य में पहुँच गया। वनपशुओं ने भी हुंकार की। सबने पूँछें उठायीं और दौड़ना प्रारम्भ किया।

मृग छलाँगें भर सकते हैं, गवय दौड़ सकता है, केहरी और व्याघ्र कूद सकते हैं; किंतु गायों की भाँति वे पूँछ उठाकर चौकड़ी भरते हुए नृत्य कहाँ कर सकते हैं। उन्हें बहुत शीघ्र पता लग गया कि आज उनकी गति यहाँ असफल है। धर्म स्थिर हुंकार कर रहा है। इस उत्सव का जैसे वही आचार्य है। वनपशु एक ओर खड़े हो गये। बछड़ों ने भी इधर-उधर फुदकने के पश्चात् उनका अनुकरण किया। आज गायें वृषभों से अधिक सफल हुई हैं। नन्दिनी—अद्भुत छटा है उसकी। वह अपनी छलाँगों में थकती ही नहीं। कामदा उससे अधिक है और कृष्णा तो सबसे श्रेष्ठ सिद्ध होकर रहेगी।

कन्हैया ताली बजा रहा है। बालक उच्चस्वर से नाम ले-लेकर पशुओं को पुकार रहे हैं। गोप भी उन्हें प्रोत्साहित करते हैं बार-बार। वाद्य तीव्रतर होते जा रहे हैं। गति बढ़ती जा रही है। गो-रज से वायुमण्डल पवित्र हो रहा है।

'कपिला!' उल्लसित होकर गोपाल ने अपनी वनमाला कपिला के गले में डाल दी! कपिला ने आज सबको हरा दिया। सब थकने लगे, पर वह तो जैसे थकेगी ही नहीं। कन्हैया दौड़ पड़ा। माल्य गले में डालकर वह लिपट गया उसके कण्ठ से। कपिला ने शब्द सुनते ही अपने पद स्थिर कर दिये और उसके स्तनों से धारा चलने लगी।

कन्हैया ने एक-एक पशु को पुचकारा। सबको मोदक, संयाव तथा दूर्वा समर्पित की। वन्य पशुओं को भी आज यह सत्कार मिला। 'ले, तू भी थोड़ी घास खा ले!' व्याघ्र और केहरी-दल ने अस्वीकार नहीं किया घास खाना। भला, श्यामसुन्दर भोजन करा रहा हो तो पंक्तिभेद कौन करे।

'अच्छा, तुम सब जाओ!' वनपशुओं को विदा करना सरल नहीं है। वे तो कदाचित् गोष्ठ में बाँधे जाने में भी प्रसन्न ही होंगे। 'अरे, भाग जाओ, नहीं बाध दूँगा खूँटे में!' भला, कौन इसे सुने। बालकों ने बड़े प्रयत्न से सबको पृथक् किया। वे बार-बार भाग आते हैं और गायों में छिपे रहने का प्रयत्न करते हैं।

'आज सब पशु धर्म का आतिथ्य स्वीकार करें!' बाबा ने हँसकर अपने महावृषभ के पृष्ठदेश पर हाथ रक्खा। गोपों ने प्रयत्न किया कि पशुओं को गोष्ठ में ले जायँ; परंतु कोई भी सफल नहीं हो रहा है।

'सब व्रजवासी आज व्रजेन्द्रनन्दन के अतिथि रहें!' महर्षि शाण्डिल्य के परम गम्भीर मुखमण्डल पर भी मन्द स्मित आया।

'व्रज तो श्रीचरणों का आज्ञावर्ती है!' व्रजेश्वर ने चतुराई से हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया महर्षि के पदों में।

जब वृद्धों में भी विनोद आया हो, तरुणों और बालकों की क्या चर्चा। गोपों ने परस्पर दधि-चन्दन उछालना प्रारम्भ कर दिया है पहले से और गोपियों ने माता रोहिणी तथा मैया को भली प्रकार रँग दिया है। बहुत देर तक यह विनोद चलता रहा और तब सबने स्नान किया।

व्रजेश्वर ने सबको नवीन वस्त्र एवं आभूषण प्रदान किये। मैया ने विवश किया अपने प्रेमानुरोध से समस्त नारियों को अपने दिये वस्त्राभूषणों को धारण करने के लिये।

महर्षि ने विधिवत् देवताओं का विसर्जन किया। सब यज्ञिय जल से अभिषिक्त हुए। विप्रों ने पुनः भोजन किया। व्रजेश्वर ने उनको फिर दान किया। विप्रों के विदा होने पर याचक-मागधादि विद्योपजीवी संतुष्ट किये गये।

आज किसी के घर जाने का प्रश्न ही नहीं है। पशु व्रजेश्वर के गोष्ठ में सत्कृत हो रहे हैं। प्रत्येक के समीप घृतदीप रक्खा गया है। समस्त नर-नारीवर्ग रात्रि-जागरण करके उत्सव मनायेगा ही। बाबा ने गोपों को साथ लेकर भजन-कीर्तन प्रारम्भ कर दिया है और मैया का प्राङ्गण गोपियों के सुललित गान से गुञ्जित होता रहेगा।

सचमुच कन्हैया थक गया आज। सभी बालक थक गये। उत्सव के उत्साह में उन्हें अनुभव नहीं हुआ—यह ठीक; परंतु मैया ने सबको शीघ्र भोजन करा दिया और सब स्वतः बहुत शीघ्र निद्रित हो गये। मैया का मन तो बालकों में है। कोई उनकी निद्रा में बाधा न दे। वह बार-बार उन्हें देखने उठती है।

—❀:⊂:❀:⊂:❀—

कालिय-मर्दन

तस्यार्चिभिर्गरलमुद्वमतः शिरस्सु यद् यत् समुन्नमति निःश्वसतो रुषोच्चैः ।
नृत्यन् पदानुनमयन् दमयाम्बभूव पुष्पैः प्रपूजित इवेह पुमान् पुराणः ॥

भागवत १०।१५।२९

श्याम, तुम्हारे ही वाहन सुपर्ण—सत्-शास्त्र से प्रताड़ित यह शतैकशीर्षा कालिय तुम्हारी क्रीड़ा-सरिता कालिन्दी में आ बसा है। तुम्हारी उपासना की यह पावन धारा इस अहंकार से विष-दूषिता हो गयी है। सर्वस्व तुम्हारे श्रीचरणों में समर्पित करके अमानी—अकिंचन होने के स्थान पर दूसरों में हेय-बुद्धि और अपने में श्रेष्ठत्व का आरोप ही तो विष-प्रभाव है। मृतप्राय हैं ये तुम्हारे जन तुम्हारे पथ में; इन्हें अपनी अमृतदृष्टि से कौन जीवनदान देगा, नन्दनन्दन !

दुर्दम कालिय—यह अहंकार तो उपासना की कालिन्दी में आकर और भी अदम्य हो गया। अन्यत्र सुपर्ण—शास्त्र के सम्मुखीन होकर मरणासन्न ही हो गया था यह; पर यहाँ—यहाँ तो यह तुम पर भी आक्रमण करता है। जैसे तुम इसके 'भोग' में आबद्ध हो गये हो, मूर्छित हो गये हो।

नहीं, कनूँ, ऐसा कैसे होगा ! तुम्हारे जन आर्त हैं, आकुल हैं। उनकी दृष्टि एकमात्र तुम्हारे ही श्रीमुख पर है। उन्हें और कोई अवलम्बन नहीं। जिन्हें स्वयं तुमने अपनी दयादृष्टि से इस अहंकार-कालिय के विष से जीवन दिया, तुम उन्हीं की उपेक्षा करके कब तक यह मूर्छा-नाट्य करोगे ? देखो, सारा व्रज—पूरा अन्तर्जगत् आकुल है तुम्हारी इस लीला से।

भैया ! यह वक्रगति, परम क्रोधी और किसी के बस का नहीं ! तुम—एकमात्र तुम्हीं इसका दमन कर सकते हो। दूसरे 'पिपीलिका', 'विहंगम' आदि तो इसके ह्रद की वायु से ही मृत हो जाते हैं।

और सच कालिय कहीं कन्हैया को अपने भोग में बाँधे रह सकता है। जब उसके जन इस अहंकार के विष से मूर्छित होते हैं, अपनों को जीवन देकर वह स्वयं कूद पड़ता है इसके ह्रद में। कालिय का ह्रद—झूठी बात ! यह हृदय का कालिन्दीह्रद तो नित्य कृष्ण का क्रीड़ाह्रद है। कालिय तो यहाँ आ बसा है। श्याम के सखाओं ने जब तक ह्रद की ओर पदार्पण नहीं किया, तभी तक उसका निवास सम्भव है। अब श्याम को बह बाँध रक्खे तो उसके भोग के टुकड़े उड़ जायँगे ! नष्ट होकर रहेगा वह।

श्याम की मूर्छा—आराध्य की विस्मृति—कालिय का प्राबल्य—अहंकार का उत्कर्ष—अपने जनों के लिये यह तो कन्हैया की एक लीला है। कितनी व्यथा, कितना अन्तःपीड़न लिये है यह अहंकार का उत्कर्ष, इसे दूसरा कैसे अनुभव करेगा।

व्रजेन्द्रनन्दन—वह नित्य नटनागर है। उसके चञ्चल चरण थिरकते ही रहते हैं। कालिय के फणों पर थिरकने में उसे आनन्द आता है। श्रुति उसे 'गर्वहारी' कहती है। जो फण उठा, उसी पर उसके कोमल चरण कूद पड़ते हैं। गर्व—अहंकार से वे डरें, जो साधन करते हों। जिन्होंने अपने को उस नित्य-नर्तक पर छोड़ दिया है, उनकी उपासना-कालिन्दी में अहंकार-कालिय के फणों पर उनका वह चिर-चपल नृत्य कर लेगा। जो फण उठेगा—जहाँ अहं का उत्थान होगा—कुचल दिया जायगा वह फण—वह आधार विशीर्ण हो जायगा। कब तक—कहाँ तक कालिय इस कन्हैया की धमा-चौकड़ी सह सकता है। उस गोविन्द का क्रीड़ाह्रदरूप हृदय उसे छोड़ना होगा—वह तो निर्विष—अमल होकर रहेगा और यह साधन से नहीं, उस श्यामसुन्दर के श्रीचरणों से सम्पन्न होगा !

अध्यात्म-जगत् की यह भाव-लीला जब अध्यात्म के नित्याधार दिव्य परात्पर जगत् से इस भौतिक जगत् में अवतीर्ण हुई—

× × × ×

'गरुड़, यदि तुमने पुनः यहाँ किसी जीव को पकड़ा तो तुम्हारी मृत्यु हो जायगी !' महर्षि सौभरि को बड़ा दुःख हुआ था। वे वर्षों से यमुना-जल में तपस्या कर रहे थे। समस्त जलजन्तु उन्हें अपना सुहृद् मानने लगे थे। छोटी-बड़ी मछलियाँ उनके समीप, उनके शरीर से क्रीड़ा किया करतीं। आज गरुड़ ने मत्स्यराज को पकड़ लिया। मछलियाँ इधर-उधर व्याकुल सी दौड़ रही हैं। उनकी विकलता ने ऋषि को क्षुब्ध किया। गरुड़ को उन्होंने पहिले ही मना किया था कि यहाँ वे हिंसा न करें; परंतु गरुड़ क्षुधातुर थे। मत्स्यराज को पकड़ने में उन्हें क्षण भर लगा। क्षुधा के कारण उन्होंने कुछ सुना ही नहीं। ऋषि ने अन्ततः शाप दे दिया।

भाग्य की बात—कालिय नागने ऋषि के शाप की बात किसी से सुन ली। वह तमोगुणी नाग यह न समझ सका कि समर्थ वैनतेय केवल महर्षि की वाणी का इसलिये सम्मान कर रहे हैं कि वे अपने 'ब्रह्मण्यदेव' आराध्य के अनुगत हैं। मूर्ख नाग ने समझा 'गरुड़ भीरु है।'

× × × ×

'प्रत्येक मास यदि तुम लोग मेरी आराधना करोगे तो तुम्हें मेरे द्वारा कोई भय न होगा !' पक्षिराज गरुड़ को शरणागत नागों पर दया आ गयी थी। उन्होंने परित्राण का एक मार्ग निर्दिष्ट कर दिया। रमणक द्वीप नागों का आवास है। गरुड़जी प्रायः भूख लगने पर वहाँ जा धमकते। उनके तुण्ड, नख, पक्षों के आघात से छोटे-बड़े शतशः नाग छिन्न, आहत होते। एक प्रलय-सा दृश्य उपस्थित हो जाता। अन्यत्र कहीं कोई शरणद न देखकर नागों ने एकत्र होकर गरुड़जी की ही शरण ली। गरुड़जी के आदेश से उन्होंने उनकी उपासना प्रारम्भ कर दी।

'गरुड़ हमारा जाति-शत्रु है। मैं उसकी पूजा नहीं होने दूँगा !' कालिय नाग पर अहंकार की मादकता छायी थी। वृद्ध नागों के उपदेश का उसने तिरस्कार कर दिया। तरुणों को अपनी फूत्कार से भयभीत करके पञ्चमी को गरुड़जी की पूजा के लिये एकत्र सामग्री उसने स्वयं भक्षण कर ली।

'एक के अपराध से जातिका ही विनाश होता दीखता है !' नागों की चिन्ता उचित ही थी। उनमें से एक वृद्ध ने साहस किया। वैनतेय समय पर पधारें और आराधना की सामग्री न पाकर रुष्ट हों, इससे पूर्व ही उन्हें सूचना देना हितकर था। वह आगे बढ़ा और सूचना देने में सफल हो गया।

'मैं गरुड़ को देख लूँगा !' एक सौ एक विशाल फण और महाविष के गर्व से मत्त कालिय ने किसी की चेतावनी पर ध्यान नहीं दिया। आकाश में आँधी चलने-जैसा शब्द हुआ। नाग अपने बिलों में भागे। निश्चय था कि अमित-पराक्रम गरुड़ पूरे वेग से आ रहे हैं। रुष्ट गरुड़ भूमि-आवरण को सरलता से भेदन करके नागों को बिलों में से पकड़ लेने में सहज समर्थ हैं; परंतु नाग करें भी क्या, डूबते को तिनके का सहारा !

'आज पता लगेगा कि नाग का विष कैसा होता है !' मदान्ध कालिय ने अपने भोग को कुण्डलाकार किया और फणों को ऊपर उठाकर फूत्कार की। वायु विष से उष्ण हो गया।

'पुरारि ! रक्षा करो !' बेचारे कालिय को एक बार फण फटकारने का अवसर भी नहीं मिला। उसको पक्षिराज के पक्ष का एक ही झटका प्राणान्तक जान पड़ा। जैसे सारे फण फट गये हों। नेत्रों के आगे अन्धकार-सा छा गया। भागा वह पूरी शक्ति से जलमें कूदकर और समुद्र से भगवती भागीरथी के मार्ग से यमुनाजी में पहुँच जाने पर जब उसे निश्चय हो गया कि वह 'सौभरि-ह्रद' में आ गया है, तब कहीं उसने जल से बाहर मस्तक निकाला। यह स्थल पूर्णतः निरापद था उसके लिये।

पक्षिराज से शत्रुता करके कालिय कहाँ जा सकता था। उसने 'सौभरि-ह्रद' को ही अपना स्थायी आवास बना लिया। उसके परिवार के स्त्री-पुत्रादि वहीं आ गये। 'सौभरि-ह्रद' कालिय-

ह्रद हो गया। कालिय-नाग के महाविष से ह्रद का जल अत्यन्त कृष्णवर्ण रहने लगा। उस ह्रद के ऊपर से उड़नेवाले पक्षी ह्रद की वायु लगने से मृत होकर नीचे गिर पड़ते थे। ह्रद के चारों ओर के तरु, लताएँ, तृण उसकी विषैली वायु से सूख कर नष्ट हो गये। वहाँ यमुनाजी के दोनों किनारों पर दूर तक ऊजड़ भूमि हो गयी। रह गया ह्रद के ठीक तट पर वह हरा-भरा विशाल कदम्ब। स्वर्ग से अमृतघट जब गरुड़ ला रहे थे, कदम्ब पर कुछ सीकर अमृत के पड़ गये। वह तरु अमृत-स्पर्श से अमर हो चुका था। विष उसे प्रभावित करने में असमर्थ था।

आज दाऊ का जन्म-नक्षत्र है। माता रोहिणी ने पूजादि के लिये उन्हें रोक लिया, वे गोचारण में न आ सके। कन्हैया भला, अब किसकी सुनने वाला है। 'आज कुछ दूर तक चलें तो सही!' भद्र को उसने अपने कुतूहल से ही सहमत कर लिया। बालक भी नवीन वनश्री देखने के लोभ में बढ़ते गये।

'यह कैसा वन है। यहाँ इतनी उष्णता क्यों है!' किसी को अब तक वृन्दावन में ज्ञात ही नहीं हुआ था कि वसन्त और ग्रीष्म में अन्तर क्या होता है। आज कालिय-ह्रद के समीप पहुँच कर सबको ऋतु का पता लगा। ह्रद के विषैले जल से आती वायु ने पूरे वायुमण्डल में एक ऊमस भर रक्खी है।

'वह ऊँचा हरा वृक्ष है न, हम सब वहाँ चलेंगे!' दूर से श्याम ने ह्रद के तट पर स्थित कदम्ब की ओर संकेत किया।

'तू पेड़ पर चढ़ेगा तो मैं मैया से कह दूँगा!' वरूथप ने समझ लिया कि भारी, सघन कदम्ब क्यों उसके सखा को आकर्षित कर रहा है।

'देख न, कैसी स्वच्छ भूमि है! हम वहाँ खेलेंगे!' सचमुच दूर तक एक तृण का नाम नहीं है। उज्ज्वल, मृदुल पुलिन है।

'वह। जल भी है!' सभी को कुछ प्यास लग गयी है। इस विचित्र वन में उन्हें कहीं मार्ग में निर्झर दिखायी ही नहीं पड़ा।

भगवान् भास्कर पर्याप्त ऊपर आ चुके हैं। आतप में उष्णता है और वायु भी सर्प की फूत्कार के समान हो रहा है। वह तट का कदम्ब—बालकों ने जितना सोचा था, उससे कहीं अधिक दूर निकला। पुलिन की रेणुका में उनके मृदुल चरण तपने लगे। वे भागे और भागीं उनके साथ गायें भी। सबने कदम्ब का छाया में पहुँचकर क्षणभर खड़े होकर श्वास की गति ठीक होने दी और तब जल पीने ह्रद के तट पर बैठ गये।

मञ्जुल मुख स्वेदकणों से भूषित हो गये हैं। मार्ग की धूप ने प्यास को तीव्र कर दिया है। कदम्ब के नीच ओर अधिक उष्णता, प्राणों को आकुल करने वाली वायु तथा बेचैनी भरा वातावरण जान पड़ता है! बालक इसकी मीमांसा कर नहीं सकते। उन्होंने इसे प्यास का परिणाम समझा। सब-के-सब साथ ही अञ्जलि भरकर जल पीने लगे। यहाँ कमल या कुमुद जल में कहाँ, जिनके पत्तों से दोने बनाये जायँ। कदम्बपत्र तोड़ने-जितना धैर्य प्यास ने रक्खा नहीं। गायें उनके साथ ही जल पीने लगीं।

यह क्या—जैसे किसी ने एक साथ हृदय और समस्त नाड़ियों को मसल दिया हो। किसी के मुख से चीत्कार या कराह तक नहीं निकली। सब-के-सब वहीं लुढ़क गये। गायें, बछड़े, वृषभ—सब गिरे। पशुओं ने पैर छटपटाये और फिर शान्त हो गये। बालकों के नेत्र ऊपर हो गये। अरुण अधर गाढ़ नीलिमा से काले हो गये। सम्पूर्ण शरीर पर जैसे नीली भयानक छाया व्याप्त हो गयी हो। उनके मुखों से झाग-फेन जो निकला, वह भी कृष्णवर्ण ही।

कन्हैया—आज कन्हैया को इस उष्ण पुलिन में पता नहीं क्या आनन्द आया। वह करों से बार-बार रेत उछालता धीरे-धीरे चला आ रहा है। सखाओं के साथ दौड़ने में उसने भाग नहीं लिया। आज, केवल आज ही ऐसा हुआ कि सारे सखा उसे छोड़कर दौड़ गये। पता नहीं क्यों—किसी ने उसके साथ आने की प्रतीक्षा नहीं की। सम्भवतः सब बहुत प्यासे थे। भद्र ने उसे दौड़ते

समय पुकारा तो मधुमङ्गल ने उसे हाथ दबाकर चुप कर दिया। बात ठीक थी—सब दौड़कर पहले कदम्ब के नीचे पहुँच जायँ तो कनूँ को पीछे रहने के लिये चिढ़ा जो सकेंगे।

वह दौड़ा श्याम। उसने मुट्ठी की रेत फेंक दी। उसके सखा और गायों को हो क्या गया। सब इस प्रकार क्यों गिर पड़े। ये गायें, वृषभ क्यों पैर पटकते हैं। 'अरे क्या हुआ? भद्र! सुबल! श्रीदाम!' उसने पूरी शक्ति से पुकारा, बहुत व्यग्र हो उठा वह।

'यह क्या?' कन्हैया ने पहुँचते ही भद्र का हाथ पकड़ा, सुबल को झकझोरा, श्रीदाम को उठाने का प्रयत्न किया। 'अच्छा!' सहसा पता नहीं क्या सोचकर उसने प्रयत्न छोड़ दिया। एक बार दृष्टि खौलते-से कालिय-ह्रद के जल पर गयी और वह उठ खड़ा हुआ। स्थिर दृष्टि से एक बार उसने सखाओं, गायों, बछड़ों, वृषभों—सबको घूमकर देखा। कैसी है वह दृष्टि—यह वाणी में आने की बात नहीं। उसकी एक कोर भी कभी ब्रह्मा, इन्द्र तथा बड़े-बड़े महर्षियों को उपलब्ध नहीं हो सकी। वह तो उसके अपनों की वस्तु है।

श्याम की अमृतस्यन्दिनी स्नेह-दृष्टि घूम रही है! सब के प्राण, देह, रोम-रोम में अमृत व्याप्त हो रहा है। मृत्यु, मूर्छा, क्लेश की तो चर्चा ही क्या, वहाँ आलस्य तक के टिकने को अवकाश नहीं। जैसे सबने यह पड़े रहने का कोई नाट्य किया था, इस प्रकार शीघ्रता से उठ खड़े हुए।

'कालिय-ह्रद में अत्यन्त विषधर सर्प रहता है। उसके आगे का यमुना-जल दूर तक विष-दूषित है। उस जल को पीनेवाले तत्काल मर जाते हैं।' बालकों में से सभी ने ये बातें सुनी हैं। उन्हें पता भी है कि नन्दग्राम से कुछ दूर पर ही कालिय-ह्रद है। वहाँ किसी वृक्षादि के न होने की चर्चा भी उन्होंने सुन रक्खी है। आते समय उन्हें यह सब ध्यान नहीं था; पर अब उठते ही सबकी दृष्टि ह्रद की ओर गयी और वे सन्न रह गये। 'यही तो कालियह्रद है! हम सब तो मर ही गये थे!' सबने भीत नेत्रों से ह्रद की ओर देखकर फिर दूसरी ओर देखा।

'कनूँ!' एक साथ बालकों के सहस्र-सहस्र कण्ठों ने परम स्नेह से पुकारा। उनके इस सखा ने ही उन्हें पुनर्जीवित किया है, यह उन्हें समझना बाकी नहीं है। उनके उत्तरीय, छीके, लकुट, इधर-उधर पड़े हैं। मुख भी ठिकाने से पोंछने का किसी को ध्यान नहीं है। सब ने दौड़कर श्याम को घेर लिया। गायों, बैलों, बछड़ों ने उनका अनुकरण किया। पुलिन पर बालकों के शरीर से गिरे पुष्प, पत्र, पिच्छ, गुञ्जादि बिखरे रहे, बालकों के शरीर में पुलिन की रज लगी है—यह कौन देखे। वे तो गोपाल को हृदय से लगा लेना चाहते हैं। पशु उसे सूँघ लेना चाहते हैं। सब सफल हो गये और एक साथ ही। न धक्का लगा किसी को और न किसी को प्रतीक्षा करनी पड़ी। क्यों? कैसे? ये प्रश्न व्यर्थ हैं।

'गोविन्द!' आज कन्हैया को हो क्या गया है। सखाओं ने कितने उत्साह से उसका हाथ पकड़ा, उसे हृदय से लगाया; पर जैसे वह यह कुछ देखता ही नहीं। वह एकटक बड़ी गम्भीरता से इस ह्रद को क्यों देख रहा है। अन्ततः क्या सोचता है वह। यह ह्रद—उसके सखाओं को इससे कितना कष्ट हुआ! क्या सहज ही इस बात को वह भूल सकता है।

'कनूँ, तू क्या देखता है!' भद्र को भय लगा कि यह उत्पाती कोई नया ऊधम न करे। उसने हाथ पकड़कर हिलाया। 'इसका जल बहुत विषैला है। चल, हम सब यहाँ से वनमें दौड़ चलें!'

'मैं तो इस धूप में अब नहीं जा सकता!' श्याम ने भद्र की ओर देखकर मुख बनाया। 'रेणुका कितनी तप गयी है, तुझे क्या पता। तू तो दौड़कर भाग आया था!'

'मैं तुझे कंधे पर बिठा लूँगा!' बरूथप के सुदृढ़ शरीर को देखते यह कोई बड़ी बात नहीं है। सचमुच इस तप्त बालुका-भूमि में कन्हैया के कोमल चरण कष्ट पायेंगे, यह बात उसके हृदय में बैठ गयी।

'यह कदम्ब कितना बड़ा है! यहाँ कैसी भली वायु आ रही है। वन में तो दूर जाना पड़ेगा इस समय। यहीं हम लोग खेलेंगे। गायें विश्राम करेंगी। मध्याह्न के पश्चात् जब धूप कम होगी, तब वन में चलेंगे!' श्याम ठीक ही कह रहा है। भला, इतनी खुली, शीतल वायु

समीप के वन में कहाँ मिलने को है। कालिय-ह्रद के समीप शीतल वायु! परंतु जिस अमृत-दृष्टि ने बालकों को जीवन दिया, वह ह्रद पर कई क्षण स्थिर रही है,—यह भूलने की बात नहीं है।

गायों में बहुत-सी झुंड-की-झुंड बैठकर अधमुँदे नेत्रों से जुगाली करने लगी हैं। कुछ वृषभ खड़े-खड़े ही ऊँघने लगे हैं और बछड़ों ने माताओं के समीप पैर फैला दिये हैं। उनमें कभी-कभी किसी का तनिक-सा कान या पूँछ हिलती है। बालक अपने खेल में लग गये हैं। उन्होंने दण्ड, छीके आदि वृक्षमूल के समीप रख दिये हैं एकत्र करके और उनका उन्मुक्त हास्य, पुकार, दौड़-धूप, स्नेह-कलह अबाध चलने लगे हैं।

× × × ×

'कनूँ, देख—तू दाव नहीं देगा तो अच्छा न होगा!' यह कन्हैया है ही झगड़ालू। जब तक अपनी बारी थी, श्रीदामा को दौड़ाता रहा और जब उसके दौड़ने की बारी आयी, तब झट गेंद हाथ में उठा ली। श्रीदामा को रोष आना ही था। वह झपटा।

'नहीं देता मैं दाव, क्या कर लेगा तू!' श्याम ने उसे चिढ़ाने के लिये मुख बनाया और तनकर खड़ा हो गया। श्रीदामा आकर उसे पकड़े, तब तक तो उसने पूरे वेग से गेंद फेंक दी ह्रद में। 'अब ले दाव!' अँगूठा दिखाया उसने।

श्रीदामा एवं अन्य बालकों ने भी देखा—वह मृदुल अरुण सुचित्रित सुरभित कन्दुक ह्रद के खौलते जल पर इधर-उधर तैरने लगा है। जैसे चिरकाल के पश्चात् ह्रद के जल पर एक अरुण सरोज खिल उठा हो और ह्रद उसकी शोभा पर झूम-घूम रहा हो। बालकों में कुछ के मुख गम्भीर हो गये हैं यह सोचकर कि श्रीदाम अब झगड़ेगा; पर कुछ ने कन्हैया के साथ ताली बजायी। वे हँसने लगे।

'मेरी गेंद ला!' श्रीदामा का मुख रोष से लाल हो गया! उसने श्याम की कटि की कछनी पकड़ ली और अब सम्भवतः दोनों मल्लयुद्ध करेंगे।

'बह रही तेरी गेंद!' कन्हैया ने एक झटका दिया और अपने वस्त्र छुड़ाकर भाग खड़ा हुआ कदम्ब की ओर। वह नटखट शीघ्रता से कदम्ब पर चढ़ गया, चढ़ता ही चला गया।

'चल तू! कहाँ तक जायगा, देखता हूँ!' श्रीदाम उससे कम कहाँ है। वह भी झपटा और चढ़ने लगा कदम्ब पर; परंतु क्रोध से उसका शरीर काँपने लगा है। वह अधिक ऊपर तक चढ़ नहीं सकेगा। एक मोटी डाल पर तनकर ऊपर घूरता, ओष्ठ काटता वह स्थिर होकर खड़ा हो गया। कन्हैया उसे अँगूठा दिखा रहा है। नीचे बालक चिल्ला रहे हैं! मना कर रहे हैं।

'दाम, मैं तुझे अपनी गेंद दे दूँगा!' भद्र ने श्रीदाम को समझाने का प्रयत्न किया।

'मैं तो अपनी गेंद लूँगा! देखें, यह कब तक नहीं उतरता!' श्रीदाम ने घूसा बाँधा और कदम्ब की उसी डाल पर जमकर बैठ गया। कन्हैया के पास तक वह वृक्ष पर चढ़ नहीं सकता तो क्या हुआ। वृक्ष पर ही तो वह चढ़ा नहीं रहेगा। रोष के कारण उसके पतले लाल ओष्ठ काँप रहे हैं। नेत्रों में अश्रु आ गये हैं और वे विशाल नेत्र और अरुणाभ बन गये हैं। बालक सशङ्कित हुए। आज क्या सचमुच श्रीदाम श्याम को पीटेगा।

'श्रीदाम, तू अपनी गेंद ही तो लेगा!' सम्भवतः प्रिय सखा के नेत्रों में अश्रु देखना श्याम को सहन नहीं हो सका। वह डाली पर और ऊँचे चला गया। वहीं खड़े होकर उसने अलकों को पीछे किया, पटुके को कटि में और कसकर बाँधा और खड़ा हो गया।

'हाँ, मैं अपनी गेंद लूँगा! तू नीचे आ तो पता लगेगा!' श्रीदामा का स्वर भारी है। यदि उसने ऊपर मुख करके श्याम के मुख को देख लिया होता तो यह बात कभी उसके कण्ठ से निकलती नहीं।

'कनूँ! कनूँ! उतर आ तू!' सखा एक साथ चिल्लाये। 'यह करने क्या जा रहा है!' भय से हृदय काँप गये उनके। गोपाल डाल पर खड़ा ह्रद की ओर देखने जो लगा है। श्रीदाम ने भी मुख उठाया! 'ओह, इतने ऊपर जाकर यह डाल पर खड़ा हो गया है! वहाँ से गिर पड़े तो!...' धक्-से हो गया हृदय। सब रोष भूलकर चिल्ला पड़ा—'उतर आ, कनूँ....'

श्रीदाम की बात पूरी नहीं हो पायी। कन्हैया ने बड़े जोर से ताल ठोंकी और कूद पड़ा वह। एक धमाका हुआ, ह्रद का जल उछल पड़ा। सखाओं में जैसे प्राण ही न हों। वे एकटक मूर्ति की भाँति ह्रद की ओर देखने लगे। श्रीदामा—वह झपटकर उतरने में गिर पड़ा—कुशल था कि नीचे मृदुल बालुका है। उसे अपने गिरनेका ध्यान नहीं, उठा और ह्रद की ओर दौड़ने ही वाला था—

कन्हैया वेग से कूदा था। सीधे नीचे गया और दो क्षण में ऊपर आ गया। घुँघराली अलकें लहराने लगीं। पीताम्बर भीगकर कटि से चिपक गया है। अरुण पद्मपाद एवं कर वेग से जलपर पटक पटक कर वह तैर रहा है। नन्ही भुजाएँ बड़ी शीघ्रता से जल काट रही हैं। ह्रद में इतनी बड़ी लहरें तो कदाचित् किसी गजराज के हिण्डन से भी न उठेंगी। ह्रद के नील वक्ष पर वह नीलोज्ज्वल चञ्चल जैसे अपने कर-पदों के चार-चार कमल उछालता क्रीड़ा कर रहा है।

'कनू, मैं गेंद नहीं माँगूँगा!' श्रीदामा ने पूरी शक्ति से पुकारा। 'तू निकल आ, जल्दी से निकल आ! जाने दे गेंद को!' लेकिन यह नटखट सुनता कहाँ है। वह तो तैरने में लगा है। एक बार पीछे मुख करके देखता तक नहीं। सखा पुकार रहे हैं, पर कहाँ सुनता है वह।

कन्दुक—कन्दुक जैसे यमुना की भी प्रियवस्तु हो गया है। लहरों पर वह इधर-से-उधर कूदता भागता फिरता है। सखा कन्दुक को भूल चुके हैं। उनके नेत्र श्याम पर स्थिर हैं। उनके प्राणों में एक ही ध्वनि है—वह शीघ्र निकल आवे।

'साँप! साँप! साँप!' बालक एक साथ चिल्लाये। पशुओं ने क्रन्दन किया। वे सब श्याम के ह्रद में कूदते ही चौंककर खड़े हो गये थे और कान उठाये एकटक उधर ही देख रहे थे। बड़ा भयंकर सर्प जल में ऊपर उठा। बालकों ने पहले समझा कि बहुत-से सर्प हैं; परंतु जब वह भयंकर सर्प फण उठाकर स्थिर हुआ—स्पष्ट हो गया कि उसके ही अनेक सिर हैं। सर्प ने भी दो क्षण स्थिर होकर तैरते, मुस्कराते नीलरत्न को अपने आग्नेय नेत्रों से देखा। उसे सम्भवतः स्मरण हुआ कि इस धृष्ट बालक ने उसके आवास में आकर उसका अपमान किया है। वेग से झपटकर एक साथ सर्प ने कन्हैया के श्रीवत्साङ्कित वक्ष पर फण मारे, फिर उसे अपने भोग में लपेट लिया।

कन्हैया पर सर्प ने आघात किया—जैसे वह फणाघात सखाओं के हृदय पर हुआ हो। वह गिरा भद्र, वह श्रीदामा मूर्छित हुआ। वे पड़े हैं मृतप्राय सुबल, वरूथप, मधुमङ्गल। कोई खड़ा नहीं। सहस्रों बालक, जैसे आँधी के प्रबल आघात से आर्द्र भूमि के इक्षु गिर पड़ें, एक साथ गिर पड़े और चेतनाहीन हो गये। पशुओं के नेत्र स्थिर हो गये। उनकी क्रियाएँ लुप्त हो गयीं। जैसे वे पाषाण—प्रतिमाएँ हों।

सर्प ने श्याम को अपने भोग में लपेट लिया, पर वह डूबा नहीं। जैसे वह चिर-शेषशायी अपनी सुपरिचित शय्या पाकर योगनिद्रा का आश्रय लिये नेत्र मूँदे पड़ा हो और सर्प उसके विश्राम में व्याघातरूप अङ्ग-चालन—चेष्टा में असमर्थ हो गया हो। सर्प जल के ऊपर कन्हैया को लपेटे, उसके मस्तक पर अपने मणिमण्डित एक सौ एक फण उठाये, रोषके आवेग में स्थिर हुआ फूत्कार कर रहा है।

× × × ×

'आचार्य शाण्डिल्य को कोई झटपट बुला लाये! मेरे दाहिने अङ्ग एक साथ बार-बार फड़क रहे हैं!' व्यग्र होकर मैया ने एक दासी को पुकारा।

'बार-बार बिल्ली मेरा मार्ग काटती है!' माता रोहिणी दौड़ी आ रही थीं।

'ये कुत्ते एक साथ क्यों रो रहे हैं?' व्रज में दौड़-धूप मच गयी। कहीं जल का घड़ा स्वतः गिरकर फूटा और कहीं दधि-भाण्ड। किसी को जान पड़ा कि सूर्य-मण्डल म्लान हो रहा है और किसी ने देव-प्रतिमा को रोते पाया। सब एक साथ नन्दभवन की ओर दौड़े।

'श्याम कहाँ है?' बाबा ने सचिन्त होकर पूछा।

'नीलमणि सकुशल तो है?' बरसाने के गोपों ने बाबा से दौड़ते हुए आकर प्रश्न किया।

'नारायण कन्हैया की रक्षा करें !' गोपियों ने मैया को घेरकर निःश्वास लिया। पूरे वातावरण में संदेह—आशङ्का व्याप्त है। सबके मुख उदास, चञ्चल हो रहे हैं।

'आज दाऊ नहीं है ! श्रीकृष्ण अकेला ही वन में गया ?' बाबा ने दाऊ को देखकर चौंकते हुए पूछा।

'दाऊ का जन्म-नक्षत्र है !' माता रोहिणी से पूर्व ही मैया बोल उठी; पर हृदय उसका धक्-से हो गया।

'श्याम आज अकेला वन में गया !' सबके मुख पर एक ही बात। इतने सखा हैं तो क्या हुआ। वे तो सब बालक हैं। जैसे दाऊ ने ही अब तक सारे असुर मारे हैं। सबको दाऊ को देखकर बड़ा भय लगा। अकेले कन्हैया पर पता नहीं क्या विपत्ति आयी हो।

'मेरा नीलमणि !' मैया ने नहीं देखा उस भीड़ को, नहीं देखा स्वजनों को और नहीं देखा अन्य किसी ओर। वह घर से निकल पड़ी और यथासम्भव शीघ्रता से दौड़ी वन की ओर।

'हम कन्हैया को ढूँढेंगे !' गोपों ने अपनी लाठियाँ सम्हालीं।

'श्याम के बिना व्रज में कौन रहे !' गोपियाँ मैया के पीछे दौड़ रही हैं। नन्दगाँव और बरसाना सूना हो गया है। नर-नारी, बालक-वृद्ध—सब वनपथ की ओर दौड़े जा रहे हैं। सब व्याकुल, चिन्तित हैं। शान्त हैं केवल दाऊ। वे बाबा के साथ चल रहे हैं।

'आज बालक किधर गये हैं ?' एक क्षण को सब लोग वन-भूमि में आकर रुक गये। तृणों से आच्छन्न हरित भूमि में कोई चिह्न सरलता से नहीं मिल सकते।

'ये तृण कुछ कुचले-से हैं !' एक ने उन लघु तृणों में चिह्न लक्षित कर लिया।

'यह आगे गोबर पड़ा है। आज का ही तो है।' फिर तो गो-मूत्र और गौओं के खुर-चिह्न भी बहुत मिले।

'कहीं गायें यहाँ इधर-उधर चरती, दौड़ती न रही हों ! हम सब इसके पीछे भटकते रहें देर तक।' गोप का अनुमान ठीक है।

'ये छोटे-छोटे पद-चिह्न भी नहीं पहिचानते ?' सचमुच वे वज्र, अङ्कुश, ध्वज, कमल आदि के चिह्नों से युक्त पद-चिह्न क्या पहिचान की अपेक्षा करते हैं। गोपाल इधर से ही गया है।

'सब कालिय-ह्रद की ओर गये हैं !' वनसीमा की ओर चिह्नों को जाते देख एक वृद्ध ने कहा और सब सन्न रह गये। 'कालिय-ह्रद ?' एक भयंकर आशङ्का से और वेग आया सबके चरणों में।

'कन्हैया ! बेटा !' मैया ने पूरी शक्ति से पुकारा ! वे दूर कदम्ब के समीप गायों के समूह दिखायी पड़ते हैं।

'कोई बोलता नहीं ! एक भी बालक वहाँ दीखता नहीं !' एक ने ध्यान से देखकर कहा।

'गायों में से कोई हिलती भी नहीं ! किसी की पूँछ तक नहीं हिलती ! सबके मुख ह्रद की ओर हैं !' दूसरे का भयविह्वल स्वर विकृत हो गया।

'मेरा लाल !' मैया की वाणी में जो वेदना है, उसे कैसे कहा जाय।

सहसा दाऊ दौड़ पड़े। सब दौड़ रहे हैं—सब पूरी शक्ति से दौड़ रहे हैं; परंतु दाऊ के चरणों में जैसे आज मरुत् ने स्थान पाया है। वे तो दौड़ते नहीं, उड़े-से जा रहे हैं। पता नहीं उनके लीलामय अनुज ने क्या लीला की है। वे यदि सबसे पहले ह्रद-तट पर न पहुँच जायँ तो पता नहीं क्या अनर्थ होगा।

'मैया !' एक क्षण में दाऊ ने अपने भुजग-भोगशायी अनुज को देख लिया और दोनों हाथ फैलाकर, ह्रद की ओर पीठ करके, दौड़ी आती मैया के चरणों से लिपट गये।

'लाल !' मैया तो कुछ देखती ही नहीं ! उसके नेत्र तो फटे-फटे से हो रहे हैं। उसके पलक गिरते ही नहीं। वह तो पागलों की भाँति ह्रद को एकटक देखती दौड़ती जा रही है। दाऊ को उसने न देखा और न उनके स्पर्श का अनुभव किया।

'कन्हैया को कुछ नहीं हुआ! वह सर्प को फेंककर आयेगा। वह देखो, उसके मुख पर मन्द मुस्कान है! पकड़ो मैया को पकड़ो!' दाऊ ने पूरे जोर से चिल्लाकर सबको सावधान किया। कुछ गोपियों ने बढ़कर बलपूर्वक मैया के हाथ पकड़ लिये। वह उनसे अपने को छुड़ाने के लिये छटपटाती प्रयत्न करती रही।

'बाबा!' दाऊ ने ह्रद से कुछ ही दूर पर बाबा के सम्मुख जाकर उनके पैर पकड़े। बाबा अपने-आप में नहीं हैं। वे इस तनिक-से धक्के से ही गिर पड़े और असमर्थ से बैठे-बैठे ह्रद को घूरने लगे। जैसे उनमें जीवन ही न हो।

'तुम सब.....' एक क्षण की देर होती तो वे बालिकाएँ ह्रद में गिर चुकी होतीं। उनमें अधिकांश मूर्छित हो गयी हैं। जो ह्रद तक पहुँचीं, वे दाऊ की उस वेदनाभरी दृष्टि की ओर देखते ही तट पर गिर पड़ीं।

चीत्कार, मूर्छा, ह्रद की ओर दौड़ने का प्रयत्न—दाऊ अकेले कहाँ तक किनको-किनको रोकें। मूर्छित लोग चैतन्य होते ही ह्रद की ओर दौड़ते हैं। मैया को कइयों ने पकड़ रक्खा है। कोई अपने-आप में नहीं। दाऊ—वे ६ वर्ष के शिशु दाऊ ही सबको आश्वासन देने में लगे हैं।

'कनूँ!' दाऊ ने ह्रद में अपने अनुज की ओर देखा और पुकारा। जैसे वे उलाहना दे रहे हों—'बहुत हो चुका यह अभिनय। इस सर्प-शय्या को अब तो छोड़ो। यह किसका स्थान किसे दे रहे हो, कुछ स्मरण है?'

सर्प का शरीर जड की भाँति पड़ा था। वह स्वयं भी क्रोध-मूर्छित हो रहा था। सहसा उसके शरीर में हल्का-सा कम्प हुआ और वेग से उछलकर वह दूर जा कूदा। श्रीकृष्ण को छोड़ दिया उसने। उसे लगा कि उसके बन्धन में पड़ा यह बालक मोटा हो रहा है और बहुत शीघ्र उसके शरीर की गाँठ-गाँठ टूट जानेवाली है। पीड़ा से व्यथित होकर उसने अपना शरीर सीधा किया और उछला।

'कन्हैया सर्प से छूट गया!' दाऊ चिल्लाये। सबके मुखों पर तनिक जीवन की उज्ज्वलता आयी। सर्प अपने एक सौ एक फण उठाये दूर से फूत्कार कर रहा है और श्याम जल में धीरे-धीरे तैरता स्थिर-सा उसकी ओर देख रहा है। दोनों ने एक क्षण एक दूसरे की ओर देखा। सर्प ने आक्रमण के लिये और तीव्रता से अपने को मोड़ा। श्याम के स्वर्णाङ्गद नील जल पर चमक उठे। उसकी भुजाएँ तीव्रता से उठने लगीं। भीगी अलकें पीठ पर लहरा उठीं। वह तैरकर दूसरी ओर हो गया।

तट पर क्रन्दन बंद हो गया। सबके प्राण नेत्रों में आ बसे। एकटक स्थिर सब ह्रद की ओर देखने लगे। ह्रद में सर्प जिस तीव्रता से मुड़ता है, श्रीकृष्ण उससे अधिक तीव्रता से दूसरी ओर तैर जाते हैं। बड़ी-बड़ी तरङ्गें उठ रही हैं। ह्रद आलोड़ित हो रहा है। अनेक बार सर्प प्रयत्न करता है कि स्थिर होकर अपने लक्ष्य को देख ले या विश्राम कर ले; पर उसके फण उठाते ही श्याम के चिर-चञ्चल कर जल में थपेड़ा मारकर छींटों का आघात करते हैं। सर्प स्थिर नहीं हो पाता। उसकी रोष-भरी फूत्कार बढ़ती जाती है, परंतु उसका वेग घटने लगा है। कब तक वह इस गति से तैरता रह सकता है।

सर्प आक्रमण कर रहा है या अपने को बचा रहा है, अब यह कहना कठिन हो गया है। उस पर जल के छींटों का वेग बढ़ता जा रहा है। उसे ठीक भागने का मार्ग ही नहीं मिलता और कनूँ—वह तो अपने लाल-लाल चरण पटकता, छींटे मारता हँस रहा है। उसे तो यह अच्छा खेल मिल गया है। बालक ताली बजाने लगे हैं तट पर।

× × × ×

'यह क्या हुआ? कन्हैया तो सर्प के समीप पहुँच गया!' सबके हृदय धक् से हो गये, परंतु वहाँ तो दृश्य ही बदल गया। श्याम ने हाथ बढ़ाकर सर्प का एक फण पकड़कर झुकाया और उसपर चरण रखकर खड़ा हो गया। सहसा आकाश में बाजे बजने लगे हैं। पुष्पवृष्टि

हो रही है। जयध्वनि से गगन गूँज रहा है। यह सब कौन देखे। सबके नेत्र तो श्याम पर स्थिर हैं।

सर्प के मोटे-मोटे फण – उसने झट दूसरा फण ऊपर किया और उसके साथ ही वह लाल चरण पड़ा उस फण पर। यह क्या – फण तो उस कोमल चरण के पड़ने से ही फट गया। उसमें से रक्त के फुहारे निकल पड़े। श्याम का पद्मारुण चरण सर्प के रक्त के छींटों से रँग गया है, जैसे उसके चरणों पर किसी ने नन्हे रक्तिम पुष्प बिखेर दिये हों। फणों की मणि-किरणों के प्रकाश में वह अरुणिमा और भी भासित हो उठी है।

'वह फण उठा!' जब श्याम सर्पभोग से छूटा, उसके साथ ही, सम्भवतः उनकी चेतना लौटी थी। वे सब-के-सब बार-बार चिल्लाते हैं। कन्हैया को सावधान करते हैं; पर कन्हैया तो नीचे देखता ही नहीं। आज तो जैसे उसके पैरों में नेत्र हो गये हैं। फण उठा और चरण पड़ा। सर्प जो फण उठाता है, उसी पर नटराज के चरण पड़ते हैं।

कटि का पीताम्बर भीगकर चिपक गया है। उससे श्रीअङ्ग की छटा झाँकती जान पड़ती है। वनमाला वक्ष पर लहरा रही है और अलकें पृष्ठभाग पर। दोनों से सीकर बिखर रहे हैं। मुख और भाल पर जलबिन्दु श्रम-सीकर के समान शोभित हो रहे हैं। पटुका कटि में कसा है। भीगे हुए मयूर-पिच्छ की आज विचित्र ही छटा है।

कटि से निकालकर उसने मुरलिका अधरों पर रख ली। देववाद्य भला, मुरली की मधुरिमा कहाँ से प्राप्त करें। लास्य नहीं—आज ताण्डव चल रहा है–ऐसा विचित्र ताण्डव, जिसकी समता इतने भेदों-उपभेदों के साथ भगवान् शशाङ्कशेखर भी कदाचित् ही अपने 'सम' में ला सकें। कभी 'थैया, थैया' का मन्द और कभी 'द्रां, द्रां, द्रां...' का 'द्रुत'—पद कहाँ पड़ेंगे? एक ही उत्तर है, सर्प का जो फण ऊपर उठेगा, वहाँ। इस 'चित्र ताण्डव' की समान गति है परंतु सर्प के फण फटे जा रहे हैं। वह फूत्कार के साथ विष उगल रहा है। उसके फणों का रक्त-प्रवाह बढ़ता जा रहा है—बढ़ती जा रही है श्याम के श्रीचरणों की अरुणाभा।

नृत्य चल रहा है—गोपियों के नवनीत पर उनके पावन प्राङ्गण में जिस नृत्य का अभ्यास हुआ है, आज कालिय के फणों के रङ्गमञ्च पर उसका अवतरण हो रहा है। देववाद्य, पुष्पवृष्टि, मुरलीध्वनि और सब से बड़ा ताल है बच्चों की 'विजय-उल्लासभरी पुकार'—'वह फण उठा!'

सर्प शिथिल होता जा रहा है। उसे लगता है, उसके फणों पर मन्दराचल क्षण-क्षण में किसी के द्वारा पटका जा रहा है। उसका गर्व—रोष कब का दूर हो चुका। अब तो वह जीवन-रक्षा के लिये संघर्ष कर रहा है। किसी प्रकार छूट सके, किसी प्रकार भाग सके! प्रहर भर से अधिक होरहा है मस्तक पर इस धमाचौकड़ी को सहते। वह अब फण नहीं उठा सकेगा—ना, अब नहीं उठा सकेगा कोई फण।

कालिन्दी के नीले जल में एक सौ एक फणों का वह महासर्प। प्रत्येक मुख से लप-लप करती दो-दो जीभें। फणों से निकलती रक्तधारा में प्रकाशित मणियाँ और अंगारों-सी चमकती आँखें। उन फणों पर भीगा पीताम्बर पहिने रक्तारुण चरणों से ताण्डव की गति पर कूदता, अधरों से मुरली लगाये इन्दीवरदलश्याम कन्हैया। लेकिन फणों का उठना क्रमशः शिथिल होता जा रहा है। अब ये उस वेग से फूत्कार करते नहीं उठते और पूरे उठ भी नहीं पाते। उपर देववाद्य बज रहे हैं! ह्रद तैरते दिव्य सुमनों से भर उठा है और उनकी संख्या बढ़ती जा रही है।

कन्हैया तो वंशी बजाता नाच रहा है। उसके कुण्डल अलकों में उलझकर स्थिर हो गये हैं। मयूरपिच्छ सूखकर फर्र-फर्र उड़ने लगा है। पीठ पर अलकें लहरा रही हैं। वह आज नृत्य की उमंग में है।

× × × ×

ह्रद में एक साथ छोटे-छोटे सर्पों ने सिर उठाये। नागपत्नियों के मस्तक उनके पीछे दीख पड़े। बालक डरे—क्या ये सब उनके श्याम पर आक्रमण करेंगे? लेकिन वे तो स्थिर हैं। वे केवल देख रहे हैं कन्हैया की ओर। अपने मुखों से कुछ ध्वनि कर रहे हैं।

'नाथ! दयामय! आपने अच्छा किया जो अपने श्रीचरणों से इनके मस्तक को पवित्र किया। ये नागराज वासुकि और शेष से भी अधिक भाग्यशाली हैं! आपके पावन चरणों के मस्तक पर धारण का सौभाग्य मिला इन्हें। पता नहीं कौन सा महापुण्य किया था इन्होंने। दुष्ट-दलन—आपका दण्ड-विधान उचित ही है; परन्तु क्षमासिन्धु, हमारे इन पतिदेव के अपराध को अब क्षमा करें! ये नाग-शिशु, हम अबलाएँ आपकी शरण हैं! ये अज्ञानी हैं, इन्होंने आप को पहिचाना नहीं! अब क्षमा करें!' वे नागपत्नियाँ स्तवन कर रही थीं।

'कन्हैया, छोड़ भी दे बिचारे सर्प को! छिः, तू उसे मार ही डालेगा क्या?' भद्र को दया आ गयी। उसने देखा, सर्प ने फण उठाना बंद कर दिया है। उसके फणों के चिथड़े हो रहे हैं। उसे लगा, ये सब नन्हे सर्प 'किट् किट्' करके दीनता से प्रार्थना कर रहे हैं।

श्याम ने एक बार तट की ओर देखा। मुरली कटि में लग गयी। वह सर्प के मस्तक से जल में कूद पड़ा। सर्प ने दीर्घ श्वास ली। उसे फूत्कार किसी प्रकार नहीं कह सकते। दो क्षण वह मूर्छित-सा पड़ा रहा। फिर उसके मुख से बड़े करुण शब्द निकले—'प्रभो! आप सर्वेश्वर, सर्वसमर्थ हैं! जन्म से ही आप ने हम सर्पों को क्रोधी बनाया है। कोई भी प्राणी अपना स्वभाव छोड़ नहीं पाता। मैं तो एक क्षुद्र जीव हूँ। अब आप मुझ पर कृपा करें या रोष!' उसके नेत्रों से अश्रु गिरने लगे। उसने अपने फण जल पर फैला दिये।

'कालिय, यहाँ अब तुम्हें रहना नहीं चाहिये। यहाँ मेरे सखा, स्वजन और पशु क्रीड़ा करेंगे। तुम झटपट समुद्र में चले जाओ! डरो मत! गरुड़ तुम्हारे फणों पर मेरे पद-चिह्न देखकर तुम्हें भक्षण करने की कभी इच्छा नहीं करेंगे!'

'अरे, कन्हैया गया कहाँ?' बालकों ने, गोपों ने, गोपियों ने वह संवाद सुना नहीं। सर्पों की किट्-किट् में उनका कोई आकर्षण नहीं। उन्होंने तो देखा कि वह महासर्प, वे छोटे सर्प और नागिनें सहसा जल में डूब गयीं और उनके साथ ही श्यामसुन्दर ने भी हँसकर डुबकी लगायी। उस नटखट ने तट की ओर हँसकर देख लिया था—भीत होने की बात नहीं है; पर—

कुछ क्षण—व्रजवासियों को तो वे क्षण युग—जैसे जान पड़े, पर लगे कुछ क्षण ही। श्यामसुन्दर जल से बाहर निकला। कालिय ने उस सौन्दर्यधन की अराधना की जल में। श्रीअङ्ग में यह दिव्य अङ्गराग ह्रद के अन्तस् में लगा है। वनधातुओं के चित्र तो कब के धुल चुके थे। जान पड़ता है, वनमाला के पुष्प नागकुमारों को, पटुका और कछनी के वस्त्र कालिय को और मुक्तामाला के मोती नाग-पत्नियों को वह प्रसाद दे आया। उसकी कटि में पीताम्बर की कछनी है, कंधे पर पटुका है; पर ये ऐसे दिव्य वस्त्र हैं जो जल में भीगे नहीं। गले में तो मोटी लंबी नील-कमलों की माला है और कण्ठ में सर्प की महामणियों का हार है। उसकी भुजाओं में भी अद्भुत अङ्गद हैं। कुण्डल, केयूरादि समस्त आभरण बदल आया है वह।

'नीलमणि!' मैया ने दोनों भुजाएँ फैला दीं।

'कृष्णचन्द्र!' बाबा झपटे उसे कण्ठ से लगाने।

'श्यामसुन्दर!' गोपियों की उत्कण्ठा का क्या कोई वर्णन करे!

'कन्हाई!' गोपों में उल्लास व्याप्त हो गया।

'कनूँ!' प्रत्येक बालक चिल्लाकर दौड़ा।

कन्हैया—प्रत्येक को जान पड़ा कि श्याम पहिले उससे गले मिल रहा है।

तेरे चरण तो देखूँ! बालकों ने वहीं उसे भूमि पर बैठाया और उसके अरुण पादतल ध्यान से देखने लगे।

'साँप ने कहाँ काटा था तुझे ?' भद्र हाथ में कुछ पत्तियाँ लिये सब अङ्ग देख चुका। उसने सुना है, इन पत्तियों से सर्पविष नष्ट हो जाता है।

'सर्प बड़ा गुदगुदा होता है और शीतल भी। उसपर सोने में बड़ा आनन्द आता है और उसके सिरपर नाचना तो और मजे की बात है !' कन्हैया खुलकर हँस पड़ा। नटखट कहीं का, सबको चिन्तित करके वह यह आनन्द ले रहा था।

तेरा गेंद तो नहीं दूँगा मैं !' ह्रद से लाया है वह, यह तो श्रीदाम ने देख लिया पर मस्तक झुका लिया उसने एक बार और दूसरे ही क्षण हँसकर बोला--'गेंद ले ले, पर फिर साँप पर सोने मत जाना !'

× × × ×

मैं तो थक गया हूँ, अब यहीं सोऊँगा !' कन्हैया केवल अपनी बात नहीं कह रहा है। सभी थक गये हैं। श्यामसुन्दर जब ह्रद से निकला, सूर्यास्त हो चुका था और सायंकालीन फुटपुटा प्रकाश भी समाप्त ही होने वाला था ! अब उससे मिलने के उत्साह में जो विलम्ब हुआ, उससे तो पूरा अन्धकार हो गया। इस अँधेरे में व्रज को सब पशुओं के साथ वनमार्ग से लौटना सरल नहीं है। विषैले ह्रद से, यमुना के उस कूल से हटकर उपकूल पर सब आ गये थे, यही दूरी उस श्रान्ति में सबको बहुत अधिक लगी है।

'तुम सबों के छीकों में कुछ है या नहीं ?' बाबा ने ठीक सोचा है। सभी बालक आज मध्याह्नकाल का कलेऊ लेकर बिना भोजन किये वन में आये हैं। यदि उनके छीकों में कुछ हो तो इस समय उनके जलपान की चिन्ता नहीं रहेगी। उन्हें कुछ मिल जाय तो शेष लोग जल पीकर रात्रि व्यतीत कर लेंगे। इस अन्धकार में बालकों को वन में से लेकर जाना ठीक नहीं, सब लोग दौड़ने और दीर्घ शोक के वेग से शिथिल भी हो रहे हैं।

'हमने तो आज भोजन किया ही नहीं !' कन्हैया दौड़ा जल्दी से भद्र का छीका लेने। वह छीका तो कभी लाता है नहीं।

'सब छीके मेरे पास तो ले आओ !' आज अन्धकार में मैया ने छीना-झपटी का अवकाश नहीं दिया। सब बालकों को बैठाकर परसकर भोजन कराया।

वहीं सबने रात्रि-विश्राम करना निश्चित किया। बालक सब मध्य में सोये। गोपियों ने उन्हें घेर लिया। गोपगण सारे समूह को घेरकर चारों ओर स्थित हुए। बारी-बारी से कुछ लोग रक्षार्थ जागते रहें, यह निश्चय हो चुका है।

× × × ×

भय का कोई कारण जहाँ नहीं दिखायी पड़ता, अनेक बार वहीं भय सम्मुख आ जाता है। रक्षा के लिये नियुक्त गोप भी थके हैं, वे भी निद्रा के कारण झपकियाँ लेने लगे हैं। शीतल वायु, खुला तारकखचित गगन और निशीथ को अतिक्रान्त करती निशा—ऐसे समय में पलकें भारी होने लगें और विवशतः बंद हो जायँ तो कोई क्या करे।

'क्यों? क्या बात है !' सहसा गोप चौंके। चारों ओर जैसे चीत्कार गूँज रहा हो। पशु क्रन्दन कर उठे। वायु उष्ण हो गया है। भली प्रकार पलकें खुली भी नहीं थीं कि भय, आश्चय से वे चिल्ला पड़े—'उठो ! उठो ! आग ! आग !'

दावाग्नि तो सदा निदाघ में मध्याह्नोत्तर प्रकट हुआ करता है। रात्रि में दावाग्नि और वह इतने समीप धाँ धाँ करके वन को जलाता, ऊँची-ऊँची लाल लपटों की शतशः जीभों से समस्त चर-अचर को चाटता दौड़ा आ रहा है ! यह घेरा बनाकर चारों ओर से बढ़नेवाला अग्नि !

'कृष्ण ! श्याम ! कन्हैया !' सबके मुख से एक ही नाम आर्तवाणी में फूटा ! वे कनूँ को अपनी रक्षा के लिये पुकार रहे हैं या उसकी रक्षा के ध्यान में अपने को भूल गये हैं ? सब ने श्रीकृष्ण को घेर लिया। गोपियों, बालकों, गोपों ने ही नहीं, पशुओं ने भी।

'जल्दी करो! नेत्र बंद कर लो! बंद करो नेत्र!' कन्हैया ने पुकारना प्रारम्भ किया। उसने मैया के दोनों हाथ उसके नेत्रों पर रख दिये उठाकर। 'सब लोग नेत्र बंद कर लो! मैं कहूँ, तब तक बंद किये रहो! वनदेवता हमारी रक्षा कर देंगे। पर कोई नेत्र खोले नहीं!'

'वनदेवता! श्रीनारायण! दयामय! हमें भस्म करके भी श्याम की रक्षा करो। उसे बचा लो, प्रभो!' नेत्र बंद हो गये हैं सबके और प्राण पुकार रहे हैं।

श्याम ने देखा—गायें, बछड़े, वृषभ और वन से भागकर आये मृग, मयूर, पशु-पक्षी, कीट सब उसी की ओर देख रहे हैं। वनदेवता—व्रजवन के उस शाश्वत अधिदेवता ने अग्नि की ओर देखा। यह दिव्य दावाग्नि तो है नहीं। रात्रि में प्रकट होने वाला यह कंस-प्रेरित अभिचाराग्नि छद्म-दावाग्नि बनकर आया है। उसका मुख खुल गया। एक शब्दहीन हास्य और...और क्या, वह कदाचित् वायु खींच रहा है। लपटें खिंचती उसके मुख में चली जा रही हैं! प्रज्वलित काष्ट अध-जले रह गये। उनकी चिनगारियाँ तक लुप्त हो गयीं। उस अग्निपायी ने उष्णता तक पी ली।

'तुम सब नेत्र बंद किये रहना, भला!' उस नटखट ने धीरे से मैया के हाथ नेत्रों से हटा दिये; परंतु अपनी कोमल हथेली उसके मुखपर रख दी। मैया ने देखा और उसका मौन बना न रह सका। उसके नेत्र भर आये और गद्गद भक्तिविह्वल कण्ठ से निकला—'नारायण! दयामय!'

'दावाग्नि वनदेवता ने शान्त कर दी!' सबने आश्चर्य से देखा नेत्र खोलकर।

'वह भाग गया! वह भागा जा रहा है दावाग्नि!' प्राची में अरुणोदय की लालिमा प्रकट होने लगी है। कन्हैया ने उस ओर इस भोलेपन से संकेत किया, जैसे कुछ जानता ही न हो।

प्रकाश हुआ! आज सायंकाल के बदले प्रभात में अधरों पर वेणु धरे, गायों को आगे किये, सखाओं से घिरा श्याम वन से व्रज में प्रवेश करने चला है। आज ग्राम में प्रतीक्षा करनेवाले नेत्र उसके पीछे चल रहे हैं। सारा व्रज—अपार जन एवं पशुसमुदाय से घिरा गोपाल जा रहा है!

कल श्याम के कालियह्रद से निकलने पर बाबा ने ब्राह्मणों को जो सहस्रों गोदान किये, वह तो कल की बात हो गयी। आज ग्राम में पहुँच कर वे पुनः हवन, देवाराधन, गोदान, विप्र-पूजन में लग गये हैं। समस्त गोप एवं गोपियों का आज नन्दभवन में ही सत्कार होना है। आज भीतर और बाहर महामहोत्सव है वहाँ और सबके लिये सर्वाधिक महोत्सव है—श्याम आज वन में नहीं जायगा! दिनभर वह नेत्रों के सम्मुख रहेगा।

—❀⊂❀⊂❀—

धेनुक-वध

तं गोरजश्छुरितकुन्तलबद्धबर्हवन्यप्रसूनरुचिरेक्षणचारुहासम् ।
वेणुं क्वणन्तमनुगैरनुगीतकीर्तिं गोप्यो दिदृक्षितदृशोऽभ्यगमन् समेताः ॥

—भागवत १०।१५।४२

पावस का प्रारम्भ—आपादस्नात तरु-लता-वृन्द, अद्भुत छटा है वन की। सुपक्व आम्र-तरु जैसे अरुणिम स्वर्णफलों से पूर्ण हो गये हैं। जम्बू ने श्याम अङ्ग की शोभा धारण कर ली है। सरिता और सरोवरों के जलों में वृद्धि हुई, पर अभी मलिनता नहीं आयी। उनमें उत्पल, कल्हार, इन्दीवर, कुवलय खिल उठे हैं। कुमुद-दल ऊपर आने लगे हैं। भूमि पर हरितिमा बिखर उठी है। तृणों में कोमलपत्र, कन्दों में अङ्कुर और बीजों में द्विदल आ गये हैं। भ्रमर गुंजार करते हैं, कोकिला कुहकती है, मयूर पुच्छ प्रसारित करके 'थनगन' नाचते हैं।

श्यामसुन्दर नित्य प्रातः सखाओं के साथ वन में गोचारण के लिये आता है। वृषभ भूमि को सूँघकर उन्नाद करते हैं और सींग से टीलों को खोदते हैं। बछड़े फुदकते हैं। बंदर किलकारियाँ मारते हैं। लताएँ पुष्पों के भार से और पादप फलभार से झुक गये हैं। उनकी डालियाँ भूमि का स्पर्श करने लगी हैं। जब गायें आगे-आगे चलती हैं, सखा पीछे ताली बजाकर गाते हैं और उसके मध्य में कन्हाई अग्रज के साथ अधर पर वंशी रक्खे, मत्तगयंद-गति से चलता है।

लताओं के पुष्प, वृक्षों के किसलय, दल, फल—सब मार्ग के दोनों ओर झुक आये हैं। जैसे समस्त वन इन गौर-श्याम की चरण-स्पर्श-स्पर्धा में नत हो गया हो। हाथ उठाकर बालकों के साथ कन्हैया कभी पुष्प तोड़ता है, कभी किसलय और कभी फल। बछड़े, गायें, वृषभ—जिसके मन में आये, वही मुख ऊपर उठाकर कोमल दल या फल का आहार करने लगता है।

'भैया, ब्रह्मा ने इन्हें वृक्ष बना दिया, इतने पर भी ये अपने पुष्प और फलों का उपहार लेकर तेरे चरणों में अपने मस्तक झुकाकर प्रणाम करते हैं। देवता भी तो तेरा वन्दन करते हैं, फिर ये अपने उस तमस् के नाश के लिये क्यों तेरा अर्चन न करें, जिसने इन्हें जड बनाया!' आज कन्हाई उल्लास में है। उसने वृक्षों की ओर देखा और दाऊ को सम्बोधित कर कविता-सी करने लगा।

'सब विद्वान् ऋषि-मुनि जैसे बड़े स्वर से परमात्मा की स्तुति करते हैं, वैसे ही ये भौंरे तेरा गुणगान कर रहे हैं। अवश्य ये सब भी मुनिगण होंगे। ये तेरे मुख्य भक्त हैं, अतः इस रूप में ये छिपे हैं और यहाँ भी अपने निष्पाप आराध्य को छोड़ते नहीं।' आज भाई की स्तुति चल रही है।

'देख, भैया, ये मयूर तुझे देखकर नृत्य कर रहे हैं। ये मृगियाँ गोपियों की भाँति अपनी दीर्घ दृगों से स्नेहपूर्वक तुझे देख रही हैं। ये कोकिल अपने कलकण्ठ से तेरा स्तवन कर रहे हैं। धन्य हैं ये वनवासी, घर आये अतिथि का सत्कार करना सज्जनों का स्वभाव ही होता है।' चारों ओर वह चञ्चल देखता जा रहा है।

'यह पृथ्वी, तृण, वीरुध, द्रुप धन्य हैं, इन्हें तेरे श्रीचरणों का स्पर्श प्राप्त हो रहा है। ये वृक्ष और लताएँ भी धन्य हैं, जिन्हें तू अपने हाथों से स्पर्श कर रहा है। यह यमुना, गिरिराज, पशु-पक्षी जिन्हें तू बड़े प्रेम से देख रहा है, सब धन्य हैं!' सब सखा ताली बजाकर हँस न पड़ते तो पता नहीं कितना वृहत् बनता यह काव्य।

× × × ×

श्याम—उसका भ्रमरों के साथ गुनगुन कर गायन कितना मधुर होता है! जब वह मयूरों को चिढ़ाने के लिये हँसता हुआ नाचने लगता है—जैसे नृत्य का वही अधिष्ठाता हो। चकोर,

क्रौंच, सारस, मयूर, मृग, सिंह, वनकुक्कुट, विडाल और कभी-कभी बछड़ों को भी वह चिढ़ा लेता है। कोई बोला और बालकों में से अनेक उसके शब्द का अनुकरण करने लगते हैं। कन्हैया इतना हूबहू अनुकरण करता है कि कोकिल, मृग, सिंहादि को भ्रम में डाल देता है वह।

दाऊ ने सखाओं के एकत्र किये किसलय और सुमनों की शय्या पर जहाँ सुबल की क्रोड़ में मस्तक रखा, श्याम स्वयं उसके चरण दबाने अवश्य बैठ जायगा। पता नहीं क्या आनन्द आता है उसे। बड़े भाई के पैर तो वह दबायेगा ही। दाऊ का मना करना कभी सुनता नहीं वह ऐसे समय!

सखाओं के साथ कभी हाथ पकड़कर नाचता है और कभी सब स्वर मिलाकर गाते हैं। कछनी कटि में समेटकर, अलकों को बाँधकर, पटुका एवं मुरलिका एक ओर रखकर जब वह श्रीदाम, सुबल या भद्र के साथ मल्लयुद्ध करने लगता है—विचित्र छटा बनती है। सखा ताली बजाते हैं। कोई कन्हैया की प्रशंसा करता है, कोई प्रतिपक्षी की। बार-बार कमलमुख अरुणाभ हो उठता है। कमलदलनील अङ्ग धूलि में सन जाता है। भाल पर स्वेद कण झलमल करने लगते हैं। वह बल लगाता है, कूदता है, ताल देता है और यदि पटका गया तो बहाने बनाकर झगड़ता है और जीतने पर अँगूठा दिखाकर, ताली बजाकर चिढ़ाता है।

गायें दूर चली गयीं। उतनी दूर पृथक्-पृथक् दिशाओं में सखा उन्हें घेरने जायँ—खेल में विलम्ब होगा। वह गया श्याम टीले पर। वह उसने पटुका कंधे से दाहिने हाथ में लिया। वह धूमा पीताम्बर। 'कामदा! सुरभी! कृष्णा! कपिला। धर्मे! नन्दी!' वह पुकार रहा है नाम ले-ले कर गायों और वृषभों को। वह कामदा ने कान उठाये! पुकार का उत्तर हुंकार से देकर पूँछ उठा कर वे दौड़े पशु! एक दौड़ा श्याम की ओर तो दूसरे पीछे कैसे रह जायँ। चारों ओर टीले के ऊपर मुख उठाये जैसे हुंकार भरा सागर उमड़ आया हो—श्वेत, लाल, चित्र-विचित्र। और ये मृग, सिंह, ये क्यों इनके साथ दौड़े आये? कन्हैया बुला रहा है! वह पुचकारेगा—बस! उसने किसी को पुचकारा, किसी को थप-थपाया—'यहीं चरो, दूर मत जाना भला!'

× × × ×

मध्याह्नकाल हो गया। सखाओं ने कलेऊ कर लिया। कदम्ब-मूल में वरूथप ने किसलय बिछाकर उनपर स्वर्णयूथिका के सुमन और पाटल-दल आस्तृत कर दिये। कनूँ ने भद्र को बैठाया और उसकी गोद में मस्तक रखकर लेट गया। शीतल, मन्द वायु चल रही है। गगन में श्वेताभ घन छाये हैं। सुबल को इतने से संतोष नहीं। कनूँ के भाल पर क्रीड़ा में जो स्वेद झलक उठे, अभी सूखे कहाँ। सुबल ने कमल-पत्र को व्यजन बना लिया। वह वायु करने लगा है। वरूथप और मणिभद्र ने खिले हुए कमल के समान चरण गोद में रख लिये हैं। वे धीरे-धीरे दबाने लगे हैं चरणों को।

'तेरे हाथ स्वतन्त्र रहेंगे तो तू कुछ-न-कुछ ऊधम करेगा!' मधुमङ्गल और तोक ने कृष्ण के दोनों करों को अपनी गोद में ले लिया। भद्र तो अलकें सुधारने में ही व्यस्त है।

'कन्हैया, तूने कभी ताल खाया है!' श्रीदामा ने बड़े विचित्र ढंग से पूछा।

'नहीं तो, तू ले आया है क्या?' कनूँ ने मस्तक उठाया।

'यह वायु में जो ताल की गन्ध है!' सुबल ने उसे समझाया 'कैसी मधुर गन्ध है यह!'

'दाऊ, यहाँ से यह तालवन समीप ही है! वहाँ खूब ताल पके हैं! देख न, वे दीख रहे हैं। कैसे लाल-लाल हैं। वहाँ खूब पके फल गिरे होंगे। देख, अब भी उनके गिरने का शब्द हो रहा है!' मधुमङ्गल भोजन में सदा सबसे आगे रहनेवाला है। उसने इसीलिये कन्हैया से नहीं कहा कि यह नटखट उसे चिढ़ायेगा और दाऊ भैया तो झट प्रस्तुत हो जायगा।

'जैसे वे फल तेरे लिये रक्खे ही होंगे!' श्याम ने चिढ़ाया।

'नहीं तो उन्हें कौन ले जायगा। दुष्ट राक्षस धेनुक गधे का रूप धारण करके उस वन की अपने परिवार के साथ रक्षा करता है, यह बात उस दिन मेरे बाबा ने कही थी। उस राक्षस के

भय से वहाँ मनुष्य तो क्या, पशु भी नहीं जाते। पक्षी जाते तो हैं, पर क्या वे ताल-भक्षण कर सकते हैं।' सुबल ने पूरा ही विवरण दे दिया।

'दाऊ! भला, उस राक्षस में रक्खा क्या है। वह गधा नहीं, राक्षस है!' भद्र ने इस प्रकार कहा, जैसे राक्षस वास्तविक गधे से दुर्बल ही होते हैं।

'मैं ताल खाऊँगा। बहुत दिनों से मेरे मनमें ताल खाने की इच्छा है। उसकी बड़ी-सी गुठली रख दूँगा और जब उसमें अङ्कुर आयेगा, मक्खन की भाँति गिरी निकलेगी गुठली को कुल्हाड़ी से काटने पर। बड़ी मीठी होती है गिरी!' तोककृष्ण तो ताली बजाकर कूदने लगा, जैसे ताल और अङ्कुरित गिरी दोनों उसके हाथ में आ गयी हैं।

'उस गधे ने अनेक मनुष्य खा लिये! उस वन के फल अब तक किसी ने खाये नहीं!' वरूथप ने सावधान करना चाहा।

'तब तो बहुत फल होंगे वहाँ!' दाऊ उठ खड़े हुए।

'बहुत हैं, बहुत!' सबने समर्थन किया।

'वहाँ बड़ी-बड़ी मृदुल घास होगी! पशु तो वहाँ जाते ही नहीं!' सुबल और भद्र ने ग य को हाँक दिया तालवन की ओर।

बड़े-बड़े ऊँचे ताल के—केवल ताल के वृक्ष। वृक्षों पर चारों ओर पके, अधपके कुछ कालिमा, अरुणिमा, पीताभा लिये बड़े-बड़े गोल-गोल फलों के गुम्फ। वन एक मादक सुरभि से पूर्ण हो रहा है। भूमि हरित बढ़े हुए तृणों से ढकी है। दाऊ ने मस्तक उठाकर देखा। इन वृक्षों पर चढ़ा तो जा ही नहीं सकता। उसने एक वृक्ष के तने को दोनों हाथों से पकड़ा—'अरे, दूर हटो! दूर हो जाओ!'

'धब्-धब!' दाऊ के वृक्ष हिलाने से उसपर के सभी पके फल गिर पड़े ऊपर से। बच्चे दौड़े फल उठाने; परंतु सहसा स्तम्भित-से हो गये। यह, यह शब्द,यह हरहराहट, अवश्य असुर गर्दभ आ रहा है। सचमुच वह दौड़ता हुआ आया और सीधे दाऊ के सम्मुख जाकर उसने अपने पिछले पैर चलाये। दाऊ तनिक एक ओर हो गये। गर्दभ कुछ आगे दौड़ा गया। उसने मुख ऊपर करके 'चीपों! चीपों!' चिल्लाकर वन को भर दिया उस नाद से और फिर घूमा। दाऊ के सम्मुख आकर वह घूम गया। उसने अपने पिछले पैर उनकी ओर किये और दुलत्ती झाड़ी।

'अच्छा!' दाऊ ने दोनों पैर पकड़ लिये। बालकों ने तालियाँ बजायीं और मस्तक के चारों ओर घुमाकर दाऊ ने उस गजराज के समाज विशाल गधे को सम्मुख के तालवृक्ष पर फेंक दिया। घुमाने में ही उसने जीभ निकाल दी थी और नेत्र बाहर निकल आये थे। वृक्ष पर पड़ते ही उसका शरीर फट गया। वृक्ष तो टूटकर समीप के वृक्ष पर गिरा और वह वृक्ष दूसरे से जा टकराया। पूरा वन हिल उठा, जैसे प्रचण्ड आँधी आ गयी हो। उनके सब फल भदाभद् गिर पड़े।

'गधे! गधे आये!' लड़कों ने पुकार की। धेनुक के परिवार के गधों का बड़ा भारी दल दौड़ता-चिल्लाता चला आ रहा है। सखाओं ने लाठियाँ उठायीं, परंतु उनको हँसकर दाऊ ने रोक दिया। कन्हैया ही उनकी इस विचित्र क्रीड़ा में सम्मिलित हो सका। अद्भुत क्रीड़ा है यह भी। वह दौड़ता गधा आया। राम या श्याम ने झपटकर उसके पीछे के दोनों पैर पकड़े और सिर के चारों ओर घुमाकर फेंक दिया एक वृक्ष पर। धड़ाम से वृक्ष टूट पड़ा। यह क्रीड़ा चलती रही तब तक, जब तक सब गधे मारे न गये।

चारों ओर मध्य से टूटे भूमि पर सिर धरे, प्रणाम करते-से ताल वृक्ष, उनके चारों ओर खड़े ताल। भूमि पर बड़ी-बड़ी घास, जो गधों के दौड़ने से जहाँ-तहाँ कुचली पड़ी है। गधों के शव पड़े हैं उसपर इधर-उधर और ताल के फलों से तो पृथ्वी बिछ-सी गयी है।

सहस्र-सहस्र गायें, वृषभ, बछड़े और उनके साथ मृगादि पशुओं ने उसमें प्रवेश किया है प्रथम बार। वे इस अस्पृष्ट तृण को बड़े चाव से चरने लगे हैं। कपियों का दल किलकता आया तो है, पर ताल उन सबों ने सूँघकर छोड़ दिया। वह उनके योग्य फल नहीं।

राम-श्याम ने उछलते, चिल्लाते सखाओं के मध्य कटि से पटुका पुनः खोलकर कंधे पर डाला। बँधी अलकों को उन्मुक्त किया। श्रम-सीकर तो वायु ने प्रथम ही सुखा दिया। बालकों ने तालफल उठाये।

'ऐसे ही ताल खायगा!' कन्हैया ने बहुत प्रयत्न किया उसे छीलने का; परंतु जब सफल न हुआ तो मुख से काटने का यत्न करने लगा। सब बालक खिल-खिलाकर हँस पड़े।

'यह लकड़ी घुमा इस प्रकार और जो मक्खन की भाँति गूदा निकले, उसे खा!' सुबल ने एक छोटी-सी लकड़ी ताल के उपर के छिलके को छीलकर उसके रेशों में उलझा दी और उसे घुमाया। सब ताल में लकड़ियाँ लगाकर उसे खाने में लगे हैं।

'गुठलियाँ एकत्र रख दो! इनमें अङ्कुर निकलेंगे, तब इन्हें खायँगे हम सब!' वरूथप ने एक चेतावनी दी।

'मैं तो अभी खाऊँगा! तू इसे काट दे!' कन्हैया भला, अङ्कुर निकलने तक मानने वाला है।

'अभी क्या अच्छा लगेगा!' लेकिन वरूथप को काटना पड़ा गुठली को और उसने ताल का भीतरी भाग निकाल लिया।

'यह कैसा उज्ज्वल और चिकना है!' श्याम ने मुख में लगाया और फिर फेंककर मुँह बनाने लगा। सब-के-सब हँसकर चिढ़ाने लगे उसे। सबने तालों को उछाला, फेंका, उनकी कन्दुक-क्रीड़ा की।

दोनों हाथ, अधर, मुख और कपोल भी ताल के उस केसरिया गूदे से रँग गये हैं। बालकों ने इच्छानुसार ताल खाये और तब निर्झर के किनारे पहुँचना ही है उन्हें। पशुओं ने आज बहुत शीघ्र चरना बंद कर लिया। वे इस हरित मृदुल तृण से शीघ्र तृप्त हो गये। सबने बैठकर या खड़े होकर इधर-उधर रोमन्थन प्रारम्भ किया।

× × × ×

मुरली अधरों से लगी और वह नित्य के निश्चित स्वर में गूँज गयी। गोप-कुमारों ने अपने-अपने शृङ्ग उठाये। कानन का प्रत्येक कोना ध्वनित हो गया। गायों ने कान खड़े किये, पूँछें उठायीं और हुंकार करती दौड़ीं। श्याम अब व्रज को लौटेगा।

कपिदल किलकता-कूदता एकत्र हो गया। मयूरों ने नृत्य बंद किया। पक्षियों के स्वरों में वेदना आयी! कन्हैया अब उनसे रात्रिभर के लिये दूर जायगा! गायों के साथ मृग, वराह, रीछ, सिंह, सब दौड़ आये। सब एक साथ उस झुंड के साथ चले। वनसीमा तक तो वे सब जा ही सकते हैं।

पीछे तरु-पंक्तियाँ पक्षियों के भार से झुकी हैं। वन्यपशुओं के ठट्ट पंक्तिबद्ध खड़े हैं; जैसे वनदेवता सहस्र-सहस्र नेत्रों से अपने आराध्य का दर्शन कर रहे हैं। आगे गायें, बछड़े, वृषभ चल रहे हैं। घर की स्मृति में आगे दौड़ने के बदले वे बार-बार पीछे घूमकर हुंकार करते जाते हैं।

दोनों दलों के मध्य में रस्सी, लकुट, शृङ्ग, छीके लिये गोप-बालकों का समुदाय है। वे सब बार-बार हँसते हैं, तालियाँ बजाते हैं, पुकारते हैं, गाते हैं और जयनाद करते हैं—'जय जय कुँवर कन्हाई!'

बालकों से आगे तप्तहेमवर्ण, नीलाम्बरधारी दाऊ अपनी मत्तगयंद-गति से चल रहे हैं और उनके बायीं ओर है उनका पीताम्बरधारी, इन्दीवरनील, चपलनेत्र छोटा भाई! उसके अधरों की मुरली-ध्वनि गायों की हुंकृति, पक्षियों के कलरव, वन्यपशुओं के विविध शब्द, गोप-कुमारों के कोलाहल, सबको एकाकार करके गूँज रही है। सब उस परमराग के अनुगामी बन गये हैं। उसने सबको 'साज' बना लिया है।

मोहन आ रहा है! अस्तंगत सूर्य की अरुण रश्मियों में उसका मुख अबीर से मला-सा जान पड़ता है। उसके कपोलों पर कुण्डल झलमला रहे हैं। मस्तक पर बँधा मयूरपिच्छ, अलकें,

भाल, भ्रूमण्डल, कपोल, वनमाला—सब पर गायों के खुरों से उठी धूलि के कण सुशोभित हैं। कपोल, भुजा, पृष्ठ, वक्ष—समस्त अङ्गों पर वनधातुओं के रंग-बिरंगे चित्र हैं। वन्यपुष्पों के आभूषण धारण किये हैं उसने और अलकों में सखाओं ने इतने कुसुम उलझा दिये हैं, जैसे गगन में तारे खिले हों ! वह आ रहा है— मन्द-मन्द चलता, तनिक-तनिक झूमता, कभी गायों या बछड़ों को पुचकारता, कभी सखाओं की ओर मुड़कर देखता, कभी इधर-उधर चपल नेत्र चलाता, मन्द-मन्द मुस्कराता चला आ रहा है।

मोहन आ रहा है ! जैसे व्रज के कणों में अमृत पड़ा हो। वेणु-नाद के साथ सब दौड़ पड़े। गोपों ने मार्ग के दोनों ओर स्थान लिया। वृद्धाओं ने आरतियों के थाल सजाये। तरुणियों ने अट्टालिकाओं पर कुसुम की संचित ढेरियों के समीप अञ्जलि भरी और बालिकाओं ने केसर, चन्दन, अक्षत की कटोरियाँ उठायीं।

मोहन आ रहा है ! कितने युगों की प्रतीक्षा-तपस्या जैसे पूर्ण हुई है। कौन ऐसा है, जिसने द्वारदेश के बार-बार चक्कर नहीं काटे। उनकी गणना कौन करे, जो ग्रामसीमा तक तीसरे प्रहर तक ही बार-बार जाकर लौटने लगे हैं। सूर्यास्त के बहुत पूर्व से मार्ग में या वातायन के सम्मुख स्थिर हुए लोगों की उत्कण्ठा क्या शब्दों में व्यक्त हो सकती है।

मोहन आ रहा है ! वह नित्य इसी प्रकार आता है; परंतु लगता है, वह युगों के पश्चात् आ रहा है। वह नेत्रों से, हास्य से, मस्तक हिलाकर सबको तृप्त करता, सबके मध्य से, नन्दभवन जा रहा है ! कुसुमवर्षा, केसर के छींटे, द्वार-द्वार के नीराजन के साथ सबके हृदय, प्राण, मन उसके साथ जा रहे हैं और नन्दभवन तक सब को उसका अनुगमन करना है ! सबके चरण स्वतः चले जा रहे हैं !

दधि-दान

"आपादमाचूडमतिप्रसक्तैरापीयमाना यमिनां मनोभिः।
गोपीजनज्ञातरसावतान्नो गोपालभूपालकुमारमूर्तिः॥"

—श्रीलीलाशुक

मुरली—मुरली बजती है, वही तो व्रजजन-जीवन है। वही तो प्राणों में सुधा-सिञ्चन करती है कर्ण-कुहरों में प्रविष्ट होकर। श्यामसुन्दर सखाओं के साथ प्रातः गोचारण के लिये वन में चला जाता है। अब वह प्रायः मध्याह्न में लौटता नहीं। उसका कलेऊ वन में ही पहुँचाया जाता है। वह लौटता है सायंकाल को और व्रज के मन, नेत्र, प्राण उस प्रातः के वियोगक्षण से सायं के स्वर्णिम क्षण की आकुल प्रतीक्षा करते रहते हैं। मुरली-ध्वनि--दिन में प्रायः यह अमृत-ध्वनि उनके कानों में पहुँचती है। वे सहसा उसी स्थिति में, जिसमें होते हैं, निःस्पन्द होकर उस शब्द-सुधा का पान करते हैं।

गोपियाँ—वे क्या करें ? वह मोहन का मक्खन चुराना, वह भवन के प्राङ्गण में, कोष्ठ में उसका सखाओं के साथ उन्मुक्त हास्य, वह उसका इधर-उधर चपल होकर देखना, भागना, दौड़-धूप, छीना-झपटी, और वह चिढ़ाना, मैया को उलाहना देने के बहाने बार-बार उसका वह कृत्रिम गम्भीरता धारण कर लेना, वे अटपटी युक्तिया-- जैसे आज की ही तो बातें हैं सब; पर--पर ये तो गोकुल की बातें हैं। वे दो यमुलार्जुन के वृक्ष--वे दोनों गिरे और ले गये वह आनन्दोत्सव। श्याम सकुशल रहे! लेकिन इस वृन्दावन में ही क्या कम उत्पात करता था वह। उसका वह घड़ों को कंकड़ मारकर फोड़ देना, घड़े लुढ़का देना, छीना-झपटी करना, सखाओं के साथ ताली बजाकर कूदना, वह विजयोल्लास और उलाहना देने जाने पर उसकी मैया से वे युक्तियाँ, वह विचित्र मुखभङ्गी हाय, व्रजेन्द्र को क्या अभाव था। कन्हाई के ही गाय चराये बिना क्या गायें न चरतीं। व्रजेश करें भी क्या--वह चञ्चल वन में गये बिना मानता कहाँ है। उसकी वह धूम, वह लीला, वह उन्मद बालचपलता—आज भी प्राण तड़प उठते हैं। वह सायंकाल लौटेगा ? उफ, कितना बड़ा है दिन, कब होगा सायंकाल !' गोपियाँ एकत्र होती हैं और परस्पर उसी ऊधमी के ऊधमों की चर्चा करती हैं। मुरलीध्वनि कभी प्राणों को सिञ्चित कर जाती है और तब चल पड़ती है मुरली की चर्चा।

बालिकाएँ—वे श्याम के साथ अब तो खेल नहीं पातीं। अब वह नटखट न उनसे झगड़ता और न उन्हें चिढ़ाता, उनकी जलभरी स्वर्णकलशियों को छीनकर कोई लुढ़काने वाला घाट पर ही नहीं तो घाट पर जल भरने गयीं तो और न गयीं तो.....अवश्य वहाँ जाकर वे कुछ क्षण बैठ लेती हैं। सखियों में परस्पर कुछ उसकी चर्चा हो जाती है। वे छः से आठ वर्ष तक की बालिकाएँ—अभी से उनकी चञ्चलता पता नहीं क्या हो गयी। अभी से वे गुम-सुम रहने लगीं। प्रातः जब मोहन सखाओं के साथ गायों को आगे करके इधर से निकलता है--वह इधर से ही निकलता है। अब वह बरसाने के मध्य से होता आगे के वन में ही जाता है। हाँ, उस उषःकाल की सिन्दूरी वेला में और सायंकाल जब वह गोरज से भरी अलकें, पलकें, वनमालाभूषित, विचित्र वनधातुसज्जित, अधरों पर मुरली धरे, इधर-उधर चञ्चल नेत्रों से अमृतवर्षा करता मन्दगति से मृगराज के समान झूमता-घूमता आता है—जैसे किसी पुत्तलिकागृह के सूत्रधार ने सूत्रों को एक संग झकझोर दिया हो। उसी समय तो इन सब में जीवन-सा आता है। इतना उन्मद-प्रवह जीवन जो उल्लसित, अस्त-व्यस्त कर देता है और फिर--दिन में तो कुछ पूछना नहीं। जो जहाँ है, वहीं बस बैठी है। कोई पुकारे, कोई समीप से आये-जाय, ये सब तो जैसे मूर्तियाँ हैं। माता-पिता, घर के दूसरे लोग ठेल-ठाल कर नहला दें, भोजन करा दें—बस इतना ही।

हाँ, मुरली बजती है--वह तो बजती ही है। सब जैसे वन की ओर ही कान लगाये ध्यान किया करती हैं। वह बजी मुरली--वह बजी ! प्राणों में एक अद्भुत उत्तेजना—अब दौड़ पड़ें, अब दौड़ पड़ें। 'वहाँ तमालतरु के नीचे ललित त्रिभङ्गी से खड़ा मोहन कदाचित् इधर ही देखता होगा !'

कब तक कोई अपने को रोके रक्खे। लड़कियों ने प्रस्ताव किया—'हम तो दही बेचने जायँगी !' भला यह भी कोई बात है। घर मणि-रत्नों से भरा है। तेली, तंबोली, बजाज, स्वतः आवश्यक पदार्थ पहुँचा जाते हैं; तब दही क्यों बेचें ये बालिकाएँ। कुछ गोप-रमणियाँ दही बेचती तो हैं। दही के बदले वे तेल, लवण, वस्त्र ले आती हैं। मणि-रत्नों को कौन पूछे। लगता है कि इन लड़कियों ने उनमें से ही किसी को देख लिया है। इन्हें भी धुन चढ़ी है सिरपर मटकी रखकर पुकारते-पुकारते घूमने की। श्रीकीर्तिकुमारी दही बेचने निकलेगी—कैसी बात है यह।

'लड़की दिनभर गुमसुम बैठी रहती है। वह बराबर दुबली होती जा रही है। उसकी उदासी का कारण तो समझा जा सकता है। सारा व्रज ही जिसके दर्शनों के लिये दिनभर बेचैन-सा रहता है, वह वन में जो रहता है दिनभर। लेकिन श्याम को गो-चरण से रोका कैसे जा सकता है। इन लड़कियों की उदासी का उपाय भी क्या। और ये सब तो अब न ठिकाने से भोजन करतीं—न स्नान।' माता-पिता के हृदय पर जो बीतती है इनकी दशा देखकर, वे ही समझते हैं। 'अच्छा है !' दही बेचने के बहाने इनका मन तनिक प्रसन्न होगा। यह उदासी मिटेगी। किसी प्रकार ये सब प्रसन्न तो रहने लगें। गोपकुमारियाँ ही तो हैं, गोरस बेचने में कोई अपमान तो है नहीं। यह तो कुल का शास्त्रनिर्दिष्ट व्यवसाय है।' आज्ञा मिल गयी, जैसे जीवनदान मिला हो। यह कुतूहलजन्य उत्कण्ठा तो थी नहीं। दहेड़ियाँ सजायीं सबने स्वयं। नवनीत के लौंदे भरे देख-देख के। आज उनमें जो उल्लास है, जो तत्परता है, माता-पिता के लिये भी जैसे जीवन का ही वरदान मिला है।

'दूर मत जाना ! सब साथ ही रहना ! पृथक्-पृथक् मत होना ! झगड़ना मत ! जो कोई कुछ विनिमय में दे, ले लेना। कोई बहुत अधिक दे तो लेना नहीं है। उन पदार्थों को तुम सब मत लाना। वहीं छोड़ देना। सेवक ले आयेंगे। कोई कुछ न भी दे तो हानि नहीं। देर मत करना। शीघ्र लौटना। तुम्हारे दही-मक्खन बिकें ही, यह कुछ आवश्यक नहीं है।' पता नहीं कितने उपदेश दिये गये; पर किसी ने उन्हें सुना भी या नहीं, कौन जाने।

श्रीवृषभानुकुमारी और उनकी सहेलियाँ—वे दही और नवनीत लेकर निकलें और बिके नहीं ! किसके मनमें उत्कण्ठा नहीं कि वे उसे कुछ दे दें; किंतु उनका ग्राहक क्या यहाँ है ? वे क्या साधारण ग्राहक को यह अपने हृदय का धवल स्नेह देने चली हैं। साहस भी किसमें है जो उनसे बेचने को कहे। उन्हें कहाँ जाना है, किसे देना है, यह सब वे जानती हैं। उन्हें इधर-उधर देखना कहाँ है। उन्हें बेचना हो तो पुकारें।

गायों की यह खुरपंक्ति, यह गोमय और गोमूत्र से पावन मार्ग—इधर ही गया है उनका वह ग्राहक और वे उसे ढूँढ़ तो लेंगी ही।

× × × ×

'कनूँ, मुझे तो भूख लगी है !' मधुमङ्गल सदा भूखा ही रहता है। उसने नूपुर की रुनझुन, किङ्किणी का रणन, आभूषणों का सिञ्जन सुना और भूख लगी उसे। ब्राह्मण के लड़के को भोजन ही सूझता है। लेकिन कन्हैया भी तो पता नहीं क्या सोचता, उधर ही कान लगाये है। वह कोई विचित्र खेल अवश्य बतायेगा—उसकी मुद्रा ही बता रही है।

'तुझे भूख लगी है तो फल खा ले !' सुबल श्यामगिरि के ऊपर चढ़ा बैठा है। वह इस प्रकार दौड़ता-कूदता क्यों उतर रहा है ? इतना प्रसन्न क्यों है ? कलेऊ देखकर तो इतना प्रसन्न कभी नहीं होता। 'तू जानता होगा कलेऊ आ रहा है ! ये तो दही बेचने को जा रही हैं और कौन हैं, जानता है ?' सीधे श्याम के पास आकर उसने धीरे कान में कह दिया कुछ।

'फल तू खा ले, मैं तो इनका दही खाऊँगा !' मधुमङ्गल ने मुख बनाकर कन्हैया की ओर देखा। कोई हो, अन्ततः दही तो है ही उनके पास और जब उसे भूख लगी है तो भला दही क्यों नहीं मिलेगा ?

'श्रीदाम, देख ! तेरी बहिन दही बेचने जा रही है !' श्याम को यह क्या सूझा। सुबल ने कुछ चकित होकर देखा। उसने तो बात कान में कही थी।

'कनूँ, तू मुझे चिढ़ायेगा तो ठीक नहीं होगा !' श्रीदाम को रोष आया।

'मैं झूठ नहीं बोलता; तू न माने तो ऊपर जाकर देख ले !' कन्हैया का बोलने का ढंग तो चिढ़ाने-जैसा नहीं है। 'देख, है न यह अटपटी बात। भला, इन सबों को क्या पड़ी थी दही बेचने की। बाबा का नाम छोटा करेंगी सब। आज तो बड़ी सहानुभूति हो गयी है इसे।

'आने तो दे !' श्रीदाम ने अविश्वास नहीं किया। वह तनकर खड़ा हो गया। वह अवश्य डाँटेगा सबको।

'तू क्या अपनी बहिन को डाँट सकेगा ?' कन्हैया उसकी दुर्बलता जानता है। बहिन को—भला, वह क्या डाँटने योग्य है ? उसे कोई भी कैसे डाँट सकता है। उसके भोले मुखको देखते ही उसी की बात मानने को जी चाहता है। और तनिक भी झगड़ने का प्रयत्न करते ही जब वह हँस पड़ती है—ना, उसे डाँटा तो नहीं ही जा सकता। श्रीदाम की समस्या तो मोहन को सुलझानी है। 'हम सब मिलकर इनका सब दही माखन छीनकर खा-पी लें ! न कुछ रहेगा, न बेचने जायँगी और फिर दूसरे दिन अपने आप निकलेंगी।' सच्ची बात तो यह है कि नटनागर ने श्रीदाम को भी फोड़ लेने की युक्ति रच ली और भला, इस भोले बालक की स्वीकृति क्यों न मिले। अपने ही घर का दही माखन है, उसे छीनकर भी श्याम खा ले तो अच्छा ही है।

'आओ, सब चुपचाप इधर-उधर कुञ्जों में दुबक जाओ ! कोई दिखायी न पड़े। खाँसना-छींकना मत। कहीं सब डरकर आशङ्का से दूसरी ओर से न चली जायँ। यहाँ साँकरी खोर से निकलें, तभी दाव पूरा लगेगा ! मैं ताली बजाऊँ तो सब दौड़ आना।' नटखट दौड़कर समीप की कुञ्ज में जा छिपा। सखाओं ने भाग-दौड़कर जिसे जहाँ स्थान मिला, वहीं छिपाया अपने को।

× × × ×

लक्ष-लक्ष गौएँ चर रही हैं, कोई खड़ी और कोई बैठी रोमन्थ कर रही हैं। बछड़े फुदकते हैं और उनके साथ मृग, सिंह आदि वनपशु खेल रहे हैं। वृषभ सींगों से; पैरों से भूमि खोदते गर्जना कर रहे हैं। उनकी प्रतिद्वन्दिता करने का अमर्ष भी केसरी में नहीं; लेकिन ये सब मयूर क्यों नाचते नहीं ? ये सब-के-सब बंदर कैसे पर्वत पर एकत्र होकर मार्ग के इधर-उधर बैठे हैं। सब इतने शान्त क्यों हैं ? सहस्रों गोप-कुमारों में से यहाँ तो कोई दीखता नहीं ! सब-के-सब कहाँ गये ? कोई आशङ्का की बात होती तो पशु, पक्षी, कपिदल इस प्रकार क्या शान्त दिखायी पड़ते ? लेकिन सब गये किधर ? ये बंदर परस्पर क्या संकेत कर रहे हैं ?

लड़कियों ने एक दूसरे की ओर देखा। उनके मुखों पर मन्द हास्य आया। वे उस चिर-चपल की चञ्चलता से अपरिचित तो हैं नहीं। यह सामने साँकरी खोर है। यह श्याम और श्वेत पर्वत खड़े हैं ठीक बराबर-बराबर। ये दोनों के ढाल उतरकर नीचे मिल गये हैं। श्रीराधा और श्यामसुन्दर के मिलन का पावन प्रतिबिम्ब ही तो है यह। इस धन्यभूमि से अधिक और कौन-सा उपयुक्त स्थान होगा। लड़कियों ने देखा, नेत्रों में ही एक दूसरी से संकेत किया—'इस साँकरी खोर—साँकरे मार्ग से एक-एक को ही निकलना पड़ेगा। इसमें हम दो-दो भी नहीं जा सकतीं और यह निश्चय ही है कि वे यहीं रोकेंगे !' पैरों की गति उल्लास से अटपटी हो उठी। हृदय जाने कैसा करने लगा। मुख अरुण हो उठे। पर वे चल ऐसे रही हैं, जैसे सचमुच उन्हें कहीं जाना ही है और इस स्थान में उनकी कोई रुचि नहीं। उन्होंने हठपूर्वक इधर-उधर देखना बंद कर दिया है। चरणों की गति भी कुछ बढ़ी ही है।

वे हिलीं लताएँ और यह क्या ? सब-की-सब ठिठककर खड़ी हो गयीं। एक बार ताली बजी और अब—अब तो आगे बढ़ने को मार्ग ही नहीं है। सम्मुख तो श्यामसुन्दर खड़ा है। मस्तक पर लहराता मयूरपिच्छ, मणि-मुकुट और वन्य-सुमन उन काली घुँघराली स्निग्ध अलकों में उलझे हुए। कपोलों पर झलमलाते कुण्डल, भाल पर गोरोचनतिलक, कण्ठ में मोटी वनमाला के मध्य मुक्तामाल, भुजाओं में स्वर्णाङ्गद, कटि में कछनी के ऊपर कसा पटुका और उसमें वह मुरली—हाँ सब उपद्रवों की जड़ वह मुरली, हाथ में वेत्र-लकुट लिये आज विचित्र भङ्गी से वह मार्ग रोके

खड़ा है—ठीक ऐसे, जैसे हृदय में अड़ जाता है। कुटिल भौंहें विचित्र हो गयी हैं। अधरों पर हास्य के स्थान पर गम्भीरता है। और उसके पीछे वे खड़े हैं उसके सहस्रशः सहचर। कोई भला, कैसे इनके बीच से निकले—बीच हो तब तो निकले। बालिकाओं ने मुख घुमाकर एक दूसरी को देख भर लिया। उनका स्मित भी अलक्ष्य ही रहा।

'तुम सब नित्य चोरी-चोरी इधर से निकल जाती हो। मेरे वन में से जाना और वह भी बिना मेरा भाग दिये। आज बहुत दिनों पर पकड़ में आयी हो। चुपचाप मेरा भाग दे दो!' एक अधिकारी की गम्भीरता आ गयी है उस नटखट की वाणी में।

'तुम्हारी यह छेड़खानी अच्छी नहीं! हम जाकर बाबा से सब कह देंगी। हमें जाने दो! तुम्हारा वन कहाँ से आया? कैसा तुम्हारा भाग! हम तो आज ही आयी हैं और फिर वन में जाने में भाग कहाँ का! चलो मार्ग दे दो!' एक ने कुछ आगे खिसककर कहा। ठीक भी तो है, बरसाने के सीमान्त के इस वन को कोई अपना कहे तो धृष्टता नहीं तो क्या है; लेकिन कन्हैया यदि यही बात श्रीवृषभानुजी से कहे—वे कैसे अस्वीकार करेंगे। तब वह क्या अनुचित करता है?

'तुम सबों को चुपचाप भाग देना है या नहीं? तुम्हें चाहे जिससे जो कहना हो, जाकर कह देना; पर मेरा भाग दे जाओ!' मोहन तो आगे बढ़कर सर्वथा समीप जा खड़ा हुआ।

'अच्छी बात, हम जाकर कहेंगी ही!' वह आगे की लड़की तो लौटने ही लगी। सब चेष्टा तो ऐसी ही कर रही हैं कि जैसे उन्हें अभी सीधे लौटकर कह ही देना है।

'उधर कहाँ? मेरा भाग दे ले, तब जा!' यह लो, कन्हैया ने तो मटकी पकड़ ही ली। वह लगा छीनने। लड़के तो पर्वतों के ढाल पर चढ़कर कूद-फाँदकर इधर-उधर से पीछे भी आ गये। बालिकाएँ तो घिर गयीं। अब वे जाना भी चाहें तो कैसे जा सकती हैं।

'कनूँ, मुझे बहुत भूख लगी है!' अन्ततः ब्राह्मण कब तक धैर्य रक्खे। मधुमङ्गल ने अपनी बात कही और आगे आ गया।

'तो ले, तू भोग लगा!' छीना-झपटी में दहेड़ी तो फट् से हो गयी। दोनों हाथ भरकर मक्खन का लौंदा कन्हाई ने दे दिया उसे।

'मुझे! मुझे!' सखाओं में जैसे होड़ लगी है। ये लड़कियाँ भी बड़ी हठी हैं। वे चुपचाप मटकियाँ दे क्यों नहीं देतीं? वे तो उन्हें गोद में दबाकर बैठ ही गयी हैं, जैसे कोई निधि छिपाये बैठी हों। श्याम किसी को गुद-गुदाकर, किसी को ठेलकर, किसी के हाथ बलात् छुड़ाकर छीन रहा है। यह तो बनी बात है कि इस छीना-झपटी में वस्त्र फटेंगे, आभूषण टूटेंगे, बर्तन फूटेंगे। कन्हैया का दोष भी क्या है; ये सब चुपचाप दे दें तो यह क्यों हो।

'भद्र, तू लकुट से फोड़ तो इसकी मटुकिया।' भद्र को लकुट मारते कितनी देर लगनी है। यह लो, फैल गया दही। सुचिक्कण पर्वतीय भूमि है, भर-भर अञ्जलि पीने में कोई हानि नहीं।

'तू मुझे क्या घूरती है? तेरी दहेड़ी ही तो फोड़ी है, ले मक्खन खा ले!' भद्र ने एक लोंदा नवनीत बलात् फेंक दिया बिचारी के मुख पर।

'श्याम, तेरी मटकी बाकी है अभी!' सुबल ठीक ही तो कह रहा है। कीर्तिकुमारी की मटकिया तो अभी अछूती ही है।

'मोहन, देखो! तुम बहुत धृष्टता करोगे तो ठीक न होगा!' यह सरल मोर्चा नहीं है। सब-की-सब भिड़ पड़ी हैं रक्षा करने में। किसने छीना और किसने बचाया या जान-बूझकर दे दिया—कौन जाने। इतनी लड़कियाँ एकत्र टूट पड़ी हैं, उनसे मोहन अकेला उलझा है—पर वह विजयी तो हो ही गया। वह भर लिया माखन से उसने मुख।

पर्वतों के चिकने ढाल पर फिसलते हुए वे बालक नवनीत, दही खाते और फेंकते ताली बजाते, हँसते मग्न हो रहे हैं। बंदरों की तो बन आयी है और बालिकाएँ इन मयूरों, मृगों, शशकों पर रुष्ट हों या हँसें, समझ नहीं पातीं। उनके तो बर्तन फूटे, दही-नवनीत गया और ये पेट भरते हैं और उलटे उन्हीं को सूँघने आते हैं!

यह श्रीदाम—सब एक से ही हैं! सब घुले-मिले हैं। कैसे मुख और हाथ भर लिये हैं। किसी को कुछ कहना तो दूर, किसी की ओर देखना भी शङ्का की ही बात है। देखते ही कहीं उसने 'ले खा ले!' कहकर दही फेंक दिया तो? भूमि—वह तो उज्ज्वल हो गयी है। ये पशु-पक्षी उसे अभी स्वच्छ कर देंगे! अरे, ये बर्तनों के टुकड़े भी बचेंगे नहीं? कहरी ने तो फूटे टुकड़े ही चबाने प्रारम्भ कर दिये हैं। ये सब भी इसी उपद्रवी के सहचर हैं। इसके अपराध का चिह्न तक नहीं रहने देंगे।

बालिकाएँ देख रही हैं—श्यामसुन्दर फूटी मटुकी के टुकड़े में माखन भरे वह गौर पवन की शिला पर बैठ गया है। उसका मुख, दोनों हाथ, दोनों लाल-लाल चरण—सब उज्ज्वल हो गये हैं। पटुके पर, पेट पर, वक्ष पर, भुजाओं पर भी खूब दही लगा है। भाल पर, अलकों पर, सारे अङ्ग पर छोटे-बड़े बिन्दु हैं उज्ज्वल-उज्ज्वल। वह स्निग्ध हो गया है, मग्न है। बड़े भाई के मुख में मक्खन देते हुए कितना हँस रहा है अँगूठे दिखाकर। यह दाऊ—वह तो छीना-झपटी में था नहीं। वह तो छोटे भाई की लूट में भाग लेने बैठ गया।

'भद्र, देख तो कैसा मीठा है!' वह चाहे जिसके मुख में मक्खन दे देता है। चाहे जो उसे खिलाने लगता है। यह मधुमङ्गल भी पूरा लालची है। अच्छा हुआ, उसे चिढ़ा दिया अँगूठा दिखाकर।

बालिकाएँ देखती रहीं—देखती रहीं चुपचाप। उन्हें जाना है, उनको रोष का नाट्य करके ही जाना चाहिये। सब बात तो ठीक—उनके वस्त्राभरण भी फट-फूट गये, यह भी ठीक और वर्तनों के तो टुकड़े भी व्याघ्र-केसरी के उदर में जा चुके; पर यह सम्मुख कन्हैया सखाओं के साथ दधि-भोजन में लगा है। उसे जैसे लड़कियों से कुछ मतलब नहीं। अब तो सब अपनी ही धुन में लगे हैं।

'अच्छा, तुम सब घर लौटो तो पता लगेगा!' लड़कियों ने मुख कठोर करके चेतावनी दी और लौटने लगीं। कन्हैया हँस पड़ा। किसी ने अँगूठा दिखाया, किसी ने घूसा। सब ताली बजाकर हँसने लगे। भला, इन उपद्रवियों पर कहीं धमकी का प्रभाव पड़ता है। वे चिढ़ाकर ही मान जाते हैं, यही क्या कम है।

'कनूँ, ला मैं तेरा मुख धो दूँ!' वरूथप बड़ा है न, वह तो प्रयत्न करेगा ही। सबों ने ह्रद में हाथ-मुख धोये, जैसा आधा-पूरा वे धो सकते थे। एक दूसरे के अङ्गों को धोने और पोंछने लगे। श्याम का शृङ्गार भी तो करना है, उसके अङ्गों के तो सब चित्र मिट गये। कुसुम भी बहुत गिर गये और बहुत दही में सन गये। वे सब अपने आयोजन में लगे।

× × × ×

बालिकाओं के विषय में कुछ कहने को है ही नहीं। वृन्दावन में बहुत बंदर हैं। वैसे तो वे बड़े सीधे हैं, किसी को छेड़ते नहीं; परंतु पता नहीं इन लड़कियों से उनकी क्या शत्रुता है। कौन जाने, उनका भी कोई दोष न हो। ये सब तो बहुत भीरु हैं। कपियों ने स्वभाववश-कूदा फाँदी और हूँ-हूँ कर दी तो इन्होंने समझा, हमें ही काटने आते हैं। अच्छा ही हुआ जो दही—नवनीत के पात्र फेंककर भागीं। लेकर भागतीं तो गिरनेपर चोट लग जाती। घनी लताएँ, वनपथ, इसमें डरकर भागने पर वस्त्र क्या बचे रहेंगे! आभूषण टूट गये तो हुआ क्या? नन्दनन्दन का भला हो, उसने इन सबको दौडकर आश्वासन दिया और गाँव के पास तक पहुँचा गया। भला, माता-पिता आदि कैसे अविश्वास कर लें इन बातों पर।

बालिकाएँ बड़ी हठी हैं—वे कुछ हो, पर जायँगी नित्य दही बेचने और कभी बंदर, सर्प, कभी व्याघ्र—भला, वन में डरानेवाले पशुओं की क्या कमी है। जो भी हो, उनका घरमें उदास बैठे रहने से तो यह घूम आना अच्छा है। अब वे प्रसन्न तो रहती हैं। अब वे नित्य 'कल अवश्य बेंच आऊँगी!' इस आशा में लगी तो रहती हैं। वे थोड़ी डरती हैं; लेकिन वृन्दावन के वनपशु—उनसे कोई आशङ्का नहीं और मोहन—वह बड़ा दयालु है, वह नित्य इन्हें बचा देता है।

ढुण्ढा की होली

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम् ॥ —गीता १० । ४१

आज होलिका-दहन का दिन है। बाबा ने नवान्नेष्टि यज्ञ की प्रस्तुति की है। व्रज में कृषि तो होती नहीं, वन की सुरभित ओषधियाँ, मुन्यन्न, घृतकुम्भ प्रातः से ही सज्जित हो रहे हैं। नित्य सज्जित, नित्य स्वच्छ, नित्य मङ्गलमय व्रज आज जैसे नूतन हो गया है। घर-घर गोप लगे हैं। बरसाने और नन्दग्राम ने इस बार यह उत्सव सम्मिलित करने का निश्चय किया है। रात्रि के प्रथम प्रहर के अन्त में भद्रा नक्षत्र के अन्तिम भाग में यह यज्ञ होगा। सब गोप प्रातःकाल से ही व्यस्त हैं।

बालकों का तो यह होलिका-दहन है। श्रीपञ्चमी को ही उन्होंने नन्दग्राम और बरसाने की सीमापर एक अरंड का पेड़ गाड़ दिया। उसपर गो-चारण से लौटने पर कन्हैया अपने सखाओं के साथ नित्य सूखी समिधाएँ डालता है। सत्ययुग में फाल्गुन-पूर्णिमा को सायंकाल वह हिरण्य-कशिपु की बहिन होलिका नन्हे प्रह्लाद को लेकर काष्ठ की विशाल चिता में बैठ गयी थी। उसे बड़ा गर्व था कि उसके पास ऐसा वस्त्र है, जिसे ओढ़ लेने से अग्निदेव जला नहीं सकते। वह भस्म ही हो गयी और प्रह्लाद आनन्द से भगवन्नाम लेते बैठे रहे। कन्हैया को यह स्मरणोत्सव मनाने में बड़ा आनन्द आता है। नित्य उस निश्चित स्थान पर समिधाए एकत्र करके वह व्रज की गलियों में सखाओं के साथ गाता घूमता है। सब लड़के गाते हैं, ताली बजाते हैं; भगवान् नृसिंह तथा प्रह्लाद का नाम-कीर्तन करते हैं। इन्हीं समिधाओं के ढेर में नवान्नेष्टि यज्ञ होता है। जब बरसाने और नन्दग्राम के लड़कों ने एक ही स्थान पर समिधाएँ एकत्र की हैं, तब यज्ञ भी एक ही स्थान पर होगा। यह हवनकुण्ड में होने वाला यज्ञ तो है नहीं। पर्वताकार समिधाओं में सहस्रों मन ओषधियाँ, सैकड़ों मन मुन्यन्न और शतशः घृतकुम्भ उड़ेल दिये जायेंगे। महर्षि शाण्डिल्य विप्रों के साथ दूर खड़े केवल मन्त्रपाठ करेंगे।

आज ही यह यज्ञ होना है। श्रीपञ्चमी से ही कन्हैया सखाओं के साथ वन से गायों को कुछ शीघ्र लौटा लाता है। गायें गोष्ठ में बाँधकर सब साथ ही नन्दभवन में कलेऊ करते हैं और तब समिधा डालने निकल पड़ते हैं। मैया को श्याम के इस काम में एक ही आपत्ति है कि वह नित्य लौटने में अँधेरा कर देता है। उसे भगवान् के इस नामकीर्तनोत्सव में जाना चाहिये, ऐसे कार्य से रोककर भगवान् नृसिंह का अपराध कैसे किया जा सकता है; पर ये लड़के बड़े चञ्चल हैं। वे जल्दी लौटते ही नहीं। बहुत रात्रि कर देते हैं। नित्य श्याम को ढूँढ़ने किसीको भेजना पड़ता है। बड़ी कठिनता से सब सखाओं को ले आने पर वह आता है।

आज यज्ञ तो एक प्रहर रात्रि व्यतीत होने पर होना है। माता ने सभी सखाओं को समझाया था कि आज वे समिधाएँ डालकर शीघ्र लौट आयें। थोड़ी देर विश्राम कर लें। यज्ञ के समय लड़के घर में रुकने वाले नहीं हैं, यह माता जानती थीं। आज बालकों ने बात मान ली है। कन्हैया सखाओं के सङ्ग नित्य से कुछ पूर्व ही लौट आया है।

गोप-कुमारों ने मन्त्रणा की कि वे अपने-अपने घरों से खूब घृत में भिगाकर चन्दनदण्ड लायेंगे और यज्ञ के समय उन्हीं की आहुतियाँ वे देंगे। कन्हैया, भद्र और दाऊ को मैया ने रोक लिया; शेष अपने-अपने घर से आहुति लिये चन्दनकाष्ठ लेने चले। श्याम ने देखा कि मैया उसे नहीं जाने देती है तो उसने सुबल से कहा कि वह श्रीदाम को बरसाने की सीमा तक पहुँचा दे। बालकों ने झट निश्चय कर लिया—वे पहिले सब बरसाने जायँगे और वहाँ से साथ ही लौटेंगे। लौटकर अपने घरों से चन्दनदण्ड लेंगे और तब नन्दभवन आयेंगे।

× × × ×

'अरे, यह कौन है ?' श्रीदाम की दृष्टि आगे मार्ग पर पड़ी। सब बालक नन्दभवन से कुछ दूर निकल आये थे।

'बाप रे ! यह तो राक्षसी है !' मधुमङ्गल डरकर सुबल के पीछे हो रहा। लड़के अपनी ही बातों में उलझे न होते तो वे दूर से ही इस कृत्या को देख लेते। भयंकर काली आकृति, बड़े-बड़े दाँत, लाल-लाल अङ्गारों-जैसे नेत्र, बाल फैलाये वह बालकों को घूरती खड़ी थी। मधुमङ्गल एकदम डरकर चिल्ला पड़ा, 'कनूँ ! दाऊ !...'

'चुप !' वरूथप ने उसके मुखपर हाथ रख दिया। 'कन्हैया अभी-अभी तो अपने साथ घूमकर गया है। वह शय्या पर लेटा ही होगा। उसने अकेले इतने बड़े-बड़े राक्षस मारे हैं तो हम सब मिलकर इस राक्षसी को नहीं भगा सकते ? सुबल !'

'हाँ, हाँ, कन्हैया की क्या आवश्यकता है। इसे तो मैं ही मार दूँगा !' सुबल में उत्साह आ गया। वह चिल्लाया 'मारो !'

'मारो ! मारो !' बालकों ने अपने-अपने लकुट ऊपर किये और दौड़ पड़े। उन्होंने सोचा ही नहीं कि राक्षसी कितनी बड़ी, कितनी बलवती है। कन्हैया उनके जैसा ही तो है। वह जब इतने राक्षसों को अकेला मार सका तो वे इस समय इतने हैं।

'मारो ! मारो !' राक्षसी ने शतशः बालकण्ठों की ध्वनि सुनी और सैकड़ों लकुट उठे देखे ! वह पहिले से भयभीत थी। उसने पूतना, बकासुर आदि के बध की बातें सुनी थीं। वह श्रीकृष्ण को पहचानकर अकेले में धोखे से मारने आयी थी। इतने लड़कों को देखकर वह मार्ग में पहिले ही ठिठककर खड़ी हो गयी थी। इन गोपों के लड़कों में पता नहीं कितनी शक्ति है। नन्द के एक लड़के ने तो इतने दैत्यों को खेल-खेल में मार दिया और ये इतने लड़के दौड़े आ रहे हैं।' भागी वह। लड़के गाली देते दौड़े आ रहे थे।

'मारो ! मारो !' लड़कों ने देखा कि राक्षसी भाग रही है तो उनका उत्साह और बढ़ गया। वे दूने वेग से दौड़े।

'श्रीदाम ! घेरना तो आगे से ! भागने न पाये !' वरूथप ने ललकारा और सचमुच दोनों ओर की गलियों से सुबल और श्रीदाम कुछ सखाओं के साथ आगे बढ़ गये उसे रोकने के लिये। भय में बल, बुद्धि, विद्या सब हवा हो जाती है। राक्षसी अदृश्य हो सकती है। ऊपर उड़ सकती है। उसके पास आसुरी माया है। लेकिन वह इतनी भयातुर हो गयी है कि उससे वेगपूर्वक भागा भी नहीं जाता। उसे लगता है कि प्रत्येक बालक उसका काल है। इतने रूप धारण करके महाकाल उसके समीप आता जा रहा है।

'यही होलिका है ! जला दो इसे !' मधुमङ्गल सबसे पीछे आ रहा है। उसने ग्राम से बाहर एकत्रित समिधा-राशि दूर से देखी और उसे स्मरण हो आया कि राक्षस फिर जी जाते हैं। अवश्य प्रह्लाद को जलानेवाली होलिका उस काष्ठ-समूह से जीवित होकर निकल आयी है।

'इसी ने प्रह्लाद को जलाना चाहा था ! इसे जलाओ !' मधुमङ्गल दूसरी बार चिल्लाया। 'मैं अग्नि लाता हूँ ! भागने न पाये !' सचमुच वह पीछे पास के घर अग्नि लेने दौड़ पड़ा।

'हाँ, यही होलिका है ! हम इसे फूँक देंगे !' वरूथप ने पीछे देखा और उसकी समझ में भी बात आ गयी।

'जलाओ ! जलाओ इसे !' सब लड़कों ने समिधाओं की ढेरी से जितनी समिधाएँ उठायी जा सकती थीं, झपटकर उठायीं। राक्षसी ने देखा कि वह घिर गयी है। जिधर भागना चाहती है, उधर ही लड़के दिखायी पड़ते हैं। लड़कों ने उसे घेर लिया है। इतने में उस पर तड़-तड़ सूखी लकड़ियाँ फेंकी जाने लगीं। एक-दो नहीं, शतशः कर फेंक रहे हैं। राक्षसी चिल्ला रही है, रो रही है; पर बालकों के चिल्लाने में उसका स्वर डूब गया है। उस पर सूखे काष्ठ की ढेरी बढ़ती जा रही है। उसकी शक्ति पता नहीं क्या हो गयी। वह हिलने में भी असमर्थ है। देखते-देखते समिधाओं का पूरा पर्वत उसके ऊपर हो गया।

'कहाँ गयी होलिका ! फूँक दो उसे !' मधुमङ्गल अग्नि लेकर दौड़ता हुआ दूर से पुकारता आ रहा है।

'तू आ भी जल्दी ! हमने उसे इस ढेर में दबा दिया है !' सुबल ने संकेत किया ढेर की ओर और ढेर में अग्नि लगा दी गयी। लड़के कूदने लगे, उछलने लगे। राक्षसी को गाली देने लगे।

× × × ×

नन्दग्राम और बरसाने के गोपों ने देखा कि सीमापर अग्निज्वाला उठ रही है। सबने सोचा कि उन्हें विलम्ब हो गया है। यज्ञ प्रारम्भ हो गया। सब सामग्री लेकर दौड़े। कन्हैया दाऊ को लेकर अपना चन्दनदण्ड लिये दौड़ा।

'कनूँ, हमने होलिका फूँक दी ! अरे बड़ी भारी थी वह राक्षसी !' मधुमङ्गल ने पहले ही दौड़कर सुनाया।

'राक्षसी ! राक्षसी कहाँ से आयी ?' दाऊ ने चौंककर पूछा।

'हुँ, वह प्रह्लादजी को जलानेवाली होलिका लकड़ियों के ढेर से जी उठी और हमारे गाँव में आ रही थी। बड़ी भयंकर थी। हमने 'दारी' को लकड़ियों में दबाकर फिर से फूँक दिया !' सुबल ने पूरी बात समझाने का प्रयत्न किया।

'आज फिर राक्षसी आयी थी !' बाबा ने महर्षि शाण्डिल्य के पास जाकर बड़े शङ्कापूर्ण स्वर में सूचना दी।

'भय की कोई बात नहीं ! वह ढुण्ढा थी। बच्चों ने जला दिया उसे !' महर्षि के लिये जैसे कोई बात ही नहीं हुई। वे विप्रों के साथ मन्त्रपाठ करने लगे हैं। गोप अग्नि में सामग्री डालने लगे हैं।

× × × ×

'कनूँ ! कहीं वह राक्षसी फिर उस अग्नि से जीवित होकर भाग न गयी हो !' भद्र को यही एक धुन है। उसने सबेरे ही कन्हैया से कहा। प्रातः उठकर वह बिना कलेऊ किये ही भागने की धुन में है। सब बालक तनिक ही पीछे आये। सबको वही आशङ्का है।

'चलो, देख आयें !' कन्हैया को तो खेल का कोई बहाना चाहिये। रात्रि में सब बहुत देर तक होलिकोत्सव में जगते रहे हैं, फिर भी नित्य से पूर्व ही उठकर नन्दभवन आ गये हैं। मैया चाहती हैं कि श्याम कुछ देर तक विश्राम कर ले। वह तो कलेऊ किये बिना ही भाग गया। धूलि-वन्दन होता भी तो बिना खाये ही है।

अग्नि भला, कहीं इतनी शीघ्र शान्त होती है, फिर इतने बड़े यज्ञ की अग्नि। एक महीने तो यहाँ अग्निदेव विराजेंगे ही। बालकों ने लकड़ियों से उलट-पलटकर देख लिया कि राक्षसी के शरीर के चिह्न भस्म में बहुत नीचे कुछ-न-कुछ हैं। वह भाग नहीं सकी है। कल उन्होंने भरपेट राक्षसी को गालियाँ दी थीं। आज भी कुछ उठा नहीं रखना है।

उन्होंने किनारे-किनारे से भस्म ली और एक दूसरे पर मल दी। श्याम के सर्वाङ्ग में विभूति लग गयी। अलकें भस्म से पूर्ण हो गयीं। विचित्र छटा हो गयी है उसकी। सभी बालक भस्मभूषित हो गये हैं। अब उन्हें एक खेल सूझा है। उत्तरीय की झोलियाँ बनाकर उनमें भस्म भर ली उन्होंने और सब बरसाने की ओर चल पड़े।

व्रज में होली का रङ्गोत्सव तो मध्याह्नोत्तर होगा और खूब धूम से होगा; पर कन्हैया ने आज यह प्रातःकालीन भस्मोत्सव की धूम मचा रक्खी है। जो मिलता है, उसी के मुख पर एक मुट्ठी भस्म। मुट्ठियाँ डालती तो एक ही मुट्ठी हैं, पर वे हैं कितनी ? जब एक दल भस्म डाले तो दूसरे को भी कुछ ढूँढ़ना ही पड़ता है। भस्म के उत्तर में पानी में घुले गोबर का आविष्कार करने में कुमारियों को देर न लगी और झोली की भस्म समाप्त होने पर बालकों ने भी गोबर उठाया। बर-साने और फिर नन्दगाँव—घर-घर धूम हो गयी। राक्षसी ढुण्ढा को गालियाँ देते हुए बालकों ने यह विचित्र उत्सव कर लिया।

—❀⊂❀⊂❀—

प्रलम्ब का पाखण्ड

तमुद्वहन् धरणिधरेन्द्रगौरवं महासुरो विगतरयो निजं वपुः।
स आस्थितः पुरटपरिच्छदो बभौ तडिद्द्युमानुडुपतिवाडिवाम्बुदः॥

—भागवत १०।१८।२६

यह वृन्दावन है। इस ग्रीष्म ऋतु में भी यहाँ ऋतुराज वसन्त ही विहार कर रहे हैं। झिल्ली-झंकार होती होगी; परंतु ये 'कल-कल', 'हर-हर' करते निर्झर—इनके शब्द में क्या वह सुनायी पड़ सकती है। यहाँ के पादप नवकिसलयों से नित्य पल्लवित ही रहते हैं। लताओं का पुष्पभार नित्य उन्हें नमित ही रखता है। सरोवरों में, निर्झरप्रवाहों में, यमुनाजी में कह्लार, कंज, उत्पल (पूर्ण विकसित, अधखिले, विकासोन्मुख कमल) अपनी सुरभित पराग से वायु को सौरभमय ही रखते हैं। श्रीयमुनाजी में अगाध जल है। उनकी उत्तुङ्ग हिलोरें पुलिन के दोनों किनारों को सींचती ही रहती हैं। ग्रीष्म के मार्तण्ड का ताप यहाँ की शीतलता में शान्त-सुखद हो गया है। चण्डांशु की किरणें यहाँ जीवन को अलस करने के बदले उन्मुख, उत्फुल्ल करती हैं।

केहरी कहीं गुफाओं में विश्राम करे ग्रीष्म की दोपहरी में—यह तो जहाँ ग्रीष्म हो, वहाँ सम्भव है। वृन्दावन में तो वह व्याघ्र के साथ गर्जन करता हुआ मृगयूथ तथा बछड़ों के साथ खेलने का समय ही दिन में पाता है। मयूर पूँछ समेटकर डालियों पर या कोटरों में रात्रि में सो लेंगे, दिन में तो घनश्याम को देखकर वे थनगन-थनगन नाचते ही रहते हैं। भ्रमर और कोकिल भला, इस शीतल-मन्द-सुगन्धित वायु की उमंग में कहीं दुबके रह सकते हैं; वे गुंजार करने और कुहकने का उल्लसित भाव तो अभी प्राप्त करते हैं।

प्राण आ जाते हैं पत्ते-पत्ते और कण-कण में जब मुरली की ध्वनि गूँजती है। प्रातः जब श्याम दाऊ भैया के साथ शतशः सखाओं से घिरा हुआ हुंकार भरती गायों तथा चञ्चल बछड़ों को आगे करके नन्दगाँव से निकलता है, वनसीमा पर वनके सब एकत्र पशु-पक्षी ही उसका मार्ग नहीं देखते होते। वन का क्षुद्रतम कीट भी सीमा पर ही होता है। उस समय एक मधुमक्षिका, एक तितली वन में नहीं प्राप्त हो सकती। वृक्ष, वीरुध्, क्षुप, लतिकाएँ, गुल्म, तृण, पाषाण, निर्झर—यदि वे बोल पाते तो कहते कि किस अवश अवस्था की उन्हें अनुभूति होती है। यदि वे चल पाते—सब-के-सब सीमा पर भाग गये होते। धन्य हैं सीमा पर के पादप, जो प्रातः आते समय मुरली-मनोहर का प्रथम साक्षात् पाते हैं और सायं उसकी अन्तिम छटा देख लेते हैं।

आजकल श्यामसुन्दर की इस वनराजि में ग्रीष्म में भी ऋतुराज का राज्य है; अतएव वह नित्य उल्लसित रसराज भी उच्छलित ही रहता है। आते ही बालकों को शृङ्गार की सूझती है। कोमल लाल-लाल किसलय, बड़े-बड़े पुष्पगुच्छ और मयूर भी तो आजकल ही पंख गिराते हैं! यह सब देखकर भी शृङ्गार की न सूझे तो हो क्या। फूलों की मालाएँ बनती हैं। रंग-बिरंगे पुष्पों के गुच्छे कर्णपालियों को, भुजाओं को, कलाइयों को भूषित करते हैं। मयूर-पिच्छ तो बना-बनाया किरीट है और किसलय, गुच्छे, पुष्प—इनसे केश-शृङ्गार चाहे जैसा सम्पन्न हो सकता है।

श्याम स्वयं पिच्छ एकत्र करता है। बालक पिच्छों के लिये यहाँ-से-वहाँ वृक्षों के नीचे दौड़ते हैं, धूम करते हैं और फिर दाऊ को दिखलाते हैं कि किसने कितने मयूरपंख पाये। कन्हैया पुष्प, गुच्छे, पल्लव तोड़ता है। सखाओं का शृङ्गार जो करना रहता है उसे। दाऊ भैया का शृङ्गार तो श्याम के साथ सभी करना चाहेंगे; परंतु श्रीदाम का, सुबल का और सब सखाओं का शृङ्गार—पता नहीं कन्हैया कैसे यह कर लेता है। किसी के मयूर-पिच्छ खोंस देगा, किसी के कानों पर

किसलय रख देगा और किसी के बाहु में गुच्छे लटका देगा। सबको कुछ-न-कुछ सजायेगा अवश्य। दाऊ भैया को भद्र का शृङ्गार ही करना रहता है। भैया न सजायें तो वह कनूँ को छोड़ दूसरों को कुछ करने जो नहीं देगा। दाऊ को भी अपनी कला दिखलानी रहती है। कन्हैया तो चञ्चल है। वह सजाता सबको है, पर सब उसकी साज-सज्जा से दूर ही भागते हैं। किसी के गुच्छे लटकायेगा तो बेडौल; पिच्छ खोंसेगा तो टेढ़ा, किसलय रक्खेगा तो उलटा और फिर चिढ़ायेगा ऊपर से।

चाक, गेरू, रामरज—इनकी बारी आती है पुष्पशृङ्गार हो जाने पर। श्याम को इनसे चित्र बनाने में आनन्द आता है। उसके बनाये चित्र होते भी बड़े सुन्दर हैं; परंतु वह ठिकाने से बनाता जो नहीं। लँगड़ा मृग, काना शशक, बड़ा बछड़ा, एक पैर की चिड़िया, एक पंख टूटी तितली या फिर चींटी, साँप, कीड़े—यही सब बनायेगा और सब सखाओं के ऊपर कोई-न-कोई चित्र बनाये बिना रहेगा नहीं। स्वयं उसे तो बालक चित्रमन्दिर बना ही देते हैं।

कन्हैया नाचता है तो मयूर भी लज्जित हो जाते हैं। वह 'ताथेइ, ताथेइ, ताता थेइ-थेइ' का उसका नृत्य—कोई गाता है, कोई ताल देता है, कोई शृङ्ग बजाने लगता है और कुछ प्रशंसा करते हैं। कभी दोनों हाथ फैलाकर सब घूमते हैं—चक्कर खाते हैं, कभी कूदते हैं और कभी परस्पर मल्लयुद्ध करते हैं।

श्याम की मुरली के स्वरों पर तो पशु-पक्षी तक नाचने लगते हैं। वह वंशी बजाये तो कौन नाचना नहीं चाहेगा। साथ ही जब दाऊ भैया प्रशंसा करने लगते हैं और कन्हैया गाने और ताल भी देने लगता है, तब बालकों का नृत्य कला की पराकाष्ठा पर स्वतः पहुँच जाता है।

बिल्वफल कन्दुक बन जाते हैं। निर्झर के किनारे की स्निग्ध मृत्तिका से खिलौने और बर्तन बनाये जाते हैं। दोनों हाथों में गुञ्जा या आँवले छिपाकर उनकी संख्या पूछने पर दाऊ भैया प्रायः ठीक-ठीक बतला पाते हैं। भद्र और सुबल भी कदाचित् ही भूलते हैं। कन्हैया कभी ठीक संख्या नहीं बताता और मधुमङ्गल तो पूरा पोंगा है। वह दस-पाँच संख्याएँ एक ही स्वर में बोल जायगा। जो न बता पाये, उसके नेत्र बाँध दिये जाते हैं। श्याम सदा से नटखट है। वही प्रायः संख्या बता नहीं पाता और फिर झगड़ता भी है कि संख्या उसी की ठीक थी। कूदता भी सबसे पहिले संख्या बतलाने है। पूछनेवाले तो चाहते हैं कि वह पीछे बताये। कोई भूल कर ले तो शेष को बताना ही न पड़े; पर वह तो दाऊ भैया के बताते ही झगड़ने लगता है कि पीछे क्यों रहे। भूल करेगा ही और नेत्र भी बँधेंगे; परंतु वस्त्र हटाकर देखे बिना मानेगा भी नहीं। इसी पर तो श्रीदाम रूठता है। श्याम को भी सनक है कि वह छुयेगा तो श्रीदाम या मधुमङ्गल को ही। दूसरे चाहे उसके सिर को स्पर्श करके समीप ही खड़े रहें, उन्हें नहीं छुयेगा। कोई कहाँ तक सहे—मधुमङ्गल या श्रीदाम छू जायँ तो उन्हें नेत्र बँधवाने होंगे ही। वस्त्र हटाकर उन्हें देखे बिना यह कनूँ मानने से रहा। फिर झगड़ा तो करना ही है इसे।

दाऊ भैया किसी को अधिक श्रमित होते देखते हैं तो सम्मुख खड़े हो जाते हैं। उन्हें कोई छूना चाहता भी नहीं। वे नेत्र बँधवा लें तो सब भागेंगे भी खूब और प्रायः भद्र ही उनकी पकड़ में आयेगा। पता नहीं भद्र को क्या सुर्खाब के पर लगे हैं। कनूँ उसके नेत्र बँधते ही स्पर्श में आ जायगा। भद्र को कोई इसीलिये नहीं छूता कि उसके बाद कन्हैया का क्रम बँधा-बँधाया है। भद्र चाहे या न चाहे, यह बलात् उसके हाथ पकड़ लेगा और फिर वही नटखटपन और झगड़ा। दाऊ भैया ही मध्यस्थता करते हैं और श्याम उन्हीं की सुनता भी है।

हरिणों की भाँति उछलना, पक्षियों के समान बोलना, कोकिल को चिढ़ाना, बंदरों के साथ वृक्षों पर चढ़ना, मेढ़कों के साथ बैठकर कूदना, प्रतिध्वनि को चिढ़ाना, लताओं को बाँधकर झूला झूलना, पता नहीं कितने खेल हैं। तैरते हुए जल उछालना, पुष्पों का एक दूसरे के ऊपर फेंकना, डूबकर दूसरे को छूना—यह तो स्नान के समय होता ही है। पर्वत के सपाट तिरछे भागों पर फिसलने और उच्च शिखरों पर दौड़कर चढ़ने का एक निराला ही रस है। कुञ्ज में आँखमिचौनी के

लिये सुविधा रहती है। इस प्रकार वन, सरोवर, गिरिराज, निर्झर—सब कृष्ण की क्रीड़ाभूमि ही तो हैं। बालकों के खेल सब कहीं चलते हैं।

× × × ×

श्रीकृष्ण को तो एक नवीन साथी पाने की सदा धुन रहती है। किसीको मित्र बनाते समय वह कभी नहीं देखता कि उसका रूप-रङ्ग, शील-स्वभाव कैसा है। कोई मित्रता करना चाहे तो वह पहले से प्रस्तुत रहता है। बालक खेल रहे थे, इतने में यह एक नवीन लड़का कहीं से आ गया। उसने आते ही कहा—'मुझे भी अपने साथ खेलने दोगे क्या ?'

'हाँ, हाँ, आओ !' कन्हैया पहले ही उसके पास पहुँच गया। मोटा-सा काला-काला लड़का बड़ा बलवान् लगता है। उसके सिर के बाल कुछ लालिमा लिये मोटे और रूखे हैं। नेत्र गोल-गोल भयङ्कर से। देखने में उसका वेश गोप-बालक-जैसा ही है; परंतु ऐसा बालक तो आस-पास कभी देखा नहीं। कोई गोप भी ऐसा कभी नन्दग्राम में नहीं आया कि उसकी आकृति से इसका अनुमान हो। बालकों को इस बालक का सङ्ग पता नहीं क्यों अच्छा नहीं लग रहा है। वे बालक, जो पशु-पक्षी तक से स्नेह करते हैं, पता नहीं क्यों इस नवीन बालक के आने से प्रसन्न नहीं हुए हैं। उनके मनमें इस नवीन लड़के के प्रति एक विचित्र तटस्थता तथा दूरता का भाव प्रबल हो रहा है। श्याम ने उसे मण्डली में लेकर साथ खेलने की अनुमति दे दी, इससे किसी ने विरोध नहीं किया; परंतु किसी में इतना उत्साह नहीं है कि उसका नाम-ग्राम भी पूछे। उससे परिचय करने को जी जो नहीं चाहता।

बालक तो बालक ही हैं। वे कहाँ कोई बात मनमें लिये फिरते हैं। श्रीकृष्ण ने एक नवीन सखा बढ़ा लिया, ठीक है। वे खेल में लगे थे, लगे रहे। कन्हैया ने देखा कि उसने जिसे मित्र-मण्डली में लिया है, उससे सब सखा दूर खिंचे से हैं तो स्वयं उसके साथ हो गया। उसे प्रोत्साहित करने के लिये खेल में उसकी सलाह लेने लगा। नवीन बालक की सलाह से एक खेल निश्चित हुआ। बालकों के दो दल हुए। एक ओर दाऊ भैया और दूसरी ओर वह नवीन बालक। देखने में वह दाऊ से तगड़ा ही दीखता है। श्रीकृष्ण और श्रीदाम की तो बनी-बनायी जोड़ी है। श्याम ने उस बालक के साथ रहना चाहा। श्रीदाम को भी दाऊ का साथ प्रिय है। इस प्रकार सब दो भागों में विभक्त हो गये।

दो दलों में चलनेवाले प्रतिद्वन्द्विता के खेल चलने लगे। 'खो-खो', कबड्डी आदि। निश्चय हुआ कि जो दल हार जायगा, वह विजयी दल के अपने प्रतिद्वन्दी को पीठ पर बैठाकर भाण्डीरवट तक ले जायगा। नवीन लड़का चाहे जितना मोटा हो, दाऊ की ओजस्विता कहाँ से लाये। श्याम का दल हार गया है। मोटे लड़के ने दाऊ को पीठपर बैठाया। श्रीदामा ने श्यामसुन्दर की पीठ पर चढ़ी कसी। भद्र ने उठाया वृषभ को। इस प्रकार सब पराजित दलके विजयी प्रतिद्वन्दी को पीठपर लेकर चले।

कोमल-कोमल हथेलियाँ, श्यामल घुटने—श्याम चल रहा है। श्रीदाम पीठपर बैठकर भी बार-बार अपने पैर भूमि पर लगा देता है। 'कहीं कन्हैया पर भार न पड़े।' वैसे वह भी दूसरों की भाँति सिर हिला-हिला कर कह रहा है—'चल रे घोड़े चल !' उसने सुबल का यह आग्रह अस्वीकार कर दिया कि कन्हैया के बदले वह सुबल की पीठपर बैठ जाय।

'चल, तुझे किसी गड्ढे में फेंकता हूँ ! छठी का दूध याद आ जायगा, हाँ !' कन्हैया भी कभी सीधे चल सकता है ? वह कभी पीठ हिलाकर श्रीदाम को झकझोर रहा है, कभी धप् से पेट पृथ्वी से लगा देता है और कभी फुदक पड़ता है। सब परिहास कर रहे हैं। उन्हें भाण्डीरवट तक ही तो जाना है।

'अरे, वह ले गया दाऊ को तो !' सुबल ने देखा कि नया लड़का बड़े सपाटे से भागा जा रहा है।

'वह तुम सबों-जैसा अड़ियल टट्टू नहीं !' एक की पीठपर मचकते हुए मणिभद्र ने कहा।

'पूरा गधे-जैसा है भी तो !' मधुमङ्गल झुँझला रहा है कि न वह श्याम के दल में सम्मिलित होता और न उसे इस प्रकार एक बालक को पीठ पर लादना पड़ता।

'हूँ, तेरे जैसा.....'

'अरे, वह तो भाण्डीरवट से आगे भागा जा रहा है ! दाऊ को कहाँ ले जायगा ?' भद्र ने मधुमङ्गल की पीठ पर बैठे बालक की बात पूरी होने नहीं दी। उसके मनमें उस मोटे बालक के प्रति आरम्भ से कुछ शङ्का है। अब तो वह चौंक गया और वृषभ की पीठ से लुढ़का खड़ा हो गया।

'कनूँ ! कनूँ !' मधुमङ्गल ने पीठ के बालक को लुढ़का दिया और उठ खड़ा हुआ। श्रीदाम ने आगे देखा और उस तनिक-सी असावधानी में कन्हैया ने उसे भी लुढ़का दिया। झगड़ने का अवसर नहीं, सब भागे आगे को।

× × × ×

प्रलम्ब—कंस ने भेजा है उसे। उसने सोचा था कि गोपकुमार के वेश में खेलते समय किसी बहाने वह श्रीकृष्ण को अकेले दूर कहीं ले जा सकेगा और तब वहाँ प्रयत्न करेगा, किसी कन्दरा में उन्हें बंद करने का।

'कहीं श्रीकृष्ण को आशङ्का हो जाय, वह मुझे मार डाले !' आरम्भ से ही उसके मनमें भय है। जब श्यामसुन्दर ने उसे अशङ्क भाव से अपने साथ खेलने की स्वतन्त्रता दे दी तो वह और भी भयभीत हो गया। उसने कन्हैया के पराक्रम की बात सुन रक्खी है। 'जो इतना निर्द्वन्द्व है, जो इतना निःशङ्क है, उसे धोखा नहीं दिया जा सकता।' उस असुर को पता है कि निर्भयता शक्ति से ही आती है। उसने समझ लिया कि श्रीकृष्ण के यहाँ उसकी दाल नहीं गलेगी। इतने पर भी किसी अवसर की प्रतीक्षा में था। जब श्याम ने खेलके सम्बन्ध में उससे सम्मति माँगी, तभी उसने अपना कार्यक्रम स्थिर कर लिया। छोटे भाई पर बस नहीं चलता तो बड़े भाई पर सही। उसने सोच लिया कि उसका दल हारेगा और वह दाऊ को पीठपर बैठाने में सफल होगा।

प्रलम्ब ने दाऊ को पीठपर बैठाया और बड़े वेग से भाण्डीरवट की ओर चला। जब वह वट से आगे बढ़ने लगा, तब दाऊ ने कहा—'बस, अब उतार दो !'

असुर दौड़ा ही जा रहा है। दाऊ का बार-बार का कहना उसे सुनना नहीं है। दाऊ समझ नहीं पा रहे हैं कि यह लड़का उन्हें कहाँ ले जा रहा है, उतारता क्यों नहीं। आरम्भ में उन्होंने समझा कि यह प्रकट करना चाहता है कि उसमें कितनी शक्ति है। वह कितनी दूर तक उन्हें ढो सकता है। अतः चुप हो गये। लेकिन उनकी परात्पर शक्ति योगमाया—अधीश्वर चाहे भावमुग्ध होकर नरनाट्य करें, पर वे भी क्या प्रमत्त हो सकती हैं। सहसा प्रलम्ब को लगा कि पीठ का भार बहुत अधिक बढ़ गया है। कटिदेश टूटा जा रहा है। गति निरुद्ध हो गयी है। अब इस रूप से आगे नहीं बढ़ा जा सकता। उसने अपना वास्तविक स्वरूप प्रकट कर दिया और फिर भागा।

जैसे काला अञ्जन का पर्वत उड़ा जा रहा हो ! दैत्य की पीठपर बलभद्र की शोभा—जैसे वे भी पृष्ठदेश के कोई स्वर्णाभरण हों। स्थिर विद्युत्-युक्त काले मेघ पर जैसे पूर्ण चन्द्रोदय हो गया हो। अनन्त नीलसमुद्र में जैसे बड़वानल प्रकट हो गया हो।

असुर के मस्तक पर प्रज्वलित अग्निशिखा के समान रत्नजटित स्वर्णमुकुट है। उसकी भुजाओं में सोने के अङ्गद हैं। उसने मस्तक घुमाकर पीठपर बैठे दाऊ की ओर एक बार देखा। उसके कानों के कुण्डल अग्नि के समान चञ्चल हो गये। प्रज्वलित अङ्गारों-जैसे नेत्र, भयंकर भ्रुकुटियाँ, बड़े-बड़े भयंकर मुख से बाहर निकले दाँत। दाऊ ने देखा कि यह दैत्य अब उन्हें लेकर आकाश-मार्ग से चलने लगा है। उसने भूमिपर दौड़ना छोड़ दिया है। एक बार तनिक से हिचके वे।

'अरे यह तो राक्षस है !' दूर से दौड़कर आते बालकों में से भद्र चिल्लाया।

'भैया, देखता क्या है ! मार एक घूसा !' कन्हैया ने ललकार दी। दैत्य भागा जा रहा है। उसे लगता है कि कहीं श्रीकृष्ण आ गये तो कुशल नहीं। दाऊ का भार ही उसे दबाये जा रहा है।

'हूँ !' दाऊ ने अपने छोटे भाई की ललकार सुनी। हिचक के चिह्न जो मुखपर आये थे, वे विद्युत्-गति से निकल गये। उन्होंने एकबार दौड़कर आते अपने अनुज की ओर देखा और फिर उस दैत्य की ओर। जैसे कोई शीघ्रता आवश्यक नहीं। यदि कन्हैया इस प्रकार दौड़ना न होता तो वे इस नवीन वाहन का कदाचित् थोड़ी देर आनन्द लेते; पर कनूँ जो दौड़ा आ रहा है। दाहिने हाथ की मुट्ठी कठोर हो गयी। तौलकर एक घूसा धर दिया दैत्य के मस्तक पर।

दाऊ का घूसा—जैसे पर्वत पर महेन्द्र ने वज्राघात किया हो। पक्षी चिल्लाकर उड़ने लगे। पशु चौंक पड़े। दिशाएँ शब्द से भर गयीं। बालक ठक्-से हो गये। घूसे के शब्द को प्राण छोड़ते दैत्य की चिग्घाड़ ने द्विगुणित कर दिया। दूसरे ही क्षण सबने देखा कि असुर पृथ्वी पर पड़ा है मुख के बल। उसका मस्तक चूर-चूर हो गया है। गिरने के वेग से दाँत टूट गये हैं। मुख से रक्तप्रवाह चल रहा है। दाऊ कूदकर अलग खड़े हैं। उनके दाहिने हाथ की मुट्ठी अभी बँधी है और रक्त से भर गयी है।

कन्हैया तो आते ही बड़े भाई से लिपट गया। सखाओं ने पहिले वह हाथ देखा जो रक्त से भरा है। उनको परम संतोष हुआ कि उसमें कोई आघात नहीं लगा है।

'मैं यह आया, तभी से चौंका था !' भद्र ने कहा।

'देखो न, दाऊ भैया को ले चला था ! इसे तो कनूँ ही मसल देता !' मधुमङ्गल इस प्रकार कह रहा है जैसे वह स्वयं तो कन्हैया से बहुत अधिक बलवान् है ही।

'भैया ने घूसा भी तो बढ़िया दिया !' वरूथप अभी उस घूसे के शब्द के विषय में ही सोच रहा है।

ऊपर गगन में दुन्दुभियाँ बजने लगी हैं। पुष्पवृष्टि हो रही है। गोप-बालक स्वयं दाऊ की प्रशंसा कर रहे हैं, उन्हें हृदय से लगा रहे हैं। गायें सब दौड़ आयी हैं और उनके साथ वन-पशु भी। पक्षियों ने उड़ते हुए ऊपर वितान बना दिया है। सब देख लेना चाहते हैं कि क्या हुआ। बछड़े पहले ही कूदकर समीप आ गये हैं।

'अरे क्या हुआ है तुम सबको ?' प्रत्येक गाय, प्रत्येक बछड़ा, प्रत्येक मृग तथा सिंह, व्याघ्र तक दाऊ को सूँघकर देख लेना चाहते हैं कि वे प्रसन्न तो हैं। दाऊ ने किसी को पुचकारा, किसी पर हाथ फेरा, किसी को थपकी दी।

'चलो, स्नान करो ! तुम सबने असुर का स्पर्श किया है और दाऊ भैया के हाथ में लगा उसका रक्त लगा लिया है सो ऊपर से। स्नान करके श्रद्धा हो तो ब्राह्मण को दक्षिणा भी दे देना !' मधुमङ्गल ने बड़ी गम्भीर मुद्रा बनाकर इस प्रकार कहा, जैसे वह सचमुच धर्माचार्य हो गया है।

'जी, पण्डित जी !' दाऊ भैया ने दोनों हाथ हँसते हुए जोड़ लिये। सब बालक खिलखिलाकर हँस पड़े। मधुमङ्गल लज्जित हो गया। वह दाऊ से उपहास करने तो चला नहीं था।

'मैं तो स्नान करूँगा, तुम सब मत आओ !' वह निर्झर की ओर मुड़ चला। स्नान तो सभी को करना है। मध्याह्न हो भी गया है, परंतु इतनी सरलता से क्या इन सबों से पीछा छुड़ाया जा सकता है। मधुमङ्गल पकड़ लिया गया और सब साथ ही जल-स्रोतपर पहुँचे।

—:❀-❀-❀-❀:—

दावानल-पान

नूनं त्वद्बान्धवाः कृष्ण न चार्हन्त्यवसीदितुम्।
वयं हि सर्वधर्मज्ञ त्वन्नाथास्त्वत्परायणाः॥

—भागवत १०।१९।१०

मध्याह्न का समय—बालक बड़ी देर तक जल-क्रीड़ा करते रहे। स्नान समाप्त करके उन्होंने अपने-अपने छीके वृक्षों की डालियों से उतारे। उनके छीके बंदर या पक्षी छेड़ेंगे, इसका तो कोई भय ही नहीं है। कन्हैया के कलेऊ से पूर्व तो कपि और पक्षी वन्य तरुओं के भी पके फल नहीं छूते—वे भला, छीके स्पर्श करेंगे! गोप-कुमारों ने पत्ते, पाषाण, दल आदि के पात्र बनाये और अपने छीके पास में रखकर भोजन परस लिया। राम-श्याम उन बालकों से घिरे मध्य में विराजे। दाऊ भैया के सम्मुख भद्र ने कमल का पत्ता रख दिया और कन्हैया तो बायीं हथेली पर एक ग्रास रखकर संतुष्ट हो जाता है। उसे तो दूसरों के हाथ से ही भोजन करने में आनन्द आता है। वह घर से अब छीका लाता ही नहीं। भद्र के छीके में ही मैया दोनों का भोजन भर देती है और यह निश्चित है कि भद्र को दाऊ भैया अपने साथ भोजन करायेंगे; क्योंकि श्याम भद्र के पूरे छीके को अपना बता-कर उसपर अधिकार कर लेगा और पदार्थ दूसरों को वितरित कर देगा। श्रीदाम की भाँति भद्र इस कन्हैया से झगड़ जो नहीं सकता। वह चुपचाप छीका छोड़ देगा और दाऊ भैया के साथ तो सबका भाग है। जो चाहे, वहाँ बैठ जाय। भद्र को वहीं सुविधा मिलती है।

बड़ी देर तक भोजन होता रहा। गायें-भैंसें वृक्षों के नीचे बैठी रोमन्थ कर रही हैं। मध्याह्न में अलस भाव से बछड़े भी माताओं के समीप बैठ गये हैं और ऊँघने लगे हैं। बकरियों ने भी चरना समाप्त कर लिया है और वे भी एकत्र होकर कुछ बैठी और कुछ खड़ी-खड़ी ही सोने लगी हैं। मध्य में तनिक-तनिक कान-पूँछ हिलाने भर की गति पशुओं में रह गयी है। वातावरण शान्त हो गया है।

सब शान्त हो जायँ, पर कहीं बंदर और बालक भी शान्त हुए हैं। बालकों ने देखा कि अपने पशु तो बैठ गये हैं तो उधर से पूर्णतः निश्चिन्त हो गये। उनकी क्रीड़ा में जो मध्य में गायों का ध्यान आ जाता था, वह भी नहीं रहा। वे खेल में लगे और फिर समय का क्या पता लगना है। बकरियों ने एक-एक कर मुख चलाना प्रारम्भ किया। बछड़े उठ खड़े हुए। उन्होंने सिरों से हिला-डुलाकर माताओं को उठाया और दूध पिया। उनकी उछल-कूद देखकर भैंसों के बच्चे भी उठे और तब भैंसों को भी उठना पड़ा। पशु चरने लगे। वे चरते हुए आगे बढ़ते गये—बढ़ते ही गये और दूर निकल गये। बालक अपनी क्रीड़ा में मस्त हैं, उन्हें इन सब बातों का कुछ पता नहीं लगा।

'सुबल, अरे अपनी गायें कहाँ गयीं?' मधुमङ्गल इस कन्हैया से सदा तंग रहता है। अन्ततः चिढ़ाने और चुटिया खींचने की भी एक सीमा होती है। वह छुड़ाकर एक ओर भाग निकला और सहसा उसे स्मरण आया—'गायें तो यहीं बैठी थीं।' यहाँ गोबर स्थान-स्थान पर पड़ा है; पर गायों का पता नहीं। उसने इधर-उधर देख लिया और जब किसी पशु का कहीं चिह्न न मिला तो बड़बड़ाया—'अच्छा हुआ जो मैं इधर आ गया!'

'गायें!' सब के सब चौंके। जो जहाँ जैसे थे, वैसे ही रह गये। जो वृक्षों पर चढ़े थे, वे और ऊपर जाकर इधर-उधर देखने लगे। नीचे सब खेल जहाँ-के-तहाँ समाप्त हो गये। वृक्ष पर चढ़े

बालकों ने बताया कि गायें तो दीखती ही नहीं। कुछ और लड़के वृक्षों पर चढ़ने दौड़े। कन्हैया ने मुख से शृङ्ग लगाया और फूँक दिया। 'कनूँ की बुद्धि है तो तीव्र। वह युक्ति बड़ी सुन्दर सोच लेता है।' सबने अपने-अपने शृङ्ग बजाने प्रारम्भ किये। वनप्रान्त गूँज गया। जो बालक वृक्ष पर चढ़े हैं, वे वहीं से चारों ओर डाली पकड़कर सिर घुमाते हुए शृङ्ग बजा रहे हैं और देख भी रहे हैं।

शतशः शृङ्ग—यद्यपि उन्हें बालक ही बजा रहे हैं और प्रत्येक शृङ्ग की ध्वनि कोमल है, पर संख्या भी तो कोई वस्तु होती है। वन का कोना-कोना गूँज गया। गायों ने, पशुओं ने उन्हें सुना—पर वे करें क्या? वे तो सब पता नहीं कब से हुंकार करके अपने रक्षकों को पुकार रही हैं। शृङ्गनाद सुनकर उन्होंने पूँछें और कान उठा लिये तथा और वेग से हुंकारें भरनी प्रारम्भ कीं। उन्हें क्या पता था कि ऐसी विपत्ति भी होती है। सब पशु चरते दूर आ गये थे, उन्होंने देखा—सम्मुख ऊँचे हरे-हरे तृणों का समुद्र-सा लहरा रहा है। वे उधर ही चले आये। यह तृण तो चरने योग्य था नहीं, परंतु कुछ दूर तक उसके मध्य में अच्छे तृण भी मिले। कुछ दूर पशु तृण ढूँढ़ते निकल गये। उनमें यही सोचने की शक्ति होती कि यहाँ तृण नहीं हैं तो पीछे लौट चलो—तो वे पशु क्यों कहलाते। तृण नहीं मिले तो मुख उठाया और आगे बढ़ते गये। सहसा सबने कान खड़े किये। वायु उष्ण चलने लगा था। पशुओं को दावाग्नि का पता पहिले लगता है। वे हुंकार करते जिधर ठीक लगा, दौड़ पड़े।

गायें, भैंसें, बकरियाँ, बछड़े—सब भाग रहे हैं। वे जिधर जाते, उधर ही कुछ आगे जाने पर लगता है कि आगे अग्नि लगी है। इधर-से-उधर वे पूरी शक्ति से दौड़ रहे हैं। मूँजों का यह वन खूब घना है। मूँजों के झुरमुट वृक्षों के समान ऊँचे हैं। आगे कुछ दिखायी नहीं पड़ता। दौड़ने में भी बड़ी कठिनाई है। मूँजों का रौंदते हुए पशुओं को बड़ा श्रम पड़ रहा है। उन्हें प्यास लग गयी और बढ़ती गयी। वायु में उष्णता के साथ उनकी व्याकुलता भी बढ़ती गयी। शृङ्गों की ध्वनि से एक सान्त्वना मिली, पर प्रयत्न करके भी वे उस दिशा में निकल नहीं सके। मार्ग भूल चुका था। उनकी हुंकारें शृङ्गनाद-सी तो हैं नहीं कि बालक उसे सुन लेंगे। प्यास, प्राण छोड़कर दौड़ना—उनकी हुंकारें शिथिल होती गयीं।

'भैया, अपने पशु कहीं भी समीप नहीं हैं!' श्याम ने शृङ्ग मुखसे हटा लिया। वह दाऊ की ओर देखने लगा और उसका नित्य-प्रसन्न मुख उदास हो गया। बालक पेड़ों से उतर आये। सब एकत्र हो गये।

'कनूँ!' दाऊ ने अपने छोटे भाई को हृदय से लगा लिया। उनका कण्ठ भर आया। नेत्र सजल हो गये।

'बाबा क्या कहेंगे?' मधुमङ्गल सिसककर रोने लगा।

'वे लोग तो कुछ नहीं कहेंगे!' दाऊ भैया ने बिना किसी की ओर देखे कहा। श्याम ने उनके वक्ष पर मुख छिपा लिया है और वे उसके मस्तक की ओर ही देख रहे हैं। जैसे वे कहते हों कि इस आपत्ति से रक्षा यह मयूर-मुकुटी ही कर सकता है। कन्हैया की कुटिल अलकों पर दाऊ के अश्रु हीरक-कणों-से झलमल करते बढ़ते जा रहे हैं।

'हाँ, सब पशु खो दिये और कोई कुछ नहीं कहेगा!' मधुमङ्गल हिचकियाँ लेने लगा। फूट-फूट कर रोने की शक्ति भी किसी में नहीं रही।

'वे तो कुछ भी नहीं कहेंगे; परंतु व्रज का जीवन ये पशु ही तो हैं!' दाऊ भैया का गम्भीर कण्ठ आगे नहीं चला। जो कहा गया है, वह क्या कम भयंकर बात है। गायें व्रज की आजीविका ही नहीं, आराध्य हैं। स्वजन हैं। प्राण हैं।

'हमारी, तुम्हारी, बाबा की, सारे व्रज की पालिका, रक्षिका, ये गायें ही हैं! और अब....' कन्हैया ने एक बार सखाओं की ओर मुख फेरा। वह इतना ही कह सका। बड़े भाई के कण्ठ के समीप उसने पुनः मुख छिपा लिया।

'कन्हैया के कमलदल-से नेत्र लाल-लाल हो गये हैं। उसका चन्द्रमुख अश्रु से आर्द्र हो गया है।' सखाओं ने एक क्षण में ही यह देख लिया। 'अब वह हिचकियाँ लेने लगा है। तभी तो उसका शरीर इस प्रकार हिलने लगा है।'

'व्रज की आजीविका ये पशु ही थे। व्रज की यह समृद्धि, जिस पर महेन्द्र को भी ईर्ष्या हो, इन गौओं की कृपा का ही परिणाम है। पूरा व्रज कंगाल हो गया। अब क्या होगा? दान लिया नहीं जा सकता, भिक्षा माँगी नहीं जा सकती। कृषि के लिये वृषभ चाहिये और वे भी गायों के साथ ही गये। तब क्या सेवा करनी होगी पूरे व्रज को किसी की? व्रजेश्वर, बरसाने के अधिपति, नन्दगाँव और बरसाने के गोप—गोप ही क्यों—गोपियाँ—मैया—आह, क्या ये किसी की सेवा करते दीखेंगे अब?' गायें—क्या अब गोप प्रातः गोमाता के दर्शन नहीं पायेंगे? गो-ग्रास दिये बिना क्या कदन्नभोजी बनेंगे वे? गोप और गायों से हीन—प्राण से हीन शरीर और क्या होगा।' पता नहीं कनूँ दाऊ और बालक क्या-क्या सोच रहे हैं। वे रो रहे हैं और हतप्रभ हो गये हैं, बाहर तो बस इतना ही।

'कनूँ!' भद्र ने कन्हैया के कंधों पर हाथ रक्खा। वह श्याम को इस प्रकार रोता नहीं देख सकेगा। इससे तो मर जाना भी सरल है। उसकी पुकार का क्या प्रभाव होना है; परंतु वह कहता जा रहा है—'कनूँ, तू इस प्रकार रो मत! मैं गायें ढूँढ़ने जाता हूँ और उनका पता लगाकर ही लौटूँगा!'

'गायें पास होतीं तो शृङ्गनाद से क्या हुंकार तक न करतीं!' भद्र के स्वर की दृढ़ता ने श्याम को प्रभावित किया। उसने मुख घुमाकर उसकी ओर देखा।

'तू बस रो मत!' भद्र ने उन भरे हुए दीर्घ दृगों को अपने पटुके से पोंछ दिया। 'वे दूर ही तो गयी हैं। चाहे जितनी दूर गयी हों, मैं गोकुल तक उन्हें ढूँढ़ने जाऊँगा!

'तू कैसे उनका मार्ग पायेगा?' भद्र का स्वर कह रहा है कि वह सचमुच, चाहे जहाँ तक जाना हो, गायों को ढूँढ़ने जायगा—अवश्य जायगा; कोई शक्ति उसे रोक नहीं सकती! उसका कनूँ रो रहा है, वह जा क्यों नहीं सकेगा। कन्हैया को भी शङ्का नहीं हुई कि भद्र गायों के पास तक नहीं जा सकेगा। वह किधर जायगा, यही पूछना था।

'मार्ग कैसे पाऊँगा?' भद्र ने यह बात सोची ही नहीं है अब तक; परंतु उसे गायों के पीछे जाना है, उन्हें ढूँढ़ लाना है—अवश्य ढूँढ़ लायेगा वह। उसका श्याम रो रहा है—तब उसके मस्तिष्क को काम करना ही चाहिये। उसने नीचे मस्तक झुकाया। 'कैसे जाऊँगा? देख! यह गाय के खुर का चिह्न है!'

'हूँ, जैसे सब कहीं खुरों के चिह्न बनते ही हैं!' रोते-रोते मधुमङ्गल ने भद्र का विरोध किया। इतनी सरलता से गायें ढूँढ़ी जा सकतीं तो क्या वह इतना बुद्धू है कि अब तक खड़ा रहता।

'यह चिह्न में एक तिनका कुचल गया है!' भद्र—उसका मस्तिष्क जाग्रत् हो गया है। भगवती सरस्वती उसके मस्तिष्क में अपने उज्ज्वल हंस से कूदकर आ बिराजी हैं। उसका कनूँ रो रहा है—उसे कोई बाधा इस समय बाधित नहीं कर सकेगी।

'लेकिन गायें कहाँ गयीं? कंस उन्हें अपने यहाँ ले गया हो? कोई असुर अकेली पाकर···!' सुबल की आशङ्का व्यर्थ नहीं है। यही शङ्का सबको व्यथित कर रही है। कहीं कंस ने व्रज को नष्ट करने की यह युक्ति न की हो।

'कोई ले गया हो—वह असुर हो या असुर का बाप, मैं उसके पास जाऊँगा, उससे कहूँगा कि मेरे पशु लौटा दो, चाहे मुझे मार ही डालो! यदि किसी असुर ने उन्हें अपने उदर में पहुँचा दिया हो तो मैं उसका पेट फाड़कर पशुओं को लाऊँगा! कनूँ, बस तू रो मत! मैं यह चला!' भद्र

ने फिर कन्हैया के नेत्र पोंछे। उसके नेत्रों के अश्रु कबके सूख चुके हैं। वह पृथ्वी की ओर देखता एक ओर चल पड़ा।

'मैं तेरे साथ आऊँगा !' कन्हाई ने भी नेत्र पोंछ लिये।

'चलो, हम सब चलेंगे !' दाऊ भैया का स्वर अब भी गम्भीर है। यद्यपि उसने पटुके से मुख पोंछ लिया है और अब कोई भी रो नहीं रहा है; फिर भी दाऊ के दृगों में चिन्ता ज्यों-की-त्यों है। भद्र की गति में आज सब को दौड़ना पड़ रहा है। आज पता नहीं उसने किसके प्राण प्राप्त कर लिये हैं।

'यह दूर्वा कुचली है। पिछला भाग तृण का कुचलने से कुछ बचा है, अगला भाग पूरा कुचल गया है। आगे जाते समय खुर अगले भाग पर पूरे पड़े हैं। यहाँ इस शाल तरु में धर्म (वृषभ) ने अपना शरीर रगड़ा है। ये वृक्ष की छाल में कुछ रोम लगे हैं। रोम का मुख हमारी ओर है। यह बतलाता है कि पशु आगे गये हैं ! उस झाड़ी की पत्तियाँ कुछ नुची हैं। बकरियों ने उस पर मुख मारा होगा। ये कंकड़ अपने स्थान से उखड़कर इधर आगे उछल आये हैं। खुरों की ठोकर लगी है इन्हें। वह पड़ा है गोबर। यहाँ की भूमि गोमूत्र से पवित्र हुई है।' भद्र आज किसी आखेट-विशेषज्ञ की अपेक्षा भी तीव्रता से पशुओं की गति के चिह्न पहचान रहा है। इतने वेग से चलते हुए उसके नेत्र यह सब कैसे देख लेते हैं, यह आश्चर्य की ही बात है। दूसरे बालक भी कुछ नवीन चिह्न पाने के प्रयत्न में मार्ग को ध्यान से, उत्सुकता से देख रहे हैं—परंतु आज भद्र की अग्र-गति स्पर्धा से परे है। दाऊ और कन्हैया उसका अनुमोदन करते जा रहे हैं चुपचाप।

'अब ?' भद्र के पीछे सब दूर तक मूँजों के वन में आ गये हैं। ऊँचे-ऊँचे मूँज के झुरमुट ही हैं चारों ओर। उनके मध्य में पशुओं को देख पाना सहज नहीं। आगे वन रौंदा हुआ है। पशुओं के पदचिह्न किसी एक ओर नहीं हैं। अवश्य वे इसे रौंदते हुए इधर-से-उधर भागे हैं। भद्र सहसा खड़ा हो गया। इधर-उधर ध्यान से देखा। 'कनूँ, तू पुकार तो सही ! गायें कहीं पास ही होनी चाहिये !'

'पद्मा ! सुरभी ! कामदा ! कपिला ! कृष्णा ! धर्म ! आनन्द !' श्यामसुन्दर ने अपने जलद-गम्भीर स्वर में पुकारना प्रारम्भ किया और पुकारने का क्रम आनन्द-उल्लास के कारण तब और बढ़ गया, जब उत्तर में हर्षपूर्ण हुंकारें सुनायी देने लगीं। जैसे बालकों ने नवीन जन्म पाया हो, वे हर्ष से उछल पड़े।

श्याम पुकारता जा रहा है, अपने-अपने नाम सुनकर गायें या वृषभ हुंकार कर रहे हैं। दाऊ और भद्र श्याम को मध्य में करके उस घने मूँजों के झुरमुटों को हटाते ध्वनि का आधार लेकर बढ़ रहे हैं। बालक पीछे चल रहे हैं। दूर से पशुओं का शब्द सुनायी पड़ा, वे जैसे क्रन्दन कर रहे हों। कन्हैया ने लकुट में अपना पटुका उलझा कर ऊपर उठाया। एक ओर मूँजों का हरा सागर आन्दोलित हो उठा; सब पशु दौड़े, पूँछ उठाये, वन को रौंदते आ रहे हैं—आते जा रहे हैं। पशु तो पहले से प्यासे थे, बालक भी थक गये हैं। उन्हें प्यास लग गयी है। पशुओं को पाकर अवश्य ही वे उल्लसित हैं। सब शीघ्र वन में लौटने लगे। वहाँ मूँजों के वन में भला, जल का क्या काम।

बात क्या है ? कन्हैया के समीप आकर भी गायों को शान्ति क्यों नहीं मिल रही है ? 'हुम्मा, बाँ, म्याँ' सभी चिल्लाते ही जाते हैं। सबने बालकों को चारों ओर से घेर लिया है। बकरियाँ और बछड़े तक बालकों से पृथक् उनको घेर कर खड़े हो गये हैं। हाँकने पर भी टस-से-मस नहीं हो रहे हैं। सब चिल्ला रहे हैं और सब के कान खड़े हैं। सबके नेत्रों में भय है, पर भागने का नाम कोई नहीं लेता।

'अरे, तुम सबों ने हम लोगों को क्यों बंदी बना लिया है ?' दाऊ ने सम्मुख के वृषभ को हटाना चाहा। कन्हैया एक गाय को पुचकारकर आगे चलाने के प्रयत्न में लगा। व्यर्थ—न तो पशुओं का क्रन्दन बंद और न वे हटे।

'भैया, यह आँधी क्यों चल रही है ? इसमें इतनी उष्णता क्यों है ?' भद्र ने दाऊ की ओर देखा। पशुओं के कार्य में उसे कोई रहस्य ज्ञात हुआ।

'वह दूर आकाश में कुछ धुआँ-सा है न ?' सुबल ने एक ओर संकेत किया।

'धुआँ ?' सचमुच वे जिधर से आये हैं, उधर ही तो यह धुआँ है। अब तक तो और किसी ओर ध्यान गया ही नहीं था, अब सबने चारों ओर देखा—'हे भगवान्, चारों ओर धुआँ-ही-धुआँ उठ रहा है। वह दूर एक लपट-सी दृष्टि पड़ी। यह क्या ?' उन्हें क्या पता कि कंस के अनुचरों ने गायों को यहाँ पहुँचाया और फिर चारों ओर से वन में अग्नि लगा दी।

'दाऊ भैया ! हम सब मूँज के वन में खड़े हैं। यह तो दावाग्नि है। कितनी देर लगेगी इस मूँज में अग्नि फैलते। वह देख, वे लपटें अब स्पष्ट हो गयीं। हमें जिधर जाना है, उधर का मार्ग धुआँ उगल रहा है। चारों ओर से घिर गये हम। ये पशु—ये बिचारे और क्या करें, उनका घेरा बता रहा है कि पहले वे भस्म होंगे। इससे अधिक वे क्या कर सकते हैं ! राम, तेरा पराक्रम अपार है ! तू कोई उपाय कर !' भद्र ने भय-विह्वल स्वर में आग्रह किया। दाऊ क्या कहें ? क्या करें। अपने छोटे भाई की ओर देखकर केवल गम्भीरता से बोले 'कनूँ !'

बालकों ने देखा लपटें चारों ओर स्पष्ट हो गयी हैं। वायु का ताप अब असह्य होता जा रहा है। वे अत्यन्त भयातुर हो गये। सबने एक दम चिल्लाकर कहा—'कनूँ, बचा ले, भैया !'

'श्याम, तेरे स्वजनों को कष्ट नहीं ही होना चाहिये ! तेरे रहते यह अग्नि जला देगा—ऐसा कैसे हो सकता है ! हमारा नायक तो तू ही है ! बचा, भाई ! बचा ले ! तू बचा सकता है !' भद्र ने कन्हैया की ओर कातर नयनों से देखा।

'तुम सब अपने नेत्र बंद तो कर लो !' कन्हैया ने गम्भीरता से कहा। जब दाऊ भैया कहते हैं, सखा कहते हैं और यह भद्र भी कहता है तो अवश्य यह रक्षा करेगा। भैया ने उसे आज्ञा दी है तो करना ही पड़ेगा और यह भद्र कहता है न कि वह रक्षा कर सकता है; तब अवश्य कर सकता है। भद्र तो झूठ बोलता ही नहीं। श्याम ने कुछ नहीं सोचा। उसने जैसे किसी के कहलाने से कह दिया हो और नेत्र तो दाऊ तक ने बंद कर लिये हैं कहते ही।

अब—श्याम ने वाम हस्त से संकेत किया और मुख खोल दिया। जैसे यह आज्ञा है अग्निदेव को कि 'अब बहुत हो चुका, यह ध्वंस बंद करो ! चुपचाप आओ और जठराग्नि के रूप में यहीं भीतर जठर में स्थित रहो।' गायों ने, वृषभों ने, भैंसों ने, बछड़ों ने, बकरियों ने आश्चर्य से देखा कि नदी की धारा के समान लपटों की धारा कन्हैया के मुख में प्रवेश कर रही है। वह खड़ा है, शान्त, अचल। दो क्षण में वह धारा समाप्त हो गयी। दिशाएँ धूम्रहीन हो गयीं। वायु शीत-स्पर्श हो गया।

'पता नहीं ये सब क्या सोचेंगे ! सब थके हैं और प्यासे भी ! बहुत दूर तक है यह मुञ्ज-वन ! भाण्डीरवट सब पहुँच जायँ तो.... !' कहैन्या सोच रहा है और योगमाया—वे तो सदा आज्ञाकारिणी हैं।

'हैं—भाण्डीर ही तो है यह ! श्याम स्वयं ही चौंक पड़ा। उसे हँसी आयी सबको नेत्र बंद किये देखकर। धीरे से एक चपत मधुमङ्गल और एक श्रीदाम के सिरपर जड़ते हुए बोला—हाँ, देखो नेत्र खोलना मत ! बंद किये रहो !'

शीतल-मन्द वायु शरीर को लग रहा है। कन्हैया के स्वर में विनोद है। भद्र ने नेत्र खोल लिये। 'अरे, देखो तो—हम सब कहाँ आ गये हैं !' वह आश्चर्य से चिल्ला पड़ा।

सबने नेत्र खोल लिये। गायें, बछड़े आदि पहले ही निर्झर पर पहुँच गये हैं। भैंसें तो पानी में तैरने भी लगी हैं। बालक भी प्यासे हैं। सब जल की ओर दौड़ गये।

'श्याम, दावाग्नि क्या हुई ? हम सब यहाँ कैसे आये ? भद्र ने बड़ी सरलता से पूछा।

'तू तो स्वप्न देखा करता है !' कन्हैया कभी सीधी बात बतलाने से रहा।

'अवश्य यह कोई देवता है। इसने हमें आज बचा लिया !' वरूथप का स्वर आज भाव-स्निग्ध है।

'हाँ—मैं देवता हूँ, अब मुझसे झगड़ा मत किया कर ! अपना छीका चुपचाप मुझे दे दिया कर और सेवा—मेरी पूजा किया कर !' मुँह बनाकर कन्हैया हँस पड़ा।

'तू वरदान में अपने सब लड्डू मुझे दे दिया करे तो यही सही, मैं अक्षत-पत्ते चढ़ा दिया करूँगा !' हँसते हुए मधुमङ्गल ने एक पूरी किसलय-भरी टहनी तोड़ ली और मस्तक पर रखने बढ़ा। परिहास में गम्भीरता उड़ गयी। बालक गम्भीर रहें, तो बालक ही काहे के।

'भद्र, सायंकाल समीप है !' दाऊ ने सूचना दी। आज प्रातः से वन में झंझटें ही बढ़ रही हैं। पहले वह दुष्ट राक्षस (प्रलम्ब) आया और फिर यह थकान—चिन्ता। वन से शीघ्र लौटना चाहते हैं वे। शृङ्ग बजे, पशु एकत्र हो गये। कन्हैया ने मुरली अधर से लगायी और वे सदल-बल ग्राम की ओर चल पड़े।

—❀⊂❀⊂❀—

गोवर्धन-पूजन

आजीव्यैकतरं भावं यस्त्वन्यमुपजीवति।
न तस्माद् विन्दते क्षेमं जारं नार्यसती यथा॥

—भागवत १०।२४।१९

अभी कल सायंकाल मैया ने ग्राम से दक्षिण ओर यमराज के लिये दीपदान कराया है। आज रात्रि में महालक्ष्मी का पूजन होगा। गोपियों ने घरों को भरपूर सजाया है। आज नित्य का स्वच्छ व्रज जैसे पुनर्नवीन हो गया है। रात्रि में घृत-दीपकों की पंक्तियाँ जलेंगी। समस्त ग्राम दीपकों की ज्योति में जगमग-जगमग करेगा। नित्य के मणि-प्रदीप तो रहेंगे ही; परंतु दीपावली के शृङ्गार तो घृतदीप हैं न। मैया नित्य श्रीतुलसीजी के समीप, गोष्ठ में, दूर अश्वत्थमूल में, श्रीयमुना-जी के तट पर तथा गृह के प्रत्येक कोष्ठ में घृतदीप रखवा देती है। बिना घृतदीप के उन क्षेत्रों के अधिष्ठाता देवता कैसे तुष्ट होंगे; परंतु आज तो दीपकों की पंक्तियाँ लगेंगी। आँगन में छोटा-सा पर्वत लग गया है यमुनाजल से शीतल किये दीपकों का। सब दासियाँ वर्तिकाएँ बनाने में जुटी हैं। श्याम आज गो-चारण के लिये नहीं गया है। वह सखाओं के साथ घर पर ही है। आज के दिन मैया उसे कैसे वन में भेज दे। आज जो होता है, वर्ष भर वैसा होता ही रहता है। श्याम को आज आनन्द मनाना चाहिये।

गोपियाँ दीपोत्सव की प्रस्तुति में लगी हैं और गोप—वे और ही किसी साज-सज्जा में हैं। विविध प्रकार की समिधाएँ, घृतकुम्भ, यव, तिल, अक्षत, सुगन्धित ओषधियाँ और नाना प्रकार के फल—मिष्टान्न! यह सब क्या होगा? रात्रि की पूजा में तो इसकी आवश्यकता जान नहीं पड़ती। ये सामग्रियाँ घर से एकत्र करके ये गोप कहाँ जा रहे हैं? श्यामसुन्दर ने सखाओं को साथ लिया और यह देखने चला कि गोप क्या कर रहे हैं।

नन्दग्राम से बाहर गिरिराज गोवर्धन के समीप गोप सब सामग्री एकत्र कर रहे हैं। बरसाने और नन्दग्राम से बराबर लोग ढेर-की-ढेर वस्तुएँ ला रहे हैं। अवश्य ही कोई यज्ञ वहाँ होगा। श्यामसुन्दर अपने बड़े भाई और सखाओं के साथ वहीं खेलता रहा। उसे गोपों को इस प्रकार दौड़ते, सामग्री ढोते देखकर कुतूहल हो रहा है। नन्दबाबा आसन लगाये सब वस्तुओं का निरीक्षण कर रहे हैं। उन्हें आज ही यह सुयोग मिला है कि कृष्णचन्द्र अपने सखाओं के साथ इतनी देर उनके सम्मुख रहे। वह बार-बार उनके पास आता है, उनसे पूछता है—'यह क्या है? यह कहाँ से आया?' अनेक बार वे उसे गोद में बैठाकर पूरा उत्तर भी नहीं दे पाते कि सखाओं में से कोई पुकार लेता है और वह उनके मध्य भाग जाता है।

'भैया, महर्षि शाण्डिल्य तो आये नहीं! यहाँ तो अभी तक यज्ञकुण्ड भी नहीं बना। अबकी बार रात्रि में यज्ञ होगा क्या?' श्याम ने अपने बड़े भाई से पूछा। सायंकाल होनेवाला है, अतः दिन में यज्ञ होने के तो लक्षण हैं नहीं। रात्रि में कभी यज्ञ होते देखा नहीं है।

'मैया तो कहती थी कि यज्ञ रात्रि में नहीं होते।' दाऊ ने भी कौतूहल ही प्रकट किया।

'पिछले वर्ष भी तो ऐसा ही हुआ था!' भद्र ने कुछ सोचकर बताया। दीपावली के दूसरे दिन इन्द्र का यज्ञ तुझे स्मरण नहीं है क्या?'

'हूँ—तो कल भी अपनी गायें चरने नहीं जायँगी!' कन्हैया ने मुख गम्भीर बना लिया। 'सुबल, देख न! अपनी गायें तो बिचारी गोष्ठ में प्रातः से हैं। बछड़ों को कूदने का अवकाश ही नहीं मिला। कल भी सब चरने नहीं जायँगी। यह इन्द्र बड़ा देवता बना है, मैया कहती थी और महर्षि शाण्डिल्य ने भी कहा था कि व्रज के लिये सबसे महान् देवता गौएँ हैं। गायें तो चरने नहीं

जा पातीं और इन्द्र की पूजा होगी ! यह हमारी गायों से भी बड़ा हो गया जो उनका चरना बंद कराके अपनी पूजा करायेगा !'

'हाँ, गायें तो सबसे बड़ी देवता हैं; पर बाबा तो यज्ञ कराने में लगे हैं न !' दाऊ को भी छोटे भाई की बात जँच गयी।

'तब इस सब सामग्री से गायों की पूजा कर ली जाय !' श्रीकृष्णने मान लिया कि पूजा-सामग्री उसी को व्यय करनी है, चाहे जैसे करे।

'बाबा कहते थे—गायों को बहुत अन्न देने से वे रुग्ण होती हैं ! यहाँ तो सामग्री का पर्वत लग गया है अभी से !' मणिभद्र ने बात ठीक कही। इतना और कि इनमें से सब सामग्री गायों के लिये उपभोग्य भी नहीं है।

'इस सामग्री के पवत से हमारे गिरिराज की भी तो पूजा होगी !' कन्हैया को युक्ति सोचते क्या देर लगती है। वह तो मान चुका कि इन्द्र की पूजा नहीं होगी। श्रुति उसे सत्यसंकल्प कहती है। इन्द्र की पूजा तो गयी। हुआ करें महेन्द्र वैदिक देवता—अब लोक में उनका यह वार्षिक यज्ञ नहीं चलेगा। श्याम के संकल्प को तो सार्थक होना ही है।

'गिरिराज गोवर्धन की पूजा होगी !' स्वयं कन्हैया अपनी इस युक्ति से उत्फुल्ल हो उठा। सखाओं में भी उल्लास आया। भला, इतने बड़े देवता की पूजा कैसी अद्भुत लगेगी। मन्दिर की छोटी-सी मूर्ति और ये इतने बड़े विशाल गिरिराज। इतनी बड़ी देवमूर्ति—एक दिन के ही लिये सही—है तो बड़ी भव्य योजना।

योगमाया अनन्त अन्तरिक्ष में मुस्करा उठीं। जगत् के परमाराध्य श्रीकृष्ण व्रज में हैं और उनकी उपस्थिति में, उन्हीं के सम्मान्य जनों द्वारा की गयी पूजा देवराज गत सात वर्षों से बराबर स्वीकार करते आ रहे हैं ! यह धृष्टता क्षमा करने योग्य नहीं है। सुरेन्द्र का यह दर्प कि वे व्रज की पूजा ग्रहण करें, व्रजेन्द्र के पूज्य बनना चाहें ! उन्हें लोक से ही पूजा मिलना बंद होना चाहिये। आराध्य के संकेत के बिना यह कैसे हो। आज श्रीकृष्ण ने इच्छा की और योगमाया को अवकाश मिल गया महेन्द्र का दर्प शमन करने का।

× × × ×

'बाबा, यह सब किस समारोह के लिये है ? क्या फल होता है इस यज्ञ का ? क्या-क्या सामग्री इसमें लगती है ? महर्षि शाण्डिल्यजी ने कोई शास्त्रीय यज्ञ बताया है क्या ? या यह अपने कुल में सदा से होता आ रहा है ?' सायंकाल प्रायः सभी गोप एकत्र हो गये हैं। कुछ लोग सामग्री लाने में लगे हैं; पर कन्हैया कुछ पूछ रहा है, यह देखकर वे भी खड़े हो गये ! श्याम के मुख से उसके अटपटे तर्क भी कानों में अमृत सींचते हैं। सखा शान्त बैठ गये हैं आकर। बाबा ने समझ लिया कि कृष्णचन्द्र उनकी गोद में इस बार गम्भीरता से अपने प्रश्नों का उत्तर पाने के लिये बैठा है। एक साथ ढेरों प्रश्न कर देना तो उसका स्वभाव ही है।

'बताओ, बाबा ! मेरी बड़ी इच्छा है जानने की ! देखो, छिपाओ मत ! लाओ तुम्हारे हाथ दबा दूँ, पर बताओ ! मैया कहती है कि अच्छे मनुष्य कोई बात छिपाया नहीं करते ! बाबा, तुम तो सबसे अच्छे हो !' कन्हैया को सदा शीघ्रता रहती है। सभी बातों में शीघ्रता। बाबा सोचने लगे हैं कि कहीं यह देवराज के सम्बन्ध में कोई ऐसा प्रश्न न कर दे, जो देवता की मर्यादा के विरुद्ध हो। बालक से देवापराध न बन जाय, अतः वे उसे समझाने का ढंग सोचने लगे हैं। यह कुछ क्षण का विलम्ब श्याम कैसे सह ले।

'बात तो उससे छिपायी जाती है, जिससे शत्रुता हो जाय। यह मधुमङ्गल जब मुझसे लड़ाई कर लेता है, तो बोलता ही नहीं। बाबा तुम तो मुझसे ही छिपा रहे हो !' कन्हैया ने मुख बनाया रूठने का।

'कृष्ण, तू क्या करेगा यह सब जानकर ?' बाबा ने श्याम की ठुड्डी में हाथ लगाया और उसका मुख ऊपर करके पूछा।

'महर्षि शाण्डिल्य उस दिन कह रहे थे न कि कोई कर्म करना हो तो पहले उसका फल जान लेना चाहिये। फल न जानकर कर्म करने से फल गड़बड़ हो सकता है ! बाबा, तुमको इस

यज्ञ का फल ज्ञात न हो तो मत करो इसको !' बाबा के साथ सभी गोप हँस पड़े। श्यामसुन्दर कभी-कभी पूरा पण्डित बन जाता है।

'कृष्ण, देख ! यह जो वर्षा होती है, उसके देवता भगवान् इन्द्र हैं। ये बादल उनके शरीर के अंश हैं। इन मेघों से समस्त जीवों को पुष्ट करने और जीवन देनेवाले जल की वर्षा होती है। ये सब पदार्थ जल से ही बढ़ते हैं। हम लोग और संसार के दूसरे लोग भी वर्ष में एक दिन वर्षा करने वाले उस देवराज इन्द्र की पूजा उन्हीं के दिये जल से बढ़े पदार्थों से करते हैं। यह यज्ञ-सम्भार उन्हीं के लिये है। इस प्रकार उनका यज्ञ कर लेने पर जो पदार्थ बच रहेंगे, वे उनका प्रसाद बन जायँगे। उसी प्रसाद से हम सबका वर्षभर काम चलेगा। वर्षभर में हमलोग जो भी काम करेंगे, उसका फल भी देवराज ही हमें देते हैं। इसलिये भी उनकी आराधना करना हमारा कर्तव्य है। यह यज्ञ परम्परा से संसार में चला आ रहा है। जो मनुष्य पदार्थों के लोभ से, किसी विशेष कामना से या राजा अथवा किसी के भय से इसे छोड़ देता है, उसका कल्याण नहीं होता !' बाबा ने सरल रीति से समझाने का प्रयत्न किया।

'जीव तो अपने प्रारब्ध कर्म से उत्पन्न हुआ है। प्रारब्ध के अनुसार ही वह सुख दुःख, भय या कल्याण पाता है तथा प्रारब्ध ही उसकी मृत्यु का कारण है। कोई एक ईश्वर है तो सही; पर वह भी जीव को उसके कर्मों का ही फल देता है। बिना कर्म के वह भी कुछ देता नहीं। जब जीव को अपने कर्मों का ही फल पाना है, तब इन्द्र के द्वारा उनका क्या प्रयोजन सिद्ध होगा। प्रारब्ध से जो होना है, उसे पलट देने में तो इन्द्र असमर्थ ही हैं।' बाबा और गोप सोचने लगे; अवश्य ये बातें श्याम ने महर्षि शाण्डिल्य के उपदेशों से स्मरण कर ली हैं। इसकी बुद्धि बड़ी तीव्र है !

'मनुष्य कर्म के वश में है। अपने स्वभाव के अनुसार वह कर्म करता है। सब देवता, राक्षस, मनुष्य अपने स्वभावानुसार ही चेष्टा करते हैं। अपने कर्म के अनुसार ही जीव ऊँचे या नीचे शरीरों में जाता अथवा उन्हें छोड़ता है। उसे शत्रु, मित्र, उदासीन भी कर्म के अनुसार ही मिलते हैं। कर्म ही सबसे बड़ा है। वही ईश्वर है। अतएव अपने स्वभाव के अनुसार, अपने कर्म के द्वारा, उस कर्म के प्रेरक देवता की पूजा करनी चाहिये। जो जिसके द्वारा संसार में जीवन चलाता है, वही उसका देवता है। जो अपनी आजीविका के प्रेरक को छोड़कर दूसरे किसी के द्वारा जीवनोपार्जन करने का प्रयत्न करता है, वह उस दूसरे से कभी कल्याण प्राप्त नहीं कर सकता !' श्याम बोलता ही जा रहा है। दाऊ और सब सखा उसके मुख की ओर देख रहे हैं। उनका 'कनूँ' इतना बड़ा पण्डित है—यह तो सोचा ही नहीं था उन्होंने। इतनी बातें वह कहाँ से सीख गया। कन्हैया भी मानो सखाओं की कौतुकभरी दृष्टि से प्रोत्साहित हो रहा है। आज वह पूरा पाण्डित्य प्रकट कर देगा।

'शास्त्रों के द्वारा ब्राह्मण को जीविका चलानी चाहिये और पृथ्वी की रक्षा करके क्षत्रिय को। वैश्य व्यापार करके अपना जीवन-निर्वाह करे और शूद्र द्विजातियों की सेवा से, यह विधान है। इसमें वैश्य के लिये खेती, व्यापार और गो-सेवा तथा एक चौथी निन्दित वृत्ति सूद लेना भी है। इन चारों वृत्तियों में हम लोगों की वृत्ति गो-सेवा है। अतएव गायें ही हमारे जीवन का आधार हैं। हमारे लिये वे ही देवता—आराध्य हो सकती हैं।' अब सखाओं ने समझा कि कन्हैया ने इतनी लंबी भूमिका क्यों बनायी है। सचमुच उसने बात बड़े ढंग से कही। सबके नेत्रों में प्रशंसात्मक भाव व्यक्त हो गया।

'प्रकृति में तीन ही गुण हैं—सत्व, रज और तम। रजोगुण से सृष्टि, सत्वगुण से पालन तथा तमोगुण से प्रलय होता है। संसार की नाना प्रकार की सब सृष्टि रजोगुण से होती है। रजोगुण से प्रेरित होकर मेघ सब कहीं वर्षा करते हैं। उसी वर्षा से प्रजा का पालन होता है। इसमें भला, इन्द्र क्या कर लेंगे ? वर्षा के लिये इन्द्र की पूजा की तो कोई आवश्यकता ही नहीं है !' कृष्णचन्द्र अपनी बात इस ढंग से कहेगा, यह तो बाबा ने भी कहीं सोचा था।

'न तो हम लोगों का कोई बड़ा नगर है मथुरा-जैसा, न भीड़भाड़ से भरा जनपद है, न ठीक ग्राम ही इसे कह सकते और न हमारे घर ही कोई सौध हैं। हम सब तो वन-वासी हैं।

झोपड़ियों-जैसे भवन बनाकर वन या पर्वत पर रहते हैं। हमारी गायें वन और पर्वतों में ही पालित होती हैं। अतएव हमारे देवता तो ये गिरिराज और गायें ही हैं। साक्षात् देवता ब्राह्मण भी हैं ही। हम किसी अलक्ष्य देवता को क्यों पूजें, जब हमारे देवता साक्षात् उपस्थित हैं। अतएव गायों का, ब्राह्मणों का और इन गिरिराज का पूजन व्रज में आरम्भ होना चाहिये। इन्द्र के यज्ञ के लिये जो यह सामग्री एकत्र है, उसीसे यह यज्ञ किया जाय!' श्यामसुन्दर ने पूरी गम्भीरता से अपना प्रस्ताव उपस्थित किया।

दृष्टि सामग्रियों की ओर गयी। वहाँ हवनीय द्रव्य तो हैं, पर ब्राह्मणों और गौओं के लिये पर्याप्त पूजन-द्रव्य नहीं हैं। श्यामसुन्दर ने नूतन यज्ञ की सामग्री का निर्देश किया—'आज रात्रिभर नाना प्रकार के पकान्न बनाये जायँ। दीपावली है ही, अतः रात्रि में कोई सोयेगा नहीं। मालपुए, लड्डू, खीर, संयाव, पूड़ियाँ आदि सब प्रकार के पक्के व्यञ्जन बनें। व्रजके घरों में जितना भी दूध, दही, घृत हो, एकत्र कर लिया जाय। प्रातःकाल महर्षि शाण्डिल्य के नेतृत्व में सब ब्राह्मण भली प्रकार हवन करें! उनको अनेक प्रकार के व्यञ्जनों से तृप्त करके सब लोग गोदान करें। कुत्ते और चाण्डाल तक जितने भी प्राणी हैं, सबको उनके योग्य आहार से संतुष्ट किया जाय। अभी से गायों के लिये यवस (मूँग, उड़द, यव, गेहूँ आदि अन्न) भिगो दिया जाय। गायों को संतुष्ट करके तब गिरिराज की पूजा हो। कल सब लोग अच्छे-से-अच्छे वस्त्राभूषण धारण करें, अङ्गराग लगायें और सुन्दर-से-सुन्दर भोजन करें। हवन, ब्रह्मभोज, गो-पूजन, समस्त प्राणियों का पूजन तथा सह-भोज क्रमशः हो जाने पर गायों की, ब्राह्मणों की, अग्नि की और गिरिराज की प्रदक्षिणा की जाय!'

सखाओं ने देखा कि कन्हैया ने उत्सव तो धूमधाम का बताया। यज्ञ तो होगा ही; परंतु उसके साथ सहभोज, गिरिपूजन और प्रदक्षिणा का अपार आनन्द भी रहेगा। बाबा कुछ गम्भीरता से सोचने लगे। गोपों में से भी किसी ने तत्काल प्रतिवाद नहीं किया। कन्हैया ने केवल इन्द्र के निमित्त यज्ञ न हो, इतना ही मना किया है। वह हवन तो करने को कह ही रहा है। ब्राह्मण, गौएँ, गिरिराज—ये पूज्य हैं ही। इनकी पूजा और की जाय—यह उसका कहना उचित ही है।

'यह मेरी सम्मति है। यदि आप लोगों को ठीक लगे तो इसी प्रकार कल यज्ञ हो। यह गौ-ब्राह्मण तथा गिरिराज को प्रसन्न करने वाला यज्ञ होगा और मुझे भी यही प्रिय है!' उपसंहार हुआ प्रवचन का।

'हमें गायों, ब्राह्मणों और गिरिराज की प्रसन्नता को छोड़कर और क्या चाहिये! श्याम-सुन्दर ठीक तो कहता है!' एक युवक गोप ने बोलने की धृष्टता कर ली।

'और तो सब ठीक; पर देवराज...?' बाबा अपना संशोधन रखने जाकर भी नहीं रख पाये। श्रीकृष्ण कहीं रुष्ट होकर देवता के सम्मान के विपरीत न कुछ बोलने लगे।

'कृष्णचन्द्र जो कह रहा है, करना वही चाहिये! मैंने देखा है कि बोलते समय उसके मुख से एक दिव्य तेज प्रकट हो रहा है। हमारे आराध्य श्रीनारायण की ही प्रेरणा है यह। यदि आज श्याम की बात न मानी जाय और कल वह सखाओं के साथ कोई बालहठ कर बैठे तो.....।' उपनन्दजी ने बड़ी गम्भीरता से श्यामसुन्दर का समर्थन किया। भला, उपनन्दजी—इतने बड़े धर्मज्ञ कह रहे हैं तो बात तो माननी ही ठीक है।

'अनादि काल से चला आता यह इन्द्रयाग?' बाबा विचार करने लगे। योगमाया अन्त-रिक्ष में हँसी। बाबा का विचार एक क्षण में बदल गया। 'श्रीकृष्ण का ठिकाना क्या! वह यज्ञकाल में कोई हठ कर सकता है। तब विधिभङ्ग होने से यज्ञ करना भी व्यर्थ हो जायगा। बालक से देवा-पराध हो, इससे तो उसका अवसर न आने देना ही श्रेष्ठ है। गौ, ब्राह्मण, गिरिराज का पूजन, हवन तो होगा ही।' बाबा ने मन-ही-मन सोचा और स्वीकृति दे दी।

'गिरिराज का पूजन होगा!' कन्हैया बाबा के निर्णय को सुनते ही ताली बजाते हुए कूदने लगा। सखाओं के साथ वह मैया को यह संवाद सुनाने दौड़ा।

'देखो न, श्रीकृष्ण कितना प्रसन्न है !' संनन्द ने कूदते, हसते जाते बालकों की ओर दृष्टि जमाये हुए ही कहा। 'हमें तो यज्ञ का फल इसकी प्रसन्नता से ही मिल गया।'

नन्दबाबा और सभी गोप उधर ही देख रहे हैं। जिस कार्य में कृष्णचन्द्र को इतना आनन्द प्राप्त हो, व्रज के लिये तो वही कार्य सर्वश्रेष्ठ है। सब नवीन यज्ञ की तैयारी करने उठ पड़े। महर्षि शाण्डिल्य को भी सूचित करना ही है।

× × × ×

गिरिराज का पूरा पदप्रान्त अरुणोदय से पूर्व ही गौओं, गोपियों तथा गोपों से जनपद प्रतीत होने लगा। दीपमालिका-महोत्सव में रात्रिभर घर-घर कड़ाहियाँ चढ़ी रही हैं। पकवानों की राशियों की गणना ही शक्य नहीं। घृत, दुग्ध, दधि के कुम्भ बड़ी कठिनाई से एक के ऊपर एक रखकर किसी प्रकार गिरिराज के चारों ओर समा सके हैं। साभग्रियों की ढेरी दूसरे गिरिराज के समान हो गयी है।

ब्राह्मणों के साथ महर्षि शाण्डिल्य ने सूर्य की प्रथम किरण के साथ ही कुण्ड में अग्नि-स्थापन किया। अरणिमन्थन व्रज में तो नाम मात्र को होता है। यहाँ के हविष्य के लिये तो अग्नि-देव सदा भूखे ही रहते हैं। उन्हें प्रकट होने में विलम्ब होता नहीं। महर्षि ने समाचार पाते ही कल हँसकर स्वीकार कर लिया था कि इन्द्रयाग से यह श्रीकृष्ण का बताया नवीन यज्ञ बहुत प्रभाव-पूर्ण है। प्रातः ही उनके साथ द्विजवृन्द उपस्थित हो गया यज्ञस्थल पर। गणेश, गौरी, नवग्रह, कलशादि के पूजन में विलम्ब होना ही नहीं था।

यज्ञ के अनन्तर महर्षि ने गौओं का पूजन कराया। कन्हैया ने प्रत्येक गाय, वृषभ, बछड़े को अपने हाथ से मोदक खिलाये। गोपों ने उन्हें यवस दिये। ब्राह्मणों का पूजन हुआ और उन्हें भोजन कराके बाबा ने सहस्रों गायें दान कीं। सभी गोपों ने यथाशक्ति सौ, सहस्र गायें दान कीं। यज्ञिय अग्नि की, गायों की और ब्राह्मणों की पूजा, प्रदक्षिणा करने के पश्चात् गिरिराज का पूजन प्रारम्भ हुआ।

गिरिराज—साक्षात् श्रीकृष्णस्वरूप ही तो हैं वे। उनका भी क्या कोई दूसरा अधिष्ठाता देवता हो सकता है ! व्रजके गोप—बाबा और स्वयं गोपाल उनकी अर्चना करने जा रहे हैं। महर्षि शाण्डिल्य पुरुषसूक्त का सस्वर पाठ कर रहे हैं विप्रों के साथ ! गिरिराज क्या अव्यक्त रह सकते हैं ? प्रकट हो गये वे। गोपों ने देखा सहस्र-सहस्र सूर्य जैसे एक साथ उदित हो गये हों। शीतल-स्निग्ध तेजोमयी मूर्ति—गगन को स्पर्श करती, विशाल। यह तेज, यह विशालता यदि न होती तो मूर्ति तो श्यामसुन्दर की ही है वह भी। वही मयूरमुकुट, वही पीताम्बर, वही नीलोज्ज्वल वर्ण। भाल, नेत्र, वक्ष—सम्पूर्ण आकृति तो वही है; परंतु विशाल—विशाल कितनी है !

'गिरिराज प्रत्यक्ष प्रकट हो गये !' गोपों, गोपियों, विप्रों, सबमें आश्चर्य और उमंग आयी। पूजन में उल्लास आ गया। अपने विशाल हाथों से गिरिराज ने नैवेद्य स्वीकार करना प्रारम्भ किया। श्रीकृष्ण सखाओं के साथ सामग्री निवेदित करने में तत्परता प्रकट कर रहा है। गोपियाँ पात्र उठाकर गोपों को दे रही हैं। सहस्र-सहस्र गोप पात्र आगे बढ़ाते जा रहे हैं। गिरि-राज कब पात्र लेते हैं, यह कहना कठिन है। पात्र रिक्त होते देर ही नहीं लगती। कोई साधारण देवता तो नहीं हैं वे। पूरी सामग्री उन्होंने स्वीकार कर ली और तब आचमन किया।

'बाबा, गिरिराज प्रसन्न हैं ! इस वर्ष खूब वर्षा होगी ! बाघ, सिंह बनकर ये ही उन लोगों को मार देते हैं, जो इनका अपमान करता है। हम लोगों का, हमारी गायों का ये पालन करते हैं। ये हम सबका कल्याण करेंगे ! रक्षा करेंगे !' श्रीकृष्ण ने दोनों हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया और फिर पृथ्वी पर लेटकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया। सखाओं ने तो उसका अनुगमन किया ही, सब गोप और गोपियों ने भी किया।

गिरिराज पूजा लेकर अदृश्य हो गये। गोपों ने देखा, उनके समस्त रिक्त पात्र भरे हुए हैं। देवता का अनुग्रह है यह। सबने साथ ही बैठ कर भोजन किया। गोपियाँ पृथक् बैठीं वह प्रसाद स्वीकार करने आज। कन्हैया सखाओं के साथ परसने में लगा है। मध्याह्न हो गया, पर उसने कलेऊ

नहीं किया। मैया का आग्रह भी आज शिथिल हो जाता है—यह सोचकर कि आज का उत्साह पवित्र है। बाबा ने बहुत चाहा, पर वह तो आज यज्ञशेष भोजन करेगा। श्याम न बैठे तो भोजन किया कैसे जाय—पर वह बलात् बैठा जो रहा है। उसका आग्रह उपेक्षा की वस्तु भी तो नहीं। परसने-वाले तो बहुत हैं; पर ये बालक जब अपने छोटे हाथों में कुछ उठाकर किसी को देने जाते हैं, अस्वीकार कैसे कोई करे। श्याम गोपों और गोपियों में सब को कुछ-न-कुछ परस आया, सबको चिढ़ा आया और तब किसी प्रकार बाबा ने उसको सखाओं के साथ बैठाया।

कोई प्राणी, कोई पशु-पक्षी वहाँ ऐसा नहीं बचा, जिसके लिये उच्छिष्ट की प्रतीक्षा करनी हो। सबको पर्याप्त अन्न इधर-उधर देकर ही यह गोपमण्डली भोजन करने बैठी थी। अब यदि व्रज के कुत्ते, पक्षी, बंदर उस अन्न को छोड़कर व्रजवासियों के उच्छिष्ट में ही स्वाद पाते हों तो कोई क्या करे। वे केवल कन्हैया के उच्छिष्ट पर छीना-झपटी करके रह जायँ, ऐसा भी शक्य नहीं। प्रत्येक को प्रत्येक पात्र से कुछ-न-कुछ चाहिये। उनकी छीना-झपटी भी तो विनोद-जैसी ही है। लड़ना तो यहाँ किसी को आता ही नहीं।

'अब गिरिराज की परिक्रमा होगी!' भोजन समाप्त हो जाने पर कन्हैया ने बताया।

'परिक्रमा पहिले क्यों नहीं कर ली!' मधुमङ्गल रुष्ट हुआ। उसे इस कनूँ ने इतना खिला दिया है हँसा-हँसा कर कि चलना ही कठिन है।

'कृष्णचन्द्र, भैया! तुम सब माताओं के साथ यहीं रहो! हम लोग परिक्रमा कर आयेंगे!' संनन्दजी ने ठीक ही कहा। बच्चे और स्त्रियाँ कहाँ गिरिराज की परिक्रमा करने जायँगे। श्याम तो सबेरे से दौड़ रहा है। ये सब थक गये होंगे।

'मैं कहाँ पैदल परिक्रमा करने जा रहा हूँ! मेरा छकड़ा जुतवा दो! मैं उसमें मैया के साथ बैठूँगा! पैदल तो बस, यह मधुमङ्गल ही परिक्रमा करेगा!' श्रीकृष्ण ने परिक्रमा भी सबके लिये सुगम बना दी।

'जैसे मेरे बैठने के लिये कोई छकड़ा ही नहीं है।' मधुमङ्गल ने देखा इधर-उधर—कोई छकड़ा जुता हो तो वह पहले चढ़ जाय।

छकड़े जोते गये। गोपियाँ बालकों के साथ छकड़ों पर बैठीं। माता यशोदा और रोहिणी के साथ उसी छकड़े पर राम-श्याम बैठे। बाबा पैदल ही परिक्रमा करेंगे, अतः भद्र भी कन्हैया के साथ ही बैठा। गायें, बछड़े आगे किये। उनके पीछे उनको सम्हालने के लिये तरुण गोप चले। स्वस्तिवाचन करते महर्षि शाण्डिल्य और विप्रवर्ग के पीछे छकड़ों की सुदीर्घ पंक्ति। सबसे पीछे पैदल गोपगण बाबा के साथ चल रहे हैं।

गिरिराज ने जैसे आज मालाएँ धारण की हैं, वैसे ही ये चल मेखलाएँ भी। गायों, विप्रों, छकड़ों, गोपों—सब की मेखलाएँ बन गयी हैं उनके चारों ओर। चलती हुई मेखलाएँ। स्वर्ण-मण्डित शृङ्ग, रजत-खुर, अनेक प्रकार के मणि-रत्नों से भूषित चित्र-विचित्र गायें, उनके साथ वैसे ही भूषित, पूजित चञ्चल बछड़े। ब्राह्मणों का समूह सामगान करता हुआ अपने तेज में प्रज्वलित अग्निमाला के समान। छकड़ों की शोभा तो अवर्णनीय है। रंग-बिरंगे वस्त्र, सुसज्जित ऐरावत के बच्चों से वृषभ, उनके गले की घंटियों का नाद आभूषणों की झंकृति से मिला हुआ। कोमल कण्ठों से निकलती सुललित स्वरबद्ध राग-रागिनियाँ और मध्य में बालकों की चपलता। पीछे गोपों का नृत्य, गायन, ताल।

तनिक और ध्यान से देखिये—ऊपर उड़ते पक्षी—और ऊपर पुष्पवर्षा करते जयध्वनिपूरित विमान, वृक्षों पर कूदते कपि, साथ-साथ चलते वन-पशु, पृथ्वी पर रेंगते सर्प से पिपीलिकातक। आज श्याम के साथ गिरिराज की परिक्रमा का सौभाग्य कोई छोड़ नहीं सकता। सब परिक्रमा कर रहे हैं।

तीसरे प्रहर के अन्त में परिक्रमा पूर्ण हुई। छकड़े लौटे। गोपों ने पात्र सम्हाले! ब्राह्मण दक्षिणा पाकर विदा हुए। गोप, गोपियाँ, बालक—सब पहिले नन्दभवन गये बिना घर कैसे जा सकते हैं। श्याम के सामीप्य का सुयोग छोड़ना कैसे किसी के लिये सम्भव हो सकता है।

गिरिधर

देवे वर्षति यज्ञविप्लवरुषा वज्राश्मपर्षानिलैः
सीदत्पालपशुस्त्रि आत्मशरणं दृष्ट्वानुकम्प्युत्स्मयन्।
उत्पाट्यैककरेण शैलमबलो लीलोच्छिलीन्ध्रं यथा
बिभ्रद् गोष्ठमपान्महेन्द्रमदभित् प्रीयान्न इन्द्रो गवाम्॥

—भागवत १०। २६। २५

'ये गोप—इन्होंने मेरी पूजा नहीं की!' महेन्द्र ने अन्त तक प्रतीक्षा की; किंतु गोप तो गिरिराज की परिक्रमा करके घरों को लौट गये। किसी ने उन्हें प्रणाम करके क्षमा याचना तक नहीं की। इतना बड़ा यज्ञ हुआ और उसमें उन्हें आहुति तक नहीं मिली और यह सब समारम्भ उनका भाग रोककर किया गया। उनके लिये यज्ञ की सामग्री संकलित हुई, वे यज्ञभाग लेने को प्रस्तुत थे; पर उन्हें स्मरण तक नहीं किया गया। भारत के दूसरे सभी ग्रामों ने उन्हें पूजित किया, यह संतोष किस काम का। व्रजवासियों ने उनका इतना बड़ा अपमान जो कर दिया।

'ये वन्य गोप—ऐश्वर्य के मद में चूर होकर एक मर्त्य शिशु कृष्ण के बहकाने से देवताओं का अपमान करने लगे हैं ये!' देवराज के दृगों में कषाय आया।

'गिरिराज प्रसन्न हैं, इस वर्ष खूब वर्षा होगी!' सुरेन्द्र ने श्रीकृष्ण के शब्द स्मरण किये—'अच्छी बात—ऐसी वर्षा कि संसार भी स्मरण रक्खे! पर्जन्याधीश का अनादर करके खूब वर्षा का क्या अर्थ होता है, यह मैं समझा दूँगा!'

क्रोध अन्धा होता है। वह स्वयं आसुरभाव है और जिसमें भी आता है, उसे असुर बना देता है। देवताओं के अधीश्वर तक क्रोधावेश में नहीं सोच सके कि वे करने क्या जा रहे हैं। उन्होंने सांवर्तक नामक प्रलयकालीन मेघों को जो सदा सृष्टिकाल में बन्धन में रहते हैं, बन्धनमुक्त कर दिया। 'इससे केवल गोप और गोकुल का ही विनाश नहीं होगा, वहाँ के अनेक निरपराध जीव-जन्तु मरेंगे। संसार पर भी विनाशक प्रभाव पड़ेगा। वहा की वृष्टि वहीं तो रहेगी नहीं। नदियों को यह प्रलय-वर्षा समुद्र बना देगी। पता नहीं कितने जनपद जलमग्न हो जायँगे। उन सबका कोई अपराध नहीं। उन्होंने पूजा की है। देवराज स्वयं लोकपालों में श्रेष्ठ हैं। लोकरक्षा उनका कर्तव्य है।' ये सब बातें क्रोध में कहाँ सूझती हैं। प्रतिशोध होना चाहिये—विनाश चाहे जितना बड़ा करके वह प्राप्त हो!

'यह श्रीकृष्ण बहुत बकवादी है। बुद्धि-विचार और ज्ञान तो है नहीं और मानता है अपने को महापण्डित। इस मर्त्य के बलपर इन गोपों ने मेरा अपमान किया है!' देवराज को कौन कहे कि यदि आप श्यामसुन्दर को मर्त्य मानते हैं तो इतने लाल-पीले क्यों होते हैं। वह अभी कुल सात वर्ष का बालक है और आप देवाधिपति होकर भी उससे गम्भीरता, बुद्धिमानी, विचारशीलता तथा पाण्डित्य की आशा करके क्षुब्ध हो रहे हैं! यह किसका दोष है? कौन अज्ञानी सिद्ध होता है?

'ये सब गोप अपने ऐश्वर्य-मद से मत्त हो गये हैं! कृष्ण ने इनके गर्व को और बढ़ा दिया है। इनके पशु ही तो इनके गर्व के कारण हैं, उनको नष्ट कर दो! ध्वस्त कर दो इन सबों के धनमद को!' छिः! सुरपति होकर सुरभि को नष्ट करने का आसुरी संकल्प!! श्रीकृष्ण का सामना करने चल रहे हैं आप और प्रलयघनों को प्रेरित करके भी अभी से मान लिया है कि गोपों को नष्ट करना सम्भव नहीं है। वे तो बच जायँगे ही, परंतु पशुओं का क्षय अवश्य कर देना है! आरम्भ से पूर्व ही यह दशा है?

'मैं स्वयं ऐरावत पर बैठकर तुम्हारे साथ आ रहा हूँ ! मेरे साथ प्रलयकालीन प्रबल बलशाली मरुद्गण भी चलेंगे !' सांवर्तक मेघों को आज्ञा देते समय सुरपति ने बता दिया कि तुम अकेले नहीं हो ! तुम्हारे साथ प्रचण्ड मरुत् भी हैं और मैं उपस्थित रहकर देखता रहूँगा कि तुम सब कोई कोर-कसर तो नहीं कर रहे हो।

प्रलयमेघ बन्धन-मुक्त हुए ! उनके साथी मरुद्गणों ने उन्हें प्रेरित किया। 'मेघों को नन्द-व्रज पर ही रखना है !' वायुदेव को देवेन्द्र की आज्ञा ने सचेत कर दिया था। दीर्घ काल से बंदी मेघ स्वच्छन्द हुए हैं, उन्हें अपना सम्पूर्ण उत्साह व्यक्त करना है।

× × × ×

'आँधी आ रही है ! बड़ी भारी घटा है !' व्रज में कोलाहल मचा। गोप, गोपियाँ दौड़े ! पशुओं ने भागकर गोष्ठ में शरण ली। लोग अपने बाहर पड़े पदार्थों को छाया में करने के प्रयत्न में भाग-दौड़ करने लगे। व्यर्थ हैं ये प्रयास—क्षण भर में तो चारों ओर अन्धकार छा गया। दिन के तीसरे प्रहर में ऐसा प्रगाढ़ अन्धकार, जो कभी सुना ही नहीं गया। क्षण-क्षण पर विद्युत् के प्रकाश में ही कुछ दीखता है। प्रत्येक चमक के साथ वज्रपात होता है। वायु के वेग से भवनों की भित्तियाँ तक हिल रही हैं ! धड़-धड़, पड़-पड़ शब्द हो रहे हैं। द्वार, वातायन—सब बंद करके भी छुटकारा नहीं।

मूसलाधार वर्षा के साथ उपलवृष्टि नवीन बात है। कार्तिक में ही ये पत्थर पड़ने लगे ! 'यह क्या ! भवनों में जल भरने लगा ! उसका वेग बढ़ता ही जा रहा है ! यह देव-कोप है ! आज इन्द्र की पूजा नहीं हुई, वे क्रुद्ध हो गये हैं !' सबके मुखपर ये ही शब्द हैं। क्या होगा ? भय के कारण हृदयों में एक ही प्रश्न उठता है।

श्याम अपने सखाओं के साथ अभी तक भवन से बाहर नहीं गया है। मैया को इतने से ही संतोष है। वह बालकों के पास आ गयी और बाबा भी यह देखने वहीं आ पहुँचे कि श्रीकृष्ण-चन्द्र को कोई असुविधा तो नहीं, इस परिस्थिति में। भवन, सामग्री आदि की बात क्या श्याम के सम्मुख मन में आ सकती है।

बालकों का तो कौतुक हो गया है। वर्षा, विद्युत् का दृश्य देखते हैं। कभी कोई श्वेत हिम-खण्ड कक्ष में छिटक आता है तो सब उसे लेना चाहते हैं। सबने छोटे-छोटे हिम के टुकड़े मुख में रक्खे। मैया द्वार के सम्मुख इस प्रकार उन्हें रोककर न बैठी होती तो वे उसे खोलकर अवश्य जल में निकल जाते। उछलते, कूदते और हिम लूटते। वातायन तो श्याम के आग्रह से एक खुला रखना ही पड़ा है। सब उसीसे यह नवीन कौतुक देखने में लगे हैं। बाबा पास खड़े हैं कि कोई हाथ बाहर न निकाले !

× × × ×

देवराज को संतोष नहीं हो रहा है। 'व्रजमें एक भी वृक्ष नहीं गिरा, मरुद्गण ठीक काम करते तो ऐसा कैसे होता। अब तक इतने बड़े-बड़े हिमखण्डों की वृष्टि से भी कोई झोपड़ी नीचे टूटी नहीं ! ये मेघ भी उनका अपमान कर रहे हैं ! यह सब तो है; परंतु उनका बार-बार का वज्र-प्रहार क्यों परिणाम नहीं प्रकट करता ? प्रत्येक बार नन्दभवन को लक्ष्य करके ही तो वे वज्र चलाते हैं ? एक प्रबल आलोक—भयंकर गर्जन और फिर कुछ नहीं। क्यों प्रत्येक वार लक्ष्य-च्युत होता है और वज्र की विद्युत्-धारा यमुना-जल में जाकर शान्त हो जाती है !' क्षोभ से महेन्द्र सबको फट-कारते जा रहे हैं और झुँझलाहट ने उनके प्रयास को तीव्र कर दिया है।

यदि इस समय कहीं देवर्षि नारद आ जाते ! वे बड़ी सरलता से समझा देते—'सुरेश, व्रज-भूमि पर आपका यह कोप व्यर्थ है। वहाँ के तरु, भवन, जीव ऐसे नहीं जो आपके अंधड़ में टूट जायँ या इस जल में डूब जायँ ! वहाँ आपके ये हिम-उपल छोटी कंकड़ियाँ होकर गिर रहे हैं। वहाँ के तरु इस वायु में आनन्द से झूम रहे हैं और पक्षी स्नान कर रहे हैं। यदि वे स्वयं हिलने से

आनन्द न लें तो आपके मरुद्गण व्यर्थ हो जायँगे। आपका वज्र वहाँ किसी का एक पत्ता तोड़ने की शक्ति तो रखता ही नहीं। यह तो श्रीकृष्ण की कृपा है कि वज्र की अमोघता की रक्षा के लिये उसकी विद्युत्-धारा यमुना में जाकर शान्त होती है।'

देवेन्द्र यह सब समझ सकें, ऐसी मनःस्थिति उनकी नहीं है। वे तो देख लेना चाहते हैं कि कब तक ये व्रजवासी इस प्रकार बचे रहते हैं। उन्होंने देखा 'गायें गोष्ठ से निकल कर दौड़ पड़ीं। बछड़े, वृषभ, भैंसें, बकरियाँ—सब भागे जा रहे हैं! शीत के कारण गोष्ठ में रहना उनके लिये अशक्य हो गया! जल भरता जा रहा था वहाँ। सब काँप रहे हैं, चिल्ला रहे हैं। नन्दभवन की ओर भागे जा रहे हैं।'

'ये पशु—ये अब बाहर आये!' सुरेन्द्र ने मेघों को ललकारा! 'ये अब लक्ष्य में हैं!' उन्होंने अपना वज्रधर दक्षिण हस्त वेग से चलाना प्रारम्भ किया।

'ये गोप, ये गोपियाँ! अब पता लगेगा इन्हें कि सुरपति के अपमान का क्या परिणाम होता है!' गोप और गोपियाँ नीचे वर्षा में भीगते भागे जा रहे हैं। माताओं ने छोटे बालकों को गोद में अपने शरीर से छिपा लिया है। ऊपर से पड़ते पत्थरों के आघात से बचाने के लिये उन शिशुओं के मस्तक पर अपने शरीर की छाया कर रक्खी है। सब काँप रहे हैं। सब भागे जा रहे हैं। घरों में जल भर गया है, वहाँ रहा नहीं जा सकता।

'अब इन्हें सुबुद्धि आयेगी! अब ये क्षमा माँगेंगे! अब संकल्प करेंगे यज्ञ करने का!' इन्द्र की आशा एक ने भी सफल नहीं की। एक ने भी ऊपर दृष्टि करके कातर नेत्रों से कहा होता—'क्षमा करो, देवाधिराज!' तो कदाचित् वे क्षमा कर देते; पर यहाँ तो बकरियाँ तक ऊपर मुख नहीं कर रही हैं। सभी नन्दभवन जा रहे हैं। सभी एक ही रट लगाये हैं—'श्रीकृष्ण! श्रीकृष्ण!'

'श्रीकृष्ण! देखता हूँ वह लड़का क्या कर लेता है।' देवराज का रोष व्यर्थ गया। खुले आकाश में भागते हुए एक भी पशु को बहते, आहत होते या एक भी बालक लिये माता को फिसलते देखने में उनके सहस्र नेत्र समर्थ नहीं हो सके।

'बाँ-बाँ, म्याँ-म्याँ' पुकारते-चिल्लाते पशु नन्दभवन में प्रविष्ट हो गये। उनका रोम-रोम खड़ा हो गया है। थर-थर काँप रहे हैं वे। मैया ने झट से द्वार खोल दिया। सखाओं ने पटुकों से उनको पोंछना प्रारम्भ किया। पशुओं के पीछे ही गोप और गोपियों का दल आने लगा। कितने लोग उस कक्ष में आ सकेंगे? दूर, दूर, जहाँ तक सम्मुख मार्ग पर दृष्टि जाती है, सब पशु और मनुष्य भागे आ रहे हैं। किसी को रोका नहीं जा सकता। कक्ष में स्थान कहाँ से बनता जा रहा है—पता नहीं; पर सब भीतर आ जाते हैं। नन्दग्राम पूरा और तनिक देर में बरसाने को भी यहीं आना है।

'श्रीकृष्ण! देवराज इन्द्र तो रुष्ट हो गये। उनका यज्ञ नहीं हुआ! वे अब हम लोगों को नष्ट कर देने के लिये ऐसी वर्षा कर रहे हैं। अब कोई उपाय कर! व्रज को इस विपत्ति से तू ही बचा सकता है!' एक ही पुकार है मनुष्यों की वाणी में और सम्भवतः पशु भी यही कह रहे हैं। उनके नेत्र भी श्याम की ओर ही लगे हैं।

'सुबल, देख तो! कितनी भयंकर वर्षा है!' कन्हैया ने द्वार के समीप पहुँचकर बाहर देखा। 'इस उपलवृष्टि से सब बिचारे पशु-पक्षी मनुष्य कष्ट पा रहे हैं!'

'कितनी आँधी चल रही है!' विद्युत् के प्रकाश में ही देखकर दाऊ ने कहा 'इन्द्र अपना यज्ञ नष्ट होने से क्रोधित हो गये हैं!'

'भैया, इस घमंडी इन्द्र को ठीक कर दे न!' भद्र ने कन्हैया का हाथ दबाया। वह जानता ही नहीं कि इन्द्र कौन है, कहाँ रहता है। कोई देवताओं का राजा है—सुन लिया है। कोई हो, उसका कनूँ अवश्य उसे ठीक कर सकता है।

'इन्द्र देवता हैं! वे सारे लोकों के स्वामी हैं!' मणिभद्र ने जो अपनी माता से सुना है, सुना दिया।

'तभी तो वह इतना घमंडी हो गया है!' जो व्रज को इस प्रकार सताये, भद्र की दृष्टि में वह भला नहीं हो सकता।

'हूँ !' कन्हैया ने भद्र के मुख की ओर देखकर द्वार से बाहर ऊपर देखा। गम्भीर हो गया एक क्षण को।

'अरे ! तू द्वार के पास कब से खड़ा है। इतनी तीव्र वायु है, जल की बूँदें भीतर आ रही हैं। भीग रहा है। सर्दी लग जायगी। चलो, सब हटो भीतर !' मैया आनेवालों की व्यवस्था में एक ओर चली गयी थी। उन्होंने दसरी ओर से देखा कि श्याम बालकों के आगे द्वार पर ही खड़ा है। वे वहीं से पुकारती आगे बढ़ीं। पशुओं और मनुष्यों से भरे कक्ष में द्वार तक आने में कुछ क्षण तो लगेंगे ही।

'हमने गिरिराज गोवर्धन की पूजा की है। व्रज के वे ही देवता हैं ! वे ही हमारी रक्षा करेंगे। चलो ! चलो आओ उनके समीप !' श्यामसुन्दर ने माता की बात सुनी ही नहीं। उसने उच्चस्वर से पुकार कर कहा और द्वार से बाहर निकल गया। 'अरे ऐसे मत आओ ! अपने-अपने घरों को जाओ। छकड़े जोतो ! सब वस्तुएँ लाद लो और आओ ! शीघ्रता करो !' सखा उसके साथ ही बाहर निकल गये। अब वे वर्षा में स्नान का आनन्द लेंगे।

'यह अङ्गों से भीगकर चिपका पीताम्बर, आर्द्र अलक-जाल, झलमलाते कुण्डल, वक्ष पर हिलती वनमाला, यह श्रीकृष्ण !' देवराज विद्युत्-प्रकाश में देख रहे हैं। सखाओं से घिरे कृष्णचन्द्र खुली वर्षा में आ गये हैं। भला, उनके कक्ष से बाहर आने पर पशु कक्ष में रह सकते हैं; सब उनके साथ हैं। देवेन्द्र के लिये इससे अधिक सुयोग कब होगा। वर्षा में प्रबलता आयी, उपलवृष्टि द्विगुणित हुई और वज्रपात क्षण में अनेक आवृत्ति करने लगा। वायु का वेग प्रचण्ड से प्रचण्डतर हो गया। 'हो क्या रहा है ? क्यों नीचे बालक, पशु, व्रजवासी अब चिल्लाते तक नहीं। नीचे उपलवृष्टि पहुँच ही नहीं रही है। सब ऊपर ही गल जाते हैं। विद्युत् केवल प्रकाश दे रही है।' सुरेश का श्रम थकित नहीं हो रहा है, इतने पर भी।

'श्याम तो बाहर भाग गया !' मैया ने देखा वे भूल गयीं कि कहाँ हैं, क्या कर रही हैं। दौड़ीं वे। 'वह जा रहा है श्याम—वर्षा में उसे सर्दी लगेगी। पकड़ ही लेना है उसे।' मैया को यह भी स्मरण नहीं कि स्वयं वे भी जल में दौड़ रही हैं, उनपर भी वर्षा हो रही है। श्याम ने क्या कहा, किसी को स्मरण नहीं। वह वर्षा में बाहर भागा—सब मैया के पीछे उसे पकड़ने दौड़ पड़े। कन्हैया—वह किसी ओर देख नहीं रहा है। वह तो सीधे गिरिराज की ओर जा रहा है। जब कन्हैया इस वर्षा में चला जा रहा है, तब किसी को घर में रहना कैसे अच्छा लगे। सखा साथ ही हैं। नन्दभवन से, मार्ग से, जिसकी जहाँ से दृष्टि गयी, सब श्यामसुन्दर की ओर ही दौड़ पड़े। आज यह नटखट इस जलमयी भूमि में छपाछप करता सबकी अपेक्षा तीव्रगति से भागा जा रहा है।

'यह लो, रक्षा का प्रबन्ध हो गया !' सबने तो देखा भी नहीं कि हुआ क्या। साथ-साथ दौड़ते सखाओं ने देखा कि श्याम तनिक झुका। उसने गिरिराज के पद-प्रान्त की भूमि में वाम हस्त लगाया और पूरा पर्वत उठता ऊपर चला गया। जैसे कोई छत्रक उखाड़कर ऊपर उठा लिया हो उसने। श्याम के वाम हस्त की कनिष्ठिका पर गिरिराज छत्र के समान संतुलित हो गये।

'मैया, मैं भीग गया हूँ ! मेरे वस्त्र भी तो ला !' मुस्कराते हुए उस नटखट ने माता को लौटने पर बाध्य किया—'मुझे क्षुधा भी तो यहाँ लगेगी !' मैया अभी ही किसी प्रकार पहुँची हैं। श्याम पता नहीं वर्षा में कहाँ भागा जा रहा है। उसे पकड़कर लौटाना ही चाहिये !' वे पूरे वेग से दौड़ी आयी हैं। किसी दासी को कहने की बात ही मनमें नहीं आयी ! अब यहाँ सचमुच वस्त्र तो चाहिये। इस अंधड़-पानी में फिर नन्दभवन तक श्रीकृष्ण जाय, यह तो ठीक नहीं। उनके गये बिना सब वस्त्र कैसे आयेंगे। वही तो जानती हैं कि पद्मगन्धा कपिला का नवनीत किस छोटे मटके में है। श्याम दूसरा नवनीत तो छूता ही नहीं।

'बाबा, सब लोगों को कहो कि जिसको जहाँ सुविधा हो, गिरिराज के नीचे वहीं आनन्द से आ विराजें ! कोई बाहर न रहे !' श्रीकृष्ण के स्वर में गम्भीरता है।

'अरे, डरो मत ! ये गिरिराज हैं ! मेरे हाथ से गिरना तो दूर, वे हिलेंगे तक नहीं !'

सखाओं ने इधर-उधर लकुट के टेक लगाने प्रारम्भ कर दिये हैं। अकेला कन्हैया इतना बड़ा पर्वत उठाये रहे, यह वे कैसे चुपचाप देखते रहें।

'देखो मत! सब लोग इसके नीचे आ जाओ! कोई वस्तु बाहर या घरों में छोड़ो मत! भय की कोई बात नहीं! सबको बता दो! जाओ, सब गृहसामग्री छकड़ों में भर ले आओ! सब स्त्री-पुरुष, बालक इसी के नीचे आ जाओ! जिनके पशु न आये हों, उनके पशुओं को भी हाँक लाओ। सेवकों को भी साथ ले लो! घरों में किसी को मत छोड़ो! कुछ मत छोड़ो! यहाँ स्थान का अभाव नहीं है!' कृष्णचन्द्र ने गोपों को आग्रहपूर्वक लौटाया। पशु पहले ही साथ आ गये हैं। छकड़े भरे हुए कुछ ही देर में आने लगे।

× × × ×

'ये सब तो पर्वत के नीचे जा छिपे! कोई चिन्ता नहीं। पर्वत के सहित इनको बहा दो!' देवराज सोचते हैं कि जो मेघ सम्पूर्ण जगत् को प्रवाहित कर सकते हैं, वे इस टीले-जैसे पर्वत को नहीं बहा देंगे। उनका वज्र भी तो है। इसी वज्र से तो पर्वतों के पक्ष काटे हैं उन्होंने। इस पर्वत को तो आज वे चूर-चूर करके कंकड़ियाँ बना देंगे।

देवराज यह नहीं सोच पाते कि जब गोप और गोपियाँ तथा गायें घरों से नन्दभवन को भागीं, तब वे कुछ न कर सके। जब श्रीकृष्ण सखाओं तथा व्रजवासियों को लेकर गिरिराज तक आ रहे थे, तब वे कुछ न बिगाड़ सके। जब गिरिराज के पास से गोप घरों को लौटे, तब भी कुछ नहीं किया जा सका और जब इस जलमयी भूमि में, जहाँ सब ऊँचे-नीचे स्थल डूब गये हैं, शतशः छकड़े लदे हुए छपाछप करते पाँत-के-पाँत गिरिराज के नीचे जा रहे थे, तब भी उनमें से एक वस्त्र-खण्ड तक बहाया नहीं जा सका। खुले आकाश के नीचे इस प्रकार बार-बार उन्हें कृष्णचन्द्र ने चुनौती दी और अब तो सारा व्रज गोवर्धन के नीचे पहुँच चुका।

देवराज देखते हैं कि वर्षा की धारा गिरिराज से नीचे नहीं गिर रही है। तपे तवे पर बिन्दु की भाँति जल पड़ता है और वाष्प बन जाता है। वायुदेव समस्त वर्षा को महेन्द्र की प्रेरणा से गोवर्धन पर ही केन्द्रीभूत कर चुके हैं; परंतु वहाँ से तो गिरिधातुएँ तक प्रवाहित नहीं होतीं।

जल-वाष्प और फिर जल—यह क्रम चले तो यह वर्षा कभी समाप्त ही नहीं होगी; लेकिन गोवर्धन पर यह सहस्र-सहस्र सूर्यों-सा प्रदीप्त तेजोमण्डल कहाँ से आ गया। उसपर जो जल गिरता है, वह तो वाष्प भी नहीं बनता। उस तेजोमण्डल के मध्य में कोई है। अवश्य कोई जटाएँ फैलाये खड़ा है। उसकी जटाओं में ही अधिकांश जल लुप्त होता जा रहा है। बहुत-सा वह तेजस्-चक्र पी जाता है और जो गिरिराज पर पड़ता है, वह तत्काल वाष्प बन जाता है।

योगमाया के आवरण ने सहस्राक्ष को भी पहचानने नहीं दिया कि नीचे भगवान् का सहस्रार चक्र घूम रहा है और उसकी अणि पर जटा फैलाये स्वयं भगवान् विश्वनाथ अवस्थित हैं। उन गङ्गाधर की जटाओं में प्रलयघनों का सम्पूर्ण जल एक बिन्दु के समान समा जायगा। उन महाप्रलय के अधिष्ठाता की इच्छा के बिना कोई एक तृण का नाश नहीं कर सकता। आज—आज तो इस समय इस पर्वत को उठाये उनका आराध्य खड़ा है। कैसे सम्भव है कि गिरि का एक कण भी प्रवाहित हो जाय।

× × × ×

'कनूँ, कितनी देर हो गयी! तू थक गया होगा। यह पर्वत थोड़ी देर श्रीदाम को सम्हला दे! तू तनिक विश्राम तो कर ले!' भद्र देखता है अपने सखा के वामहस्त की वह छोटी सी अँगुली। कोमल, पतली अँगुली। उसका अग्रभाग अवश्य कुछ अधिक अरुण लग रहा है उसे। यह कन्हैया बड़ा हठी है। यह किसी की बात मानता ही नहीं। 'अच्छा, तू पर्वत अपने दाहिने हाथ पर ले ले! ला, मैं तेरा बायाँ हाथ दबा तो दूँ!'

कोई चरण दबा रहा है और कोई व्यजन करने में लगा है। छकड़े ज्यों-के-त्यों खड़े हैं। सामग्री सम्हालने का किसी को स्मरण नहीं। गोपों ने अपनी-अपनी लाठियाँ पर्वत से लगा ली हैं।

अपनी समझ से पूरे बल से वे पर्वत को रोके हैं। गोपियाँ, सखा, पशु—सब श्याम को घेरे खड़े हैं। श्यामसुन्दर की ओर ही देख रहे हैं।

'ला, मैं उठाये रहूँगा गिरिराज को ! तू सुस्ता ले !' भद्र को लगता है कि कन्हैया थक गया है, परंतु हठ वश मानता नहीं। 'किसी को नहीं देना है तो दाऊ भैया को ही दे दे !' बात तो ठीक है। दूसरे चाहे उठा न सकें पर दाऊ तो उठा ही सकते हैं। श्याम भी इसे कैसे अस्वीकार कर दे। जो निखिल लोकों को अणु के समान सम्हाले रहता है, वह एक पर्वतखण्ड नहीं ले सकेगा ?

'पहले मेरी वंशी दे मुझे !' श्यामसुन्दर ने देखा कि भद्र के साथ दूसरों का आग्रह भी बढ़ता जा रहा है। जब एक घड़ी भी नहीं हुई और यह दशा है तो अभी तो कई दिन लगेंगे। कौन उसे इस प्रकार खड़ा रहने देगा। वह पर्वत उठाये खड़ा रहे, इससे तो व्रजबासी वर्षा में भी भीगना ही पसंद करेंगे। कोई उपाय चाहिये सबको दूसरी ओर भुलाये रखने का। मैया ने आते ही उसके वस्त्र बदल दिये हैं। वह कभी मुख में माखन देती है, कभी मिष्टान्न। उसकी आतुरता भी बढ़ती जा रही है। इन सबमें मुरली ही एक व्यवस्था रख सकती है।

'तू पर्वत दाऊ को दे दे और फिर मुरली बजा !' भद्र ने मैया के हाथों से मुरली ले ली।

'तू दे भी ! पहले दे !' कन्हैया मानता नहीं और इस समय उसकी हठ रक्खे बिना वह पर्वत किसी को देगा नहीं। भद्र को वंशी देनी पड़ी। श्याम ने आज एक हाथ से मुरली-वादन प्रारम्भ किया। दक्षिण हस्त की अँगुलियाँ छिद्रों पर थिरकने लगीं। एक अङ्गुष्ठ वंशी को सम्हाले रहा।

बाहर घोर अन्धकार है। न दिन का पता लगता और न रात्रि का। विद्युत् का प्रकाश होता होगा; परंतु उधर किसी का ध्यान ही नहीं है। सब एकटक श्यामसुन्दर के मुख की ओर देख रहे हैं। छोटा-सा कन्हैया, उसका नन्हा-सा हाथ, वह कुछ लंबा नहीं हो गया है। इतने पर भी पर्वत इतने ऊँचे कैसे उठा है कि उसके नीचे छकड़े, वृषभ और गोप खड़े हैं—जैसे यह बात किसी को स्मरण नहीं आयी; वैसे ही किसी को यह भी स्मरण नहीं हुआ कि कितना समय व्यतीत हो रहा है। क्षुधा-पिपासा-निद्रा आदि की क्या चर्चा, किसी को शरीर का ही पता नहीं है। श्यामसुन्दर सम्मुख हैं। उसकी मुरली से अमृतवृष्टि हो रही है ! सब के प्राण कर्ण और नेत्रों में आ गये हैं। मूर्ति की भाँति सब खड़े या बैठे हैं। निश्चल—निष्कम्प मूर्ति के समान।

× × × ×

'बाबा, वर्षा बंद हो गयी ! देखो न, कैसी धूप निकली है ! आकाश स्वच्छ हो गया दीखता है। बाहर तनिक भी जल नहीं है। यमुनाजी अवश्य उतर गयी हैं। अब सब लोग निर्भय होकर यहाँ से निकलें !' कन्हैया ने मुरली अधरों से हटायी। सब सावधान हुए। बालक पहले ही बाहर निकल आये और देखकर वे लौटे श्याम की बात का समर्थन करने।

अब गोपों ने छकड़ों की ओर देखा। बैल फिर से जोड़े गये। बालक, वृद्ध, युवक, स्त्रिया, पशु, छकड़े—सब वहाँ से निकले धीरे-धीरे। श्यामसुन्दर पता नहीं कब से पर्वत उठाये है; उसे जितनी शीघ्र विश्राम मिले, उतना अच्छा। वह हठ किये है कि सब से पीछे निकलेगा। जितनी शीघ्रता सम्भव है, की जा रही है। एक बार सब सामग्री पर्वत के नीचे से बाहर कर देनी है।

सब निकल आये ! सम्पूर्ण सामग्री बाहर आ गयी। कन्हैया ने मस्तक बाहर किया, हाथ झुकाया—जैसे गिरिराज स्वयं उसके हाथसे उतरकर अपने स्थान पर बैठ गये हों। सब लोग यह दृश्य देख रहे हैं। कन्हैया जैसे ही खड़ा हुआ, मैया ने उसे अङ्क में ले लिया। पता नहीं कैसे यह सम्भव हुआ; पर हुआ ऐसा ही कि बाबा ने, दाऊ ने, सखाओं ने, सभी गोपों ने उसे हृदय से लगाया। सबके नेत्रों से प्रेमाश्रु झरने लगे। गोपियों ने उसे दधि मलकर स्नान कराया। उसका श्रम दूर होना चाहिये न। विप्रों ने स्वस्ति-पाठ के साथ अक्षत डाले उस पर। सब उसे आशीर्वाद दे रहे हैं, प्रशंसा कर रहे हैं।

यह आकाश—अब वहाँ वर्षाघोष के स्थान पर दुन्दुभियाँ बज रही हैं। उपल के बदले वहाँ से पुष्प-वर्षा हो रही है। श्यामसुन्दर ग्राम की ओर चला। सब सखाओं ने, पशुओं ने उसे

घेर रक्खा है। मैया शीघ्रता में है कि कम-से-कम एक छकड़ा तो श्याम के पहुचने से पूर्व भवन पहुंच जाय। कन्हैया भूखा है। उसे भोजन करना है। थका है—विश्राम करना है। भवन में तो कुछ छोड़ा नहीं गया और जो रह गया, वह वर्षा से उपयोग के योग्य ही न होगा।

गोप और गोपियाँ ग्राम में लौटे। श्यामसुन्दर को छोड़कर घर कौन जाय। गोपों ने अपने छकड़े अपने घरों के द्वार पर छोड़ दिये और बैलों के पीछे स्वयं भी नन्दभवन की ओर भागे। उन्होंने देख लिया कि वर्षा का केवल इतना प्रभाव पड़ा है कि भूमि और गृह धुल कर स्वच्छ हो गये हैं, कहीं तनिक भी हानि का चिह्न नहीं है।

× × × ×

'देवराज हमें क्षमा करें!' सांवर्तक-गण मुख लटकाये खड़े हो गये थे। उनका वर्ण श्वेत हो गया था। 'हमारे समीप एक बिन्दु जल शेष नहीं!'

'सुरपति, अवज्ञा क्षमा हो! हम थककर चूर हो चुके हैं!' उन्चासों मरुद्गण एक पंक्ति में नीचे मुख किये खड़े थे।

'अच्छा, लौटो!' देवेन्द्र देख रहे थे कि उनकी अमृतस्यन्दिनी भुजा पीड़ा करने लगी है। अब, एक बार भी वज्र इस समय चलाया नहीं जा सकता।

'नीचे पृथ्वी पर कहीं जलप्लावन के चिह्न नहीं हैं!' आश्चर्य से सहस्राक्ष धरा को और उसमें भी व्रज को देख रहे थे। उनका संकल्प नष्ट हो गया था। 'व्रज के किसी भवन में इतना जल नहीं गया कि कोई वस्तु आर्द्र हुई हो! भवन धुल भर गये हैं!'

'यमुना में जल का कोई पूर नहीं!' वे गम्भीर हुए। 'मैं लोकपाल हूँ और वह भी पर्जन्य-रूप! यहाँ प्रलय-मेघ भी जलशून्य हो गये। जल समुद्र में गया होता तो सूर्य उसे अपनी किरणों द्वारा मेरे पास पहुँचा ही देते; परंतु वह तो मूलतः लुप्त हो गया। जल ही नहीं रहा मेरे पास तो मेरा मेघाधिपतित्व कैसा!' देवराज का गर्व क्षीण हो गया।

'जल के बिना लोक का पालन कैसे होगा?' सुरेन्द्र की चिन्ता वस्तुतः अपने लिये ही थी। 'लोक में तो श्रीकृष्ण हैं न! भगवान् ऋषभ ने भी तो मेरे रुष्ट होकर वर्षा न करने पर योगबल से वृष्टि कर ली थी। जो जल का लोप कर सकता है, वह जल प्रकट भी कर लेगा! मैं—मैं अब किस बात का इन्द्र हूँ।' सुरपति ने देखा कि उनकी शक्ति का आधार ही छीन लिया गया।

'जल का हुआ क्या? पदार्थ का तिरोभाव तो होता है; पर यहाँ तो जल का अस्तित्व ही नहीं दीखता। अस्तित्व का नाश तो नहीं होना चाहिये!' स्मरण आया कि गोवर्धन पर एक ज्योति-र्मय चक्र था और उसके मध्य में कोई जटाधारी महामूर्ति।

'भगवान् का चक्र और ये भगवान् शशाङ्कशेखर!' महेन्द्र ने देखा, अब भी गोवर्धन पर सुदर्शन चक्र के मध्य आशुतोष आसीन हैं। अवश्य ही दोनों ने अपना स्वरूप अब सूक्ष्म बना लिया है। 'मेरे द्वारा यह किसका अपमान हो गया? उनका जो परात्पर परम प्रभु हैं!' महेन्द्र का पश्चात्ताप सीमा से परे था। गोप पर्वत से निकल रहे थे। श्याम ने पर्वत अपने स्थान पर रख दिया। सब लोग नन्दभवन आये; पर महेन्द्र अमरावती नहीं लौट सके। इतना बड़ा अपराध करके भी प्रभु के चरणों में गिरकर क्षमा माँगने का अवकाश नहीं मिल रहा है। स्वजनों के मध्य में इस समय प्रभु हैं। इस समय उनके प्रियजनों के अनुराग में बाधा पड़ने पर वे और भी असंतुष्ट होंगे। महेन्द्र को क्षमा चाहिये। क्षमासिन्धु प्रभु क्षमा तो कर ही देंगे; परन्तु एकान्त मिले तब तो क्षमा माँगी जाय।

इतनी बड़ी विपत्ति टल गयी; अतएव ब्राह्मणों को गोदान तो करना ही चाहिये। बाबा ने महर्षि शाण्डिल्य को दान देना चाहा। महर्षि ने दान के संकल्प में ज्यों ही कार्तिक शुक्ला अष्टमी पढ़ा, सब लोग चौंक पड़े। प्रतिपदा को सायंकाल वर्षा प्रारम्भ हुई थी, जब वे गोवर्धन पूजन करके लौटे थे। तब क्या सात दिन वे पर्वत के नीचे ही रहे? महर्षि तो यही कह रहे हैं।

'श्रीकृष्ण ने सात दिन-रात्रि गोवर्धन को एक अँगुली पर धारण कर रक्खा ! हम सब उसकी मुरलीध्वनि में ऐसे मग्न थे कि कुछ क्षणों के समान यह समय व्यतीत हो गया। कैसे हो गया यह ? इतना बड़ा पर्वत और सात वर्ष का कोमल कन्हैया !' एक गोप अपने आश्चर्य को रोक नहीं सका।

'इस कृष्ण में अद्भुत चमत्कार जन्म से ही हैं ! उसने उतनी भयंकर राक्षसी पूतना तब मार दी, जब वह उत्पन्न ही हुआ था। ठीक से पलकें भी नहीं गिरा पाता था।' दूसरे ने शङ्का को बल दिया।

शकट-भञ्जन, तृणावर्त-वध, अर्जुनवृक्ष-पातन, बक और वत्स का संहार, धेनुक-वध, प्रलम्ब-मृत्यु, दावाग्निपान, कालिय-मर्दन—यह सब चरित फिर तो स्मरण किये गये। जो कर्म दाऊ ने किये हैं, वे भी मान लिये गये कि इसी श्रीकृष्ण ने कराये हैं। संदेह बढ़ता ही गया।

'व्रजेन्द्र, हम सबका आपके इस पुत्र में अपार स्नेह है ! ऐसा स्नेह भी स्वाभाविक नहीं है!' एक ने एक अद्भुत शङ्का उठायी।

'व्रजेन्द्र, ये अद्भुत कर्म तो किसी देवता में ही हो सकते हैं; पर कोई देवता हम ग्रामीण गोपों के मध्य में कैसे अवतीर्ण होना चाहेगा ! कन्हैया के कर्म मनुष्यों के समान नहीं हैं। आप के इस पुत्र के सम्बन्ध में हम सबों को बड़ा संदेह हो रहा है। यह कौन है ?' एक वृद्ध गोप ने शङ्का को पूरा स्वरूप दिया।

'भाई, आप लोग मेरी बात तो सुनिये ! इस मेरे नन्हे-से कृष्णचन्द्र पर आप सबको शङ्का करने का कोई कारण नहीं है। महर्षि गर्ग जब गोकुल में आये थे, तब उन्होंने इसके सम्बन्ध में जो बताया था, वह सुनकर आप सबका समाधान हो जायगा !' बाबा ने सबको आश्वासन दिया। सब लोग इस प्रकार श्यामसुन्दर को संदेह की दृष्टि से देखें तो कैसे निर्वाह होगा।

'महर्षि गर्गाचार्य त्रिकालज्ञ हैं ! उन्होंने कहा था कि इस कृष्णचन्द्र के बहुत-से नाम हैं। यह पहिले अनेक बार जन्म ले चुका है। इसके सब नाम और गुण वे आचार्य ही जानते हैं। उन्होंने ऐसा ही कहा। मुझे तो इतना ही बताया कि इसके द्वारा समस्त गौओं और गोकुल का कल्याण होगा। इसके द्वारा सम्पूर्ण विपत्तियों से हम लोग पार हो जायँगे। सदा से यह दस्युओं से सज्जनों की रक्षा करता आया है। इसमें नारायण के समान गुण हैं। इसके कार्यों पर आश्चर्य नहीं करना चाहिये। महर्षि के इन वचनों के साथ आप देखते ही हैं कि हमारे इष्टदेव भगवान् नारायण की इस पर कृपा है और कभी-कभी उन्हीं की शक्ति का इसमें आवेश हो जाता है।' बाबा ने जैसा समाधान अपना किया है, वैसा ही तो दूसरों का भी करेंगे।

'व्रजेन्द्र, तुम धन्य हो !' गोपों ने बाबा को प्रणाम किया। भला, जिसमें श्रीनारायण की शक्ति प्रकट हो, वह क्या साधारण बालक है ? ऐसा बालक क्या सामान्य पुण्य से प्राप्त होता है ? गोपों ने मान लिया कि व्रजेश कोई बहुत बड़े महापुरुष हैं उस जन्म के।

'हम सब सात दिनों से भूखे हैं !' बाबा स्मरण न दिलाते तो सब भूल ही गये हैं कि पिछले सात दिन जो उन्हें कुछ क्षण-से लगे हैं, बिना खाये-पीये ही बीते हैं। यहाँ आकर दान और ब्राह्मणों के सत्कार के पश्चात् यह शङ्का-समाधान चल पड़ा।

'आज तो सब साथ ही बैठकर भोजन करेंगे !' बाबा को अभी-अभी सेविका सूचित कर गयी है कि मैया ने समस्त गोकुल के भोजन की आज यहीं व्यवस्था की है। सायंकाल तो हो चुका और अभी सबके घरों का सामान छकड़ों पर पड़ा है। कन्हैया के साथ बालकों के भोजन से ही क्या हुआ। घर जाकर भोजन बनाने में कितना कष्ट होगा गोपियों को अब। यहाँ से हटने की इच्छा भी तो नहीं होती। गोकुल के गृह तो अब भोजनोपरान्त ही जनपूर्ण होंगे।

—❀○❀○❀—

गोविन्द

पिता गुरुस्त्वं जगतामधीशो दुरत्ययः काल उपात्तदण्डः ।
हिताय स्वेच्छातनुभिः समीहसे मानं विधुन्वज्जगदीश ! मानिनाम् ॥

—भागवत १०।२७।६

'श्रीकृष्णचन्द्र मुझे कैसे क्षमा करेंगे ! मेरे द्वारा उनके स्वजनों को क्लेश हुआ है ! मैंने व्रज को ही नष्ट करने का प्रयत्न किया ! मेरे अपराध का परिमार्जन कहाँ है !' सुरेन्द्र को साहस नहीं हो रहा है कि वे श्यामसुन्दर से क्षमा भी माँगें।

'मैं कैसे उन सर्वेश्वर के सम्मुख उपस्थित होऊँ !' इस व्रजलीला में इसके लिये भी अवकाश नहीं कि गोपों के ही चरणों में गिरकर क्षमा माँगी जाय। उनका देवत्व ही आज भार बन गया है।

'पितामह ब्रह्मा ! देवगुरु बृहस्पतिजी ! भगवान् आशुतोष !' इन्द्र का चित्त किसी के स्मरण से आश्वासन नहीं पाता। भला, श्रीकृष्णचन्द्र के अपराधी को कौन अपने यहाँ प्रवेश करने देगा। देवराज को विश्वास है कि यदि वे अमरावती लौटे तो देवता उसी प्रकार उन्हें नीचे फेंक देंगे, जैसे किसी दिन त्रिशङ्कु फेंका गया था। इतने से भी प्रायश्चित्त हो जाता तो इसे भी वे स्वीकार कर लेते; परंतु अपने अपराध का तो अन्त ही दिखायी नहीं पड़ता उन्हें। भूमि पर तो दो दिन व्यतीत हो गये; परंतु देवराज की तो एक घटिका भी पूर्ण नहीं हुई है। देवताओं का दिन तो मानव के ६ महीनों के बराबर है। देवराज असमंजस में पड़े व्याकुल हो रहे हैं।

'मातः, रक्षा करो !' महेन्द्र ने देखा सुदूर नभ से एक अमित तेजोमूर्ति अवतरित हो रही है। वहाँ—वहाँ से जहाँ उनकी दिव्य दृष्टि भी नहीं पहुँचती। कदाचित् पितामह के लोक से भी ऊपर से। एक बार वे भय से सिहरे—स्वयं योगमाया उन्हें दण्ड देने तो नहीं पधार रहीं हैं। 'प्रकाश स्निग्ध है, शीतल है, सहस्र-सहस्र चन्द्रों की ज्योत्स्ना से धवलसुधास्यन्दी है ! उग्रता के चिह्न तक नहीं उसमें !' कानों में घंटियों के स्वर में नादात्मक प्रणवध्वनि आयी। आकृति स्पष्ट हुई—स्पष्ट होती गयी ! सुरेश ने पहले कभी दर्शन नहीं किया है; परंतु देवगुरु के भावक्षुब्ध कण्ठ से इस मूर्ति का ध्यान सुना है। ये गोलोक की कामधेनु पधार रही हैं। देवलोक की कामधेनु इनकी ज्योति के अंश मात्र से प्रकट हुई हैं। इन्द्र ने वहीं दण्ड की भाँति गिरकर प्रणिपात किया।

'अभय हो, ओ वत्स ! गोपाल तुम पर अनुकूल हो !' माता का भंडार भी क्या कभी अवरुद्ध रहता है। पुत्र को क्या माता से भी क्षमा माँगनी पड़ती है। गौ तो स्वयं क्षमामूर्ति हैं। क्या कभी गौ माता भी किसी के क्रूरतम अपराध को भी हृदय में रखती हैं। जब पृथ्वी पर गौ माता की उदारता प्रत्यक्ष है, तब ये तो गोलोक की अधीश्वरी, जगज्जनन गायों की परमाधिदेवी हैं। स्नेह, वात्सल्य के अतिरिक्त वहाँ और कुछ है ही नहीं।

'माँ, विश्वास हो गया कि गोपाल मुझे क्षमा कर देंगे !' जिसे गोलोक की कामदा ने अपने अनुग्रह से पवित्र कर दिया, उससे गोपाल रुष्ट कैसे रह सकते हैं। उसने कितना बड़ा अपराध किया है, इसका प्रश्न कहाँ रहता है। इन्द्र ने तो गायों और गोपों का ही अपराध किया है न ! अब तो उन्हें गोकुल की आदि माता का आशीर्वाद प्राप्त हो चुका। क्षमा तो उन्हें मिल गयी। गोपाल के क्षमा करने की बात अब रही ही कहाँ।

'तुम श्रीकृष्ण से भी डरते हो! आओ मेरे साथ!' सुरभि के स्वरों में माता का स्नेह है। एक हल्की झिड़की भी—श्रीकृष्ण भी क्या भय के योग्य हैं। वे तो रुष्ट होना जानते ही नहीं। उनसे भयभीत होने का क्या अर्थ! वे तो स्नेह करने के लिये ही हैं।

'वे बैठे हैं गोपाल, जाओ! मिल लो!' कामधेनु तनिक पीछे ही रुक गईं। महेन्द्र अभी उनके लिये तो बालक ही हैं। उनके जाने पर गोपाल उनके सत्कार में लग जायँगे। इन्द्र को अपनी बात कहने का अवसर मिलना चाहिये। तब तक अपनी संतानों से भी उन्हें मिल लेना है। ये गायें, ये वृषभ, ये बछड़े—सब ऊपर मुख किये उन्हीं की ओर तो देख रहे हैं। उनका वात्सल्य भी सबको चाटने को उत्सुक बना रहा है।

'माँ!' इन्द्र ने पीछे मुड़कर देखा। कामदा के नेत्रों ने ही संकेत किया—'इरो मत! जाओ तो!' अभिवादन किया उन्होंने पुनः उन पावन चरणों में।

× × × ×

सखा मध्याह्न में विश्राम कर रहे हैं। कोई कहीं लेटा है और कोई पुष्पचयन कर रहा है। कोई गिरिधातुएँ उठाने गया है और कोई गुञ्जा या मयूर-पिच्छ लेने। सब शृङ्गार के वन्यसाधन एकत्र कर लेंगे, तभी तो श्याम को और परस्पर भी एक दूसरे को सजायेंगे। कन्हैया एक कुञ्ज में सबसे पृथक् आया। वह भी कुछ संग्रह करने ही आया होगा। ऊपर दृष्टि गयी। कोई सुपरिचित स्वर कानों में पड़ रहा है। शीघ्रता से उसने लतिकासुमनगुच्छ तोड़े और समीप की शिला पर एक पत्र पर रख दिये। वह किसके लिये इतने आदर से पुष्प-चयन कर रहा है? पुष्पों को रखकर वह शिला पर बैठ गया। इस प्रकार ऊपर मुख करके जैसे किसी की प्रतीक्षा कर रहा हो!

'प्रभो!' जैसे आकाश से तीर की भाँति कोई तेज गिर पड़ा हो। इन्द्र पृथ्वी पर पड़े हैं दण्ड की भाँति और उनका सूर्य के समान तेजोमय रत्नजटित किरीट व्रज की धूलि से पवित्र हो गया है। अपने फैले हुए दोनों हाथों से वे श्याम के चरणाग्र का स्पर्श कर रहे हैं!

'देवराज!' कन्हैया न उठा, न झिझका। जैसे उसे सदा इस प्रकार के लोगों से प्रणिपात पाने का अभ्यास है। उसका स्वर भी गम्भीर ही बना रहा।

इन्द्र कुछ क्षण पड़े रहे उसी प्रकार। फिर धीरे से उठे। घुटनों के बल बैठकर उन्होंने अपने किरीट से श्रीकृष्ण के चरणाग्र का स्पर्श किया। हाथ जोड़कर सम्मुख खड़े हो गये। लज्जा से उनका मुख नीचे झुका हुआ है। श्रीकृष्णचन्द्र की ओर दृष्टि उठाने का साहस नहीं हो रहा है। देवेन्द्र ने देख लिया कि प्रभु इस प्रकार देख रहे हैं, जैसे उनके नेत्र कहते हों—'तुमने किया, वह बड़ा अच्छा किया। गोकुल की अधिदेवी माता कामदा ने तुम्हें क्षमा कर ही दिया; अतः मुझे तो कुछ कहना है नहीं। अब यहाँ क्यों आये हो? क्या इच्छा है अब? आप तो देवाधिपति हैं! त्रिलोकेश हैं! एक मानव को इस प्रकार क्यों प्रणाम कर रहे हैं!'

श्रीकृष्णचन्द्र कुछ बोलते नहीं, पर उनकी दृष्टि क्या कम बोलती है। देवता संकल्पों में ही तो वार्तालाप करते हैं। देवराज को तो दृष्टि में निहित संकल्प सुनायी पड़ रहे हैं। 'कहाँ हैं वे त्रिलोकेश!' आज तो सर्वेश के सम्मुख एक तुच्छ अपराधी के समान उपस्थित हैं। यह ठीक है कि उन्होंने गोपों का श्रीमद ध्वस्त करना चाहा था; पर स्वयं उनका श्रीमद ध्वस्त हुआ—कभी ध्वस्त हो चुका। उन्होंने गद्गद कण्ठ से प्रार्थना प्रारम्भ की—

'प्रभो! आप विशुद्ध सत्वस्वरूप हैं! रजस् और तमस् तो आपके स्मरण से ध्वस्त हो जाते हैं। अतएव आप में रजोगुण तथा तमो गुण के धर्म रोष, क्रोधादि सम्भव ही नहीं हैं। इतने पर भी धर्म की रक्षा और दुष्टों के प्रशमन के लिये आप दण्ड का विधान करते हैं! आप ही इस संसार के उत्पादक, स्वामी और मर्याद भङ्ग होने पर दण्ड देनेवाले कालस्वरूप भी हैं। इस विश्व के कल्याण के लिये आप स्वेच्छा से नाना स्वरूपों में विविध प्रकार की चेष्टाएँ करते हैं! मेरे समान जो कोई भी अपनी अज्ञता से अपने को सर्वेश्वर मान लेता है, आपके श्रेष्ठ मार्ग को छोड़कर

प्रमत्त होता है, समय-समय पर उसे दण्ड देकर आप उसके गर्व को नष्ट कर दिया करते हैं। यह दुर्जनों पर आपका अनुग्रह ही है !' महेन्द्र ने स्वीकार किया कि प्रभु रुष्ट तो होते नहीं, परंतु उत्पथ-गामियों पर कृपा करने के लिये उन्हें दण्ड देते हैं, जिससे वे ठीक मार्ग पर आ सकें। दण्ड देने में भी वे करुणा से ही प्रवृत्त होते हैं।

'मैं आपका प्रभाव नहीं जानता था। ऐश्वर्य के मद ने मुझे अंधा बना दिया था। मैंने बड़ा अपराध किया। प्रभो, मुझे आप क्षमा कर दें !' जब सुरभि माता ने क्षमा कर दिया, तब फिर यह क्षमा क्यों ? लेकिन देवराज तो इस अपराध की क्षमा से ही संतुष्ट नहीं हैं। वे तो क्षमा चाहते ही दूसरे रूप में हैं —'फिर कभी मुझमें ऐसी दुर्बुद्धि न आये !'

'देव ! आपका यह अवतार पृथ्वी के भारभूत उन स्वार्थपरायण लोगों के विनाश और उन लोगों के कल्याण के लिये हुआ है, जो आपके श्रीचरणों के आश्रित हैं !' तात्पर्य यह कि देवराज संकेत कर रहे हैं कि 'मैं आपके श्रीचरणों का आश्रित हो गया हूँ, अतएव अब मेरा कल्याण होना चाहिये।' 'मैं बड़ा क्रोधी हूँ ! अपने यज्ञ के न होने पर प्रचण्ड वायु के साथ वर्षा द्वारा गोकुल के विनाश का मैंने यत्न किया। आपने मुझपर महान अनुग्रह किया कि मेरे प्रयत्न को व्यर्थ कर दिया। मेरे गर्व का ध्वंस किया ! आप सर्वेश्वर हैं ! मेरे स्वामी हैं ! मैं आपकी शरण हूँ !' देवराज ने अपराध स्वीकार किया और फिर चरणों पर गिर पड़े।

एक बार भी जो किसी प्रकार कह देता है 'मैं तुम्हारी शरण हूँ', उसे तो श्याम छोड़ नहीं पाता; इन्द्र तो भावक्षुब्ध होकर शरणागत हुए हैं। उनके नेत्रों का प्रेमजल श्रीकृष्ण के चरणों को प्रक्षालित कर रहा है। कन्हैया अब उपेक्षा कैसे कर सकेगा। वह हँस पड़ा। गम्भीरता समाप्त हो गयी।

'बराबर इन्द्रत्व के अबाध ऐश्वर्य ने तुम में गर्व उत्पन्न कर दिया था। देवराज में गर्व-जैसा तामस भाव नहीं होना चाहिये। तुम बराबर पिछले सात वर्ष से गोकुल की पूजा स्वीकार कर रहे थे, जब कि गोकुल तुम्हारे लिये सेव्य है। मैंने तुम पर अनुग्रह करने के लिये तुम्हारा यज्ञ अवरुद्ध कर दिया। यह भारत भूमि नित्य पूज्य है। यहाँ सर्वदा ऐसे महापुरुष रहते ही हैं, जो तुम्हारे पूजनीय हों। यह अपराध है कि ऐसे महत्तमों द्वारा तुम अपनी अर्चा कराओ ! मैंने तुम्हें इससे बचा दिया। यों तो जो बहुत प्रमत्त हो जाता है, उसे मार्ग पर लाने के लिये मैं ऐश्वर्य से उसको गिरा देता हूँ; परंतु तुम शीघ्र समझ गये हो ! अब अमरावती जाओ ! अपने अधिकार का उपभोग करो ! परंतु आगे कभी गर्व मत करना !' श्रीकृष्ण ने आश्वस्त किया देवराज को।

'प्रभो ! जो ऐश्वर्य इस प्रकार मदान्ध कर दें, जो अधिकार प्रमत्त बनायें, मुझे उनकी इच्छा नहीं है। मैं तो यहीं इन श्रीचरणों...!'

'तुम्हें मेरी आज्ञा का पालन करना चाहिये ! तुम फिर प्रमाद करने जा रहे हो !' पता नहीं महेन्द्र क्या-क्या कहते; किंतु मूक होना पड़ा उन्हें। आज्ञा के सम्मुख मस्तक झुकाने के अतिरिक्त उपाय भी क्या।

× × × ×

'माँ !' कन्हैया झट से उठा। उसने देखा—सुरभियाँ, बछड़े, वृषभ, सब चले आ रहे हैं कामधेनु के पीछे-पीछे। पुष्पों को अञ्जलि में भरकर कामदा के चरणों पर चढ़ा दिया उसने और भूमि पर सम्मुख लेट गया प्रणाम करता हुआ। 'तुमने व्रजभूमि पर कृपा की ! गोकुल पुनीत हो गया।'

'गोपाल, मेरी संतानों के तुम्हीं शाश्वत पालक हो !' कामधेनु के स्तनों से अविरल अमृत की धारा झर रही है। 'तुम इस धरा पर आये, यह इन्द्र यहाँ हमारी संतानों के प्रति अनुत्तरदायी सिद्ध हुआ।' स्वर में तिरस्कार नहीं, स्नेह भरा है।

'माँ, देवराज को आपने क्षमा कर दिया है न ?' श्यामने पूछ लिया।

'मैंने और मेरी संतति ने रोष करना सीखा ही कहाँ है; परंतु तुमने गोकुल की रक्षा की है। गायों के इन्द्रत्व पर मैं तुम्हारा अभिषेक करूँगी। मेरी निरीह संतति अपनी रक्षा का भार एकमात्र तुम्हीं पर छोड़ सकती है!' कामधेनु ने इन्द्र की ओर देखा। देवराज ने मस्तक झुकाया। श्रीकृष्ण गौओं के ही इन्द्र बन जायँ, तो भी देवराज का इन्द्रत्व गौरवमय हो जायगा।

'माँ, यह गोलोक नहीं है न! यहाँ तो पितामह द्वारा निश्चित मर्यादा ही चलनी चाहिये!' श्याम ने निकलने का मार्ग ढूँढ़ा।

'ब्रह्माजी भी अपनी ओर से बछड़े चुराकर, उनकी माताओं को पुत्रों से पृथक् करने का प्रयत्न कर चुके हैं!' कामदा के स्वर में उलाहना है। जो एक बार प्रमाद कर चुका है, गायों के समान सीधी, निरीह जाति उसकी व्यवस्था पर निर्भर कर दी जाय—यह कहाँ का न्याय है। मैं आ रही थी तो ब्रह्मलोक में स्रष्टा ने मुझे अर्घ्य दिया और प्रार्थना भी की कि गोविन्द-पद पर तुम्हारा अभिषेक कर दूँ। वे स्वयं अनुभव करते हैं कि यह भार उनकी सृष्टि में कोई वहन नहीं कर सकता!'

'हुम्मा!, बाँ!' गायों और बछड़ों ने एक साथ पुकार की। कामधेनु के समान वे मानव-वाणी भले न बोलें; परंतु उनका यह चिरचारक उनकी भाषा समझता ही है।

'आज देवोत्थानी एकादशी है! इससे शुभ मुहूर्त कब मिलेगा!' सुरभि ने तत्काल अभिषेक करना है, यह सूचित कर दिया।

'इस सेवक को भी गौरवलाभ का लालच है!' महेन्द्र ने दोनों हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया!

'बिना राजा को तिलक किये कोई राजतिलक पूर्ण नहीं होता! यह गायों के इन्द्र-पद का अभिषेक तुम्हारे द्वारा सम्पन्न होकर ही तो साङ्गता प्राप्त करेगा! इसमें पूछना क्या है!' कामधेनु देवेन्द्र पर इस समय परम सानुकूल हैं। हमारे गोविन्द का अभिषेक करो! इस अनन्त का अभिषेचन-जल तुम्हारे मेघों को पूर्ण कर देगा!' मेघपूर्ण हों या न हों, इन्द्र ने तो यह बात सोची ही नहीं। वे तो श्रीकृष्णचन्द्र को अभिषिक्त करने की सेवा का सौभाग्य पा जायँ, यही बहुत है।

अभिषेक होगा। गायों के इन्द्र का अभिषेक भी तो उसी प्रकार होगा। श्यामसुन्दर ने मुकुट, पटुका, वनमाला—सब एक ओर उतार दिया। कछनी को पहनकर पीताम्बर भी उनके साथ रख दिया गया। हाथ में लकुट लेकर वह शिला पर बैठ गया। कामधेनु आकाश में इस प्रकार स्थित हो गयीं कि उनके स्तनों से झरती धारा श्रीकृष्ण के मस्तक पर पड़े। चल रहा है यह दुग्धस्नान।

इन्द्र के स्मरण करते ही ऐरावत ने अपनी सूँड़ों से दिव्य स्वर्णघटों में भरकर स्वर्मन्दाकिनी का जल देना प्रारम्भ किया। 'वज्र-प्रहार के कलुष से कलुषित भुजाएँ इस अभिषेक से पवित्र हों!' देवराज के हाथों और ऐरावत में होड़-सी चल रही है। ऐरावत अपनी आठ सूँड़ों से घड़े भर रहे हैं; परंतु सुरपति के हाथों उन्हें रिक्त होने में विलम्ब ही नहीं लगता।

'सहस्र शीर्षा पुरुषः....' अन्तरिक्ष में यह मन्त्र-पाठ चल रहा है। देवगुरु, ब्रह्माजी तथा सनकादि महर्षियों को अपने वेदपाठ को सार्थक करने का इससे सुन्दर अवसर कब प्राप्त हो सकता है।

अभिषेक हो रहा है—कामधेनु के अमृतपय, मन्दाकिनी के दिव्य जल की धाराओं से अखण्ड अभिषेक। श्यामसुन्दर स्नान कर रहा है। वह आज गोविन्द हो गया। अप्सराएँ नृत्य कर रही हैं, गन्धर्व गान कर रहे हैं। देवर्षि, तुम्बुरु आदि अपने-अपने वाद्य सार्थक करने में लगे हैं। पुष्प-वर्षा हो रही है! देवता स्तुति कर रहे हैं।

नीचे बछड़े कूद रहे हैं! गायें हुंकार कर रही हैं, उनके स्तनों से दुग्धधारा चल रही है। वृक्षों से मधु-स्राव हो रहा है। वृक्षों पर एक भी डाल नहीं, जो फलभार से झुक न गयी हो। एक

भी फल नहीं, जो पूर्ण पक्व न हो गया हो ! गिरिराज पर मणियाँ ऊपर चमकने लगी हैं। श्याम गोविन्द जो हो गया।

× × × ×

कनूँ, तूने स्नान किया है ?' अलकें आर्द्र हैं। अङ्गराज धुल गया है ! कछनी का वस्त्र गीला है और वह है भी हाथ में ही। एक बार कछनी खोल लेने पर कन्हैया फिर कहाँ उसे बाँध पाता है। धोती पहिन लेता है, यही बहुत है। कछनी तो धोती के ऊपर भद्र के हाथों बँधी ही उसे पसंद है। दाऊ का अनुमान ठीक ही है। वह स्नान न किये होता तो वनधातु के चित्र कहाँ जाते उसके अङ्गों से।

'भद्र, मैया से आज कहना है कि कनूँ अकेले स्नान करने लगा है !' वरूथप ने रोष प्रकट किया। मैया ने मना कर रक्खा है कि श्याम अकेले कहीं जल में उतरने न पाये। उसने यह जो विचित्र तिलक कर रक्खा है, पहले तिलक के स्नान से धुल जाने पर किसी ने शीघ्रता में उसे तिलक लगाया है ! वनमाला के पुष्प भी विचित्र हैं। अवश्य यह कहीं दूर गया था !

'क्यों गोविन्द ?' भद्र ने कहा और स्वयं अपने ही सम्बोधन से चौंका भी। कन्हैया भी कुछ चौंका—'इसको किसने यह नाम बता दिया। इस नाम से तो कामधेनु ने सम्बोधित किया है।

'गोविन्द !' मधुमङ्गल ने भद्र की ओर देखा। इस नाम से कन्हैया चिढ़ता तो नहीं—ऐसा हो तो आनन्द आये।

'गौ, गोप, गोकुल और उसका इन्द्र—गोविन्द !' भद्र ने व्याख्या तो कर दी; पर कैसे कर दी, यह वह भी बता नहीं सकता। 'वह पानी बरसाने वाला इन्द्र—बड़ा घमंडी है और अच्छा भी नहीं है। उसने हम लोगों को पानी से बहा ही देना चाहा। हम उसे इन्द्र नहीं मानेंगे। हमारा इन्द्र यह कन्हैया रहेगा। गोकुल का, हम गोपों का, गायों का इन्द्र—यह गोविन्द !'

'गोविन्द !' बालकों को आनन्द आया भद्र की बात सुनकर। हाँ, उनका इन्द्र कनूँ को छोड़कर दूसरा कोई नहीं रहेगा !' श्याम को घेर लिया उन्होंने—'गोविन्द ! गोविन्द ! गोविन्द !'

—❀○❀○❀—

दिव्य-दर्शन

'नैते सुरेशा ऋषयो न चैते त्वमेव भासीश मिदाश्रयेऽपि ।
सर्वं पृथक्त्वं निगमात् कथं वदेत् युक्तेन वृत्तं प्रभुणा बलोऽवैत् ॥'

—भागवत १०।१३।३९

वही कार्तिक शुक्लपक्ष की देवोत्थानी एकादशी। आज सखाओं ने श्याम को 'गोविन्द' बना लिया है। सुरभि और इन्द्र का अभिषेक प्रकारान्तर से विधिवत् पूर्ण हुआ है। बाबा ने, मैया ने और व्रजके गोप-गोपियों ने उपवास किया है। देवोत्थानी को उपोषित रहकर उन्होंने अनन्तशायी भगवान् नारायण का जागरण-महोत्सव किया है। दिन भर व्रज में विधिवत् पूजा होती रही है। सबके हृदय में एक ही कामना है—कृष्णचन्द्र सुखी रहे!

एकादशी का व्रत तो विशेषतः रात्रि-जागरण का पर्व है। व्रजराज के द्वार पर श्रीजनार्दन के सम्मुख आज रात्रि भर नृत्य गीत, हरिकीर्तन चलता रहेगा। गोप अपने नाना प्रकार के वाद्यों के साथ नृत्य कर रहे हैं। गोपियाँ मङ्गलगान कर रही हैं। तरुण गोप अनेक प्रकार के व्यायाम और शस्त्र-कलाएँ प्रदर्शित कर रहे हैं।

श्याम अपने सखाओं के साथ बहुत देर तक जागता रहा। उसे उत्सव में आनन्द आ रहा था। आज उसने भी भगवत्प्रसाद का फलाहार ही लिया है। जब मैया ने देखा कि उसके नेत्रों में आलस्य आने लगा है, तब उसे ले जाकर सुला दिया। वह तो मानता ही नहीं था। सब बालक आज नन्दभवन में ही सो गये हैं। मैया ने सबके लिये व्यवस्था कर दी है। गोप-गोपियों को यहाँ रात्रि-जागरण करना है तो बच्चे घरों को कैसे जा सकते हैं। श्याम भी सबके साथ किसी प्रकार सोने चला गया। अकेले तो आज वह जाता ही नहीं। अब बालक सो रहे हैं। मैया निश्चिन्त हुई है। जनार्दन उसके श्याम को सदा निर्विघ्न रक्खें!

× × × ×

'सवेरा हो गया!' बाबा को सदा ब्राह्ममुहूर्त के प्रारम्भ में ही स्नान कर लेने का अभ्यास है। उसी समय एकाग्र चित्त से भगवान् नारायण का ध्यान और पूजा हो सकती है। उन्होंने लोटा, धोती मँगायी। नित्य कर्म से निवृत्त हुए और श्रीयमुनाजी के किनारे स्नान करने पहुँच गये। वृद्ध गोप भी उनके साथ हैं। आकाश में श्वेत अविरल बादल हैं। चन्द्रमा उनके पीछे दिखायी नहीं पड़ते। धुँधली चन्द्रिका से प्रातःकालीन प्रकाश का भ्रम हो रहा है, इस ओर किसी का ध्यान ही नहीं गया।

'हर!' बाबा ने सबसे पहिले जलमें प्रवेश किया। डुबकी लगायी। मस्तक जल से बाहर निकला और वे करुण स्वर में पुकार उठे 'कृष्ण···!' कोई उनके चरण पकड़कर जल में खींच रहा है। शब्द पूरा भी नहीं हुआ और वे जल में अदृश्य हो गये।

'व्रजराज डूब गये!' साथ के गोपों ने जल में प्रवेश किया, परंतु वे कोई सहायता न कर सके! 'दौड़ो! दौड़ो! व्रजेन्द्र डूब गये!' उन्होंने पुकार मचायी।

'बलराम! श्रीकृष्ण! अरे नन्दराज डूब गये! दौड़ो!' कोई नहीं सोचता कि छोटे बालक क्या करेंगे यदि दौड़ भी आये। स्वभाव हो गया है 'राम—श्याम' को पुकारने का और आपत्ति में तो स्वभाव ही व्यक्त होता है। उस समय कुछ सोचा थोड़े ही जा सकता है।

'व्रजराज डूब गये!' दूर उत्सव में पुकार पहुँची। गोपों ने सुना और वे भी पुकारते हुए भागे। गोपियों ने सुना और वे भी यमुना-तट की ओर दौड़ पड़ीं।

'व्रजराज डूब गये !' पता नहीं कैसे शब्द कन्हैया के कानों तक पहुँचे। वह चौंककर उठा। गोप उसका नाम लेकर पुकार रहे हैं। उसी प्रकार दौड़ पड़ा वह। उसने देखा ही नहीं कि लगभग उसीके साथ दाऊ और दूसरे सखा भी उठ गये हैं। सब उसके पीछे ही दौड़े आ रहे हैं।

× × × ×

'राम, श्याम, दौड़ो ! अरे नन्दबाबा यमुनाजी में डूब गये !' पूरी-अधूरी पुकारें सब के मुख से निकल रही हैं। सहस्रों गोप जैसे वस्त्रों में थे, वैसे ही धारा में कूद पड़े हैं। कोई एक ओर, कोई दूसरी ओर गम्भीर डुबकियाँ लगा रहा है। यमुना का अतल प्रवाह—यदि दिन होता तो देखा जाता कि गोपों ने मथकर उसे मटमैला कर दिया है केवल कुछ क्षणों में।

मैया तो जैसे पागल हो गयी हैं। यदि गोपियों ने उन्हें पकड़ न रक्खा होता तो अवश्य वे यमुना में कूद गयी होतीं। उनके नेत्र फट-से गये हैं। उनमें अश्रु तक शुष्क हो गये हैं। एक-टक वे प्रवाह को घूर रही हैं और बराबर प्रयत्न कर रही हैं, अपने को गोपियों के हाथों से छुड़ा लेने का। गोपियों के दुःख का पार नहीं। रोदन-क्रन्दन—शोक, बस वहाँ यही है आज !

'श्याम !' इस उन्मत्त दशा में भी केवल मैया ने अब तक श्रीकृष्ण को पुकारा नहीं है। वे क्यों चौंकी ? वह आया श्याम ! वह दौड़ा। आया प्रवाह की ओर। वह—वह कहाँ जा रहा है जल के समीप ? मैया ने चिल्लाकर पुकारा—'पकड़ो ! श्याम को पकड़ लो ! श्याम ! श्याम !'

एक बार पूरा बल लगाकर मैया ने अपने को छुड़ा लिया ! वे झपटीं श्रीकृष्ण की ओर ! श्रीकृष्ण तो आया—दौड़ता आया और जैसे जल है ही नहीं ! वह दौड़ता ही चला गया ! उसने नहीं सुनी मैया की पुकार। नहीं सुना गोप-गोपियों का क्रन्दन ! नहीं देखा गोपों का विकल उद्योग ! नहीं देखा समीप तक आ पहुँचे सखाओं और दाऊ को ! वह तो सीधे दौड़ता आया और जैसे यमुना के तल तक दौड़ता ही चला गया हो !

'कन्हैया !' मैया मूर्छित होकर दो पद दौड़कर ही गिर गयीं। श्याम तो यमुनाजल में अदृश्य हो गया। गोप-गोपी-बालक सब जहाँ जैसे थे, जैसे शरीर से एक साथ प्राण चले गये हों ! ज्यों-के-त्यों, जहाँ-के-तहाँ रह गये। श्रीकृष्णचन्द्र को रोकने के लिये सभी ने मुख खोले थे—मुख खुले ही हैं और पलकों में गति नहीं। नेत्र फैल गये हैं। जल में जो गोप हैं—बस, वे ही श्यामसुन्दर जहाँ अदृश्य हुआ है, उस स्थान को घेर कर कण-कण छान डालने के प्रयत्न में हैं।

योगमाया—वे अन्तरिक्ष में हँस क्यों रही हैं ? वे यदि शक्ति न दें तो इन व्रजवासियों में जीवित कौन रहेगा ? अपने अधीश्वर के स्वजनों की रक्षा वे न करें तो क्या वह उन्हें क्षमा कर देंगे !

× × × ×

'यह हमारे समय में कौन विक्षेप करने आ गया !' ब्राह्ममुहूर्त हुआ नहीं था। रात्रि के तृतीय प्रहर का आसुरी काल था। यमुनाजल में विक्षोभ हुआ। वरुण का एक सेवक असुर उस समय वहाँ जल के तल में घूम रहा था। जलाधीश ने उसे आदेश दिया है कि यदि कोई ब्राह्ममुहूर्त से पूर्व जल में प्रवेश करे तो उसे दण्ड दिया जाय। 'इस समय कौन आ गया !' उसने स्नान करने वाले के पैर पकड़े और भीतर खींच लिया।

'कौन है यह !' क्रूर असुर के लिये स्वाभाविक तो यह था कि उसने जिसे डुबाया था, उसे मार देता। उसे दण्ड देने की आज्ञा भी थी; परंतु जिसे उसने पकड़ा था, वह पता नहीं कैसा पुरुष था। असुर अनुभव कर रहा था कि उसके हाथ भस्म हुए जा रहे हैं। इस पुरुष को दण्ड देने की शक्ति वह अपने में नहीं पाता। उसे भय भी है कि कहीं छोड़ देने से जलाधीश असंतुष्ट न हों ! उसने अपनी समग्र शक्ति से शीघ्रता की वरुणलोक तक पहुँचने में। अभियुक्त को वह वरुणदेव के सम्मुख उपस्थित कर देना चाहता था। यमुना से गङ्गा और वहाँ से समुद्र होकर वरुणलोक नहीं—देवता सूक्ष्मतम होते हैं। असुर को यमुना के जलतत्व की सूक्ष्मता में ही प्रवेश करके वरुण-लोक की यात्रा करनी थी।

'श्रीव्रजराज !' वरुणदेव सिंहासन से वेगपूर्वक उठे और भूमि पर गिरकर उन्होंने बाबा को प्रणिपात किया। बेचारा असुर भय से दूर खड़ा काँप रहा था। पता नहीं उससे कितनी बड़ी भूल हुई है। क्या दण्ड मिलेगा उसे।

'मुझे क्षमा करें !' लोकपाल—असुर-सम्राट् का रत्नमुकुट बाबा के पदों में अवनत हुआ। 'अपराध तो हुआ ही; परंतु मेरा यह तुच्छ भवन श्रीचरणों से पवित्र हुआ। आज मैं धन्य हो गया !'

'यह सब हो क्या रहा है ?' बाबा समझ ही नहीं पा रहे हैं कि वे कहाँ हैं, जागते हैं या स्वप्न देख रहे हैं। 'यह देवलोक-जैसा ऐश्वर्यमय लोक और उसके ये अधीश्वर—ये क्यों उन्हें इस प्रकार दीन बनकर प्रणाम कर रहे हैं ?'

'मूर्ख !' वरुण ने बड़ी कठोर दृष्टि से उस असुर को देखा। यदि बाबा का आतिथ्य तत्काल न करना होता तो अवश्य अपने पाश से उसकी चमड़ी अभी उधेड़ डालते।

'नहीं ! नहीं ! इसका कोई अपराध नहीं ! इस बेचारे को कुछ मत कहो !' बाबाका दयामय हृदय तो यहाँ भी साथ ही है न। अपने सम्मुख क्या किसी को वे प्रताड़ित होते देख सकते हैं। किसी का गुरुतर अपराध भी क्या उनकी करुणा को कभी थकित कर सकता है।

'बाबा ! मुझे चरण-सेवा का सौभाग्य मिलना चाहिये !' ये महान् देवता भी उन्हें बाबा क्यों कह रहे हैं, यह बात बाबा नहीं समझ सकेंगे। 'देवता सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र होते हैं। उनके जब जो मन में आता है, वही करते हैं। कभी वे मनुष्य से पूजा लेते हैं और कभी स्वयं उसकी पूजा करके प्रसन्न होते हैं। उनकी अवज्ञा नहीं करनी चाहिये। वे जो आज्ञा दें, मनुष्य का तो उसे पालन करना ही धर्म है।' बाबा ने अपना समाधान कर लिया। जलाधीश की पूजा स्वीकार किये बिना छुटकारा नहीं था।

× × × ×

'प्रभो !' बाबा का सत्कार पूरा हुआ ही नहीं था। होना भी नहीं था। वरुणदेव के अन्तर में जो उल्लास है, वह क्या क्रिया और पदार्थों से व्यक्त हो सकता है। उन्हें भली प्रकार अर्घ्यादि देने को अवसर भी नहीं मिला, श्रीकृष्ण पहुँच गये। जलेश ने द्वार तक दौड़कर उनके चरणों में दण्डवत् की।

बाबा देखते हैं, उनका कृष्णचन्द्र शान्त भाव से वरुण की पूजा स्वीकार कर रहा है। उसने इस प्रकार सिंहासन स्वीकार कर लिया, जैसे किसी तुच्छ सैनिक के यहाँ सम्राट् पधारे हों। वरुण तो फूले नहीं समाते। अर्घ्य, पाद्य, चन्दन, पुष्प-माल्य, वस्त्र, आभरण, नैवेद्य, नीराजन और एक-एक पूजनकृत्य शत-शत प्रकार से। सम्पूर्ण विभावरी (वरुणलोक) में नवीन उमंग, नया जीवन आ गया है। प्रचेता प्रेमोन्मत्त-से हो रहे हैं। बाबा अब समझ रहे हैं कि उनका इतना सत्कार क्यों हुआ था।

'आज मेरा लोकपाल होना सार्थक हुआ ! आज मैंने अपने जीवन का फल पाया ! आज यह पुरी धन्य हुई ! आपके श्रीचरण हमें आज मिले !' पूजनोपरान्त जलाधीश श्यामसुन्दर के सम्मुख हाथ जोड़कर खड़े हो गये। गद्गद कण्ठ से स्तुति करने लगे। 'सर्वेश्वर, मैं श्रीचरणों में प्रणत हूँ ! मेरा दूत महामूर्ख है ! वह समझता नहीं कि क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये ! उसका अपराध मेरा ही है ! मुझे आप क्षमा करें ! वह व्रजेन्द्र को यहाँ ले आया। आज तो उसका अपराध भी मेरे लिये वरदान ही हुआ। बाबा के आने से ही तो आप पितृवत्सल यहाँ पधारे ! अब मुझपर कृपादृष्टि हो !

'बाबा यहाँ कुछ दिन विराजते तो मैं सेवा से सार्थक होता !' वरुण जानते हैं कि व्रज में कितनी व्यथा व्याप्त होगी। अपराध हो गया, पर उसे बढ़ाना तो नहीं ही चाहिये। 'ऐसे भाग्य मेरे नहीं हैं। आप ले जायँ बाबा को अपने साथ ! व्रज की आतुरता स्मरण करके मैं अनुरोध को दुराग्रह नहीं बनाऊँगा !'

'आप निश्चिन्त रहें। कोई अपराध नहीं हुआ !' श्रीकृष्ण स्वयं शीघ्रता में हैं। उन्हें किसी प्रकार यहाँ के पूजन से छुटकारा लेना है। वे उठ खड़े हुए।

'बाबा !' श्यामसुन्दर ने पिता का हाथ पकड़ा।

'मेरे क्षेत्र तक तो मुझे साथ जाने की अनुमति होनी चाहिये !' जलेश ने सूचित कर दिया कि वे यमुनाजल से बाहर प्रकट न होंगे, परंतु उससे पूर्वक्षण तक पहुँचाने जायँगे। उनका चर जहाँ से बाबा को बलात् ले आया है, वहाँ तक वे पहुँचाने भी न जायँ, ऐसी अशिष्टता कैसे सम्भव है।

× × × ×

'श्याम !' मैया ने जल से ऊपर उठता मयूरमुकुट उस रात्रि में भी देख लिया ! उनके प्राण नेत्रों में और नेत्र उस यमुनाजल पर ही तो एकाग्र हैं।

'बाबा !' दाऊ ने दूसरी उल्लास-भरी पुकार की। कन्हैया एक क्षण में बाबा का हाथ पकड़े कटि से नीचे जल तक पहुँच गया। वह हँसता हुआ चला आ रहा है।

मैया ने दौड़कर श्याम को अङ्क में उठा लिया। बाबा विचित्र रीति से गम्भीर हो गये हैं। श्याम और बाबा दोनों अद्भुत वस्त्रों, अलंकारों और पुष्पमालाओं से अलंकृत हैं। यमुनाजी में से निकलने पर भी उनके शरीर या वस्त्र भीगे नहीं हैं। इन बातों की ओर किसी का ध्यान नहीं है। सब कन्हैया को हृदय से लगाने और बाबा को देखने तथा यथायोग्य उनका सम्मान करने में लगे हैं। जैसे श्याम और बाबा युगों के पश्चात् व्रज लौटे हैं।

× × × ×

'हुआ क्या था ?' सभी को जिज्ञासा है। बाबा ने जो देखा है, वह उनके मुख से ही प्रत्येक सुनना चाहता है। 'कन्हैया ने बाबा को वरुणलोक से लौटाया है ! जलाधीश इस प्रकार श्याम का सम्मान करते हैं, जैसे श्रीकृष्ण के सम्मुख वे तुच्छ सेवक हों !' बात घर-घर व्याप्त हो गयी है, सब सुन चुके हैं; परंतु गोपियों को मैया के मुख से ही सब सुनना है। व्रजेन्द्र ने उसे विस्तार से सब सुनाया होगा। जिसको जब अवकाश मिलता है, तभी वह पूछने आ जाती है। वृद्धा, बालिका, तरुणियाँ, नववधुएँ—सबको पूछना है। मैया के बताने से संतोष नहीं होता, वृद्धाओं के द्वारा वे बाबा से पूछती हैं। बालक, वृद्ध, तरुण पुरुष तो सब बाबा से पूछते ही हैं। एक बार सुनकर संतोष हो जाय, सो भी नहीं। बार-बार पूछा जाता है। बाबा और मैया भी सब सुनाने में आनन्द पाते हैं।

'बाबा तो जल में डुबकी लगाते ही मिल गये ! उन्होंने घबड़ाहट में कोई स्वप्न देखा है !' कन्हैया ने एक समाधान दे दिया है सखाओं को। मैया और बाबा से सखाओं ने इस समाधान का समाधान पूछा। 'बात तो श्याम की ही ठीक है !' बाबा को अब यही लगता है। मैया तो पहले दिन से सब कथा सुनाकर कहती आ रही है कि यह सब है व्रजेश का मनोविलास ही।

समाधान की अपेक्षा घटना में अधिक बल है ! व्रजेन्द्र और श्याम के वे वस्त्रा-भरण जो यमुना में से निकलते समय उनके शरीर पर थे, अभी कहीं गये नहीं हैं। वे व्रज के तो हैं नहीं। जलाधीश के देवपुष्प न होते तो क्या वे मालाएँ अब तक म्लान न होतीं। बाबा और श्याम भीगे क्यों नहीं ? बहुत से हृदयों को उस घटना की सत्यता पर संदेह नहीं है। वे उसे बाबा का मनोविलास मानने में समर्थ नहीं; भले, बाबा स्वयं उसे अब मनोविलास कहें।

'हम पहले कहते आ रहे हैं कि श्रीकृष्ण साधारण मनुष्य नहीं ! वे कोई देवता हैं !' सायंकाल बाबा के द्वार पर गोप-मण्डली बैठी है। आज कार्तिकी पूर्णिमा है। रात्रि भर भगवान् नारायण का गुणगान होगा। पूजन होगा। सभी गोप एकत्र हो गये हैं।

'जिसका लोकपाल वरुण भी इस प्रकार सम्मान करें, वह तो उनसे बहुत बड़ा होना चाहिये !' एक गोप समीप के गोपों से कह रहा है।

'वरुण के लोक का ही इतना ऐश्वर्य व्रजेन्द्र बतलाते हैं तो श्रीकृष्ण के लोक की क्या विभूति होगी !' दूसरे ने चर्चा की दिशा बदल दी।

'श्रीकृष्ण लोकपालों से बड़े हैं तो साक्षात् ईश्वर ही होंगे ! वे समर्थ हैं ! क्या वे अपना लोक हम लोगों को दिखलायेंगे ?' इस विचार में बड़ी उत्सुकता है। वह वरुण का लोक नहीं देख सका, इसका उसे खेद है। बाबा के साथ ही उस दिन स्नान करने गया होता तो वरुणलोक तो देख लेता।

कन्हैया कब का गो-चारण से लौट आया है ! कलेऊ करके वह सखाओं के साथ बाहर आया। 'ये लोग क्या कर रहे हैं एकत्र होकर !' सब बालक वहीं एकत्र हो गये। बात-चीत में लगे गोपों ने श्रीकृष्ण को देखा। उनके नेत्र इस उत्सुकता से उसकी ओर उठ गये, जैसे नेत्रों में प्रार्थना—अनुरोध हो—'अपना दिव्य धाम, सूक्ष्म लोक हमें नहीं दिखलाओगे ?'

'इस संसार में अविद्या से मोहित जीव अनेक कामनाओं से प्रेरित होकर नाना प्रकार के कर्म करता है और उन कर्मों के फलस्वरूप संस्कारों के कारण ऊँची-नीची योनियों में घूमा करता है। वह जानता ही नहीं कि उसका लक्ष्य कहाँ है, उसको कहाँ जाना है !' श्यामसुन्दर के मन में योगमाया यह क्या प्रेरणा कर रही हैं ?

व्रजवासी साधारण जीव नहीं हैं। श्रीकृष्ण का अपना धाम गोलोक उनके इस वृन्दावन से भिन्न नहीं है। पर वे आज श्यामसुन्दर का वृन्दावन कहाँ देखना चाहते हैं। श्रीकृष्ण स्वयं ईश्वर हैं, उनका सूक्ष्मतम पद देखना है उन्हें ! अनेक कामनाओं से कर्म करके ऊँची-नीची गतियों में जीव संसार में घूमते रहते हैं। व्रजगोपों की कामना न सामान्य कामना है और न उन्हें संसार में घूमना है। उनके सम्बन्ध में अधिकार का प्रश्न ही व्यर्थ है। अधिकारी-अनधिकारी तो सामान्य वासनात्मक कर्म करनेवाले जीवों में देखे जाते हैं। ये तो नित्य अधिकारी हैं ! इनकी कामना ही इन्हें ब्रह्मज्योति का दर्शन कराने के लिये पर्याप्त होनी चाहिये।

श्रीकृष्ण ने देखा, उसके ही स्वजन उसकी ओर साभिलाष देख रहे हैं। मनोनिरोध और निदिध्यासन की आवश्यकता इनको क्यों हो ! अन्त में सबको उसकी करुणा पर ही अवलम्बित होना पड़ता है। 'यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः !' यहाँ करुणासागर में करुणा की क्या कमी। योग-माया जो चाहती हैं—हो !

क्या हुआ—यह शब्दों में आने की बात नहीं है। गोपों के शरीरमात्र वहाँ हैं। मन है ही नहीं तो वर्णन क्या हो। एकरस-शान्त-सच्चिदानन्दघन-निर्गुण, निराकार, निर्विशेष-विभु। ये शब्द भी अपर्याप्त हैं। मन एवं बुद्धि से परे वह अक्षर ज्योति ! उसे निर्विकल्प समाधि, अपरोक्षानुभूति, ब्रह्महृदावगाहन—चाहे जो नाम दिया जा सकता है; पर है वह अवर्णनीय।

एक-दो नहीं—सब-के-सब उस परम तत्त्व में एक हो गये ! निमग्न हो गये। किसने इच्छा की, इसका प्रश्न नहीं। वह चित्-तत्व का उल्लास जब स्वयं उसकी ओर से हुआ, कोई पृथक् रह नहीं सकता था।

'यह क्या किया योगमाया ने ?' श्यामसुन्दर नहीं चाहता कि उसके स्वजन इस प्रकार निश्चल हो जायँ। आनन्दघन व्रज से निर्विशेष तत्त्व में उनको क्या रस प्राप्त होगा। व्रज के जागरण के सम्मुख तो यह ब्रह्मदर्शन निद्रा ही है न ? तमोहीन ज्योतिर्मय ज्ञानरूप निद्रा सही। एक बार निद्रा आ गयी तो फिर उसे क्रमशः जागरण में लाना ही उचित है। सहसा जागने से स्वास्थ्य पर आघात होता है। श्यामसुन्दर ने सबको उस स्थिति से उठाया।

जैसे हम निद्रा के पश्चात् स्वप्न देखने लगते हैं—गोप उस चित्-प्रकाश से कारण जगत् में आ गये। 'अनन्त विस्तृत उज्ज्वल क्षीरसमुद्र। उत्तुङ्ग हिलोरें और उसमें सहस्र फणों को उठाये कमलतन्तु-से धवल भगवान् शेष। उनके मस्तकों की मणियों से निकलता कोटि-सूर्य-प्रकाश ! शेषजी के कुण्डलीभूत भोग (शरीर) पर नीलोज्ज्वल, चतुर्भुज सुकुमार-शरीर भगवान् नारायण आधे लेटे हुए। भगवान् नारायण के कोमल अरुण पादतल, उज्ज्वल नखचन्द्रिका, तडित्कान्ति पीताम्बर, हृदय पर कौस्तुभ, वनमाला, श्रीवत्स, मुख पर मन्द हास्य। अपने करुणापूर्ण दीर्घ दृगों से वे

गोपों की ओर ही देख रहे हैं। मणिजटित मुकुट, रत्नों के मकरकुण्डल, केयूर, अङ्गद आदि आभरण। सुनन्दादि पार्षद चारों ओर खड़े हैं। सम्पूर्ण देवता, ऋषि, प्रह्लादादि भक्त हाथ जोड़े हैं। मूर्तिमान् बेद स्तवन कर रहे हैं! अविद्या-विद्या, योगविभूतियाँ—पता नहीं कितने लोग वहाँ सेवा में उपस्थित हैं!'

'भगवान् नारायण—ये चतुर्भुज न हों, यह ऐश्वर्य न हो तो अपना कन्हैया ठीक ऐसा ही है!' गोपों के मन में वहाँ संकल्प उठा। नेत्र खुल गये! कन्हैया तो सामने ही खड़ा है!

'बाबा, तुम अभी से सो रहे हो?' कन्हैया ने व्रजेन्द्र की गोद में बैठते हुए उन्हें सचेत कर दिया। वह ताली बजाकर हस रहा है—उसकी हँसी ही तो माया है—वह हँस रहा है—'सब अभी से सो रहे हैं!'

'सो ही रहे थे! झपकी आ गयी थी! पिछले तीन दिनों से विचित्र बातें सोचते-सोचते वैसा ही स्वप्न देखने लगे!' गोपों ने इतना और समाधान कर लिया—'जैसे हमने अभी स्वप्न देखा है, वैसे ही उस दिन जल में डूबने पर व्रजेन्द्र को भी कुछ भ्रम हो गया। कन्हैया तो यह रहा! अपने इस व्रज से सुन्दर तो इस स्वप्न का लोक भी नहीं! व्यर्थ ही व्रजेश ने वरुणलोकवाले स्वप्न को इतना महत्व दे दिया।'

चीर-हरण

"मदशिखण्डशिखण्डविभूषणं मदनमन्थरमुग्धमुखाम्बुजम्।
व्रजवधूनयनाञ्चलवञ्चितं विजयतां मम वाङ्मयजीवितम्॥"

—श्रीलीलाशुक

मुरली—वह सम्मोहनजननी मुरली बजती है, प्राण आकुल हो उठते हैं। प्रातः मयूर-मुकुटी सखाओं से घिरा, गायों को आगे करके मन्द-गयंदगति से झूमता निकलता है। उसके चञ्चल नेत्र, चपल कटाक्ष, मन्द हास्य और वह यहीं तक रहता कहाँ है—किसी को मुख बनाकर चिढ़ाता जायगा, किसी को अँगुलियाँ नचायेगा और किसी को लक्ष्य करके अलकों या वनमाला से लेकर पुष्प फेंक देगा। उसके लिये तो सब परिहास है; पर.....।

वन में प्रायः दधि-दान की धूम होती है। इसी बहाने उसकी एक झाँकी मिल जाती है। एक बार उसका स्पर्श प्राप्त होता है। वह झाँकी—उसे देखने से क्या नेत्र कभी तृप्त होते हैं? यह तो अग्नि को घृत से बुझाने का प्रयास है। उत्कण्ठा उद्दीप्त ही होती जाती है। वह—वह सदा नेत्रों के सम्मुख ही रह पाता! सायंकाल लौटता है—कितने युगों के पश्चात् आया-सा जान पड़ता है सायंकाल! धूलिसनी अलकें, पलकें, वनमाला, धातुचित्रित श्याम शरीर, वन्य कुसुमों के आभरणों से मण्डित नटनागर, सखा उन्मुक्त हास्य में ताली बजाते संग-संग गाते हैं "जय जय कुँवर कन्हाई!" गायें हुंकार करके बार-बार पीछे देखती हैं। वह अधरों पर मुरली रक्खे ऊपर, नीचे, इधर-उधर चञ्चलता से देखता, घूमता-झूमता, अपने अङ्ग और अलकों के पुष्पों को छज्जों पर फेंकता, मुसकाता, खिलखिलाता निकल जाता है। उसकी यह धूम.....।

बालिकाएँ—वे बालिकाएँ ही तो हैं, वे स्वयं नहीं जानतीं कि उनके हृदय क्यों बेचैन हैं। उनके अन्तर में क्यों यह उद्वेलन उन्हें आकुल किये रहता है। श्याम—अवश्य वे इतना जान गयी हैं कि इस श्याम के बिना वे रह नहीं सकेंगी। श्याम!—उनके हृदय का प्रत्येक स्पन्दन यही पुकारता है। उनके मन में, देह में वही मुरलीवदन श्याम प्रतिफलित होता है। वे स्वप्न में श्याम-श्याम कहकर बोलती हैं; खेल में, किसी के पुकारने पर, प्रायः आत्मविस्मृत-सी 'श्याम!' पुकार उठती हैं और तब स्वयं संकुचित हो जाती हैं। माता-पिता, दूसरे सुहृद्—सब जानते हैं और जानना कठिन क्या है। उन्हीं के मन कौन से उनके हाथ में हैं। माताएँ सायंकाल से पूर्व ही किसे देखने बार-बार भवनद्वार तक जाती हैं? गोप किसकी वंशी-ध्वनि सुनते ही सब कार्य छोड़कर मार्ग की ओर दौड़ते हैं? जब वृद्धों और तरुणों की यह दशा है तो वे तो बालिकाएँ हैं,—उनका हृदय त नन्हा-सा है।

'श्याम—यह तो उसकी दया है जो हम सब की ओर देखकर मुस्करा उठता है, कभी पुष्प फेंक देता है। हम इतनी दूर उसके लिये दही-नवनीत लेकर जाती हैं, यह क्या उससे छिपा है? दया करके ही वह उसकी छीना-झपटी कर लेता है। अब वह सात वर्ष का हो गया। आठवें के भी दो महीने बीत गये, किसी दिन व्रजेश्वर उसकी सगाई कर देंगे।' बालिकाएँ इस कल्पना से ही अस्तव्यस्त हो जाती हैं—'श्याम की सगाई हो जायगी! वह किसी दूसरे का हो जायगा! वह उनका नहीं रहेगा'

'सगाई तो होगी ही। श्रीव्रजराज का एकमात्र कुमार कबतक इसी प्रकार रहेगा। व्रजेश्वर का ऐश्वर्य—सुना है कंस चक्रवर्ती सम्राट् होकर भी उनसे खुली शत्रुता करने का साहस नहीं कर

कर पाता। छिप-छिपाकर असुर भेजता है। उसके इतने असुर मारे गये, फिर भी कुछ कर नहीं पाता। व्रजेश्वर का ऐश्वर्य न भी हो, यह त्रिभुवनसुन्दर—राजाओं में स्वयंवर ही तो होता है, इस के गले में वरमाला डालने में तो वे सिन्धुसुता भी अपने को धन्य मानेंगी। आभीर-कन्याओं को कौन पूछता है। व्रजपति अपने युवराज की सगाई किसी भी सम्राट् की कन्या से करना चाहें तो वह कृतार्थ मानेगा अपने को और मोहन--वही क्यों हमारी चिन्ता करेगा। उसे तो देव-कन्याएँ भी दुर्लभ नहीं हैं!' कौन बताये इन श्रीकीर्तिकुमारी को कि उनमें जो है, वह केवल वही वनमाली जानता है। देवकन्याएँ, सिन्धु-सुता उनकी दासियों की चरणसेवा का अधिकार पा जायँ तो वे अपना अहोभाग्य मान लेंगी। उनमें इतना साहस नहीं है कि वे स्पर्धा की बात भी सोच सकें; किंतु प्रेम शङ्कालु होता ही है। ये बालिकाएँ—उनका नन्हा हृदय और यह चञ्चल कन्हैया, उनकी आशङ्काओं को निरर्थक भी कोई कैसे कह दे।

भगवती पूर्णमासी—व्रज की अधिदेवता के समान वे स्नेहमयी—उज्ज्वल केश, वलीपलित-युक्त काय, वीतराग तपस्विनी वृद्धा—बालिकाओं का हृदय उनके परम वात्सल्य के कारण उन्हीं के सम्मुख खुल पाता है। उन्हीं की गोद में बैठकर वे कुछ संकोचहीन हो पाती हैं और सिकुड़ती, सकुचती कुछ मन्द स्वर में कह पाती हैं। व्रजपुर के आवास से बाहर, वनसीमा की वह पावन भूमि, वह सुरम्य आश्रम ही बालिकाओं का एक आश्वासन है और वहाँ दिन भर उनके लिये कोई बाधा नहीं। भगवती पूर्णमासी का वह स्नेहपात्र—वह महाचपल, हास्यमूर्ति चिरकुमार मधुमङ्गल श्याम के साथ वनमें चला जाता है और सायंकाल ही लौटता है।

बालिकाओं ने किसी प्रकार अपनी मनोव्यथा का संकेत दिया भगवती को। तपस्विनी—वात्सल्यमूर्ति—उनसे छिपा क्या है; किंतु—किंतु वे करें क्या, श्यामसुन्दर तो साधन-साध्य नहीं हैं, वे तो स्वयं ही कृपा करें तो····वे नीरव हो गयीं। दो क्षण को पलकें बंद हो गयीं और जैसे वे ध्यानस्थ हो गयी हों। 'तुम—तुम्हीं कुछ कर सकती हो—तब तुम अपनी ही आराधना करो!' भगवती प्रायः उन्मना-सी होकर कभी-कभी पता नहीं क्या-क्या कहा करती हैं। बालिकाओं को कोई आश्चर्य नहीं हुआ, जब उन्होंने श्रीवृषभानुनन्दिनी को अङ्क में बैठाकर उनकी ठुड्ढी पकड़कर मुख अपनी ओर करके यह सब कहा।

'दो ही दिन हैं कार्तिकी पूर्णिमा को, उसी दिनसे तुम सब प्रातःकाल स्नान करके भगवती महामाया भद्रकाली कात्यायनी की पूजा करो। वे ही तुम्हारा अभीष्ट पूर्ण करेंगी! उन्हीं से प्रार्थना करो!' दो क्षण में ही भगवती ने अपने को स्थिर कर लिया। उन्होंने एक आराधना बता दी।

× × × ×

'मैं कल बड़े सबेरे यमुनास्नान करने जाऊँगी?' माता ने कन्या की बात पर ध्यान ही तब दिया, जब उसने बताया कि वह कल से भवानी का पूजन करेगी। यमुनास्नान और पूजन—बड़ी अच्छी बात है। कन्याएँ तो गिरिजा-पूजन करती ही हैं। माता को क्या आपत्ति होनी है। ये लड़कियाँ नित्य वन में जाती हैं और डरकर तंग होती हैं, वहाँ जाने की इनकी धुन छूटे तो अच्छा ही है।

'बड़े सबेरे, सूर्य भगवान् के निकलने से पहिले ही स्नान कर लेंगी हम सब!' भोली बालिका ने माता को अनुकूल देखकर उल्लास प्रकट किया।

'इतनी क्या शीघ्रता है!' माता कैसे मान ले कि उनकी यह फूल-सी बच्ची अँधेरे ही उठ-कर चल देगी यमुनाजी की ओर। वैसे अभी से ये लड़कियाँ ब्राह्ममुहूर्त में ही जग जाती हैं और तभी उन्हें स्नान कर लेने की धुन सवार होती है। माता ने समझाया 'मैं स्वयं साथ चलूँगी, सेवि-काएँ चलेंगी और तुम सबों को नित्य पूजा करा देने के लिये आचार्य से आज तुम्हारे पिता प्रार्थना कर देंगे।'

'नहीं, भगवती पूर्णमासी ने आदेश दिया है कि दूसरा कोई साथ नहीं जायगा ! मैं अपनी पूजा कर लूँगी !' इतनी भीड़-भाड़ में भला, कैसे होगी वह पूजा।

'तू अकेली जायगी ?' आशङ्का से माता ने गोद में बैठी पुत्री की ओर देखा ! भला, यह कैसे अँधेरे में जा सकेगी। कैसे इसे एकाकी यमुना में स्नान को भेजा जा सकता है।

'अकेली कहाँ, सब सहेलियाँ रहेंगी।' बालिका ने इस प्रकार कह दिया, जैसे उसकी सहेलियाँ रक्षा के लिये पर्याप्त ही तो हैं।

'भगवती पूर्णमासी ने आदेश दिया है—अच्छा !' मन नहीं मानता, हृदय को संतोष नहीं होता; किंतु भगवती पूर्णमासी—वे महातपस्विनी योगमाया जगदम्बा—उनका आदेश टाला कैसे जा सकता है। कितना स्नेह है उनका इन बालिकाओं से, कितनी दयामयी हैं। जब उन्होंने आदेश दिया है तो अवश्य मङ्गल ही होगा। सामान्य कारण से वे इन बच्चियों को ऐसा आदेश दे कैसे सकती हैं। माता के वात्सल्य ने मङ्गल-भावना के कारण अपने को संयत किया।

× × × ×

'तुम सब वहाँ जल में अधिक देर न रहना, शीत लग जायगा ! शीघ्र लौटना ! पूजा के समय परस्पर परिहास मत करना !' माता को कैसे संतोष हो। बड़ी विवशता है, ये सब लड़कियाँ—बच्ची ही तो हैं ये। स्वभाव से चञ्चल हैं। माता की यह हृदय-कलिका—बहुत भोली, बहुत सीधी, बहुत अबोध है। भगवती पूर्णमासी ने दूसरे किसी को साथ जाने से रोक दिया है—उनका आदेश भला, कैसे भंग किया जा सकता है। लड़कियाँ तो ब्राह्ममुहूर्त से भी पहिले उठ गयीं। कदाचित् रात्रि में नींद ही नहीं आयी है। माता ने जितनी देर सम्भव हो सका, विलम्ब करने का प्रयत्न किया।

सोने की मणिमण्डित डलिया, उसमें अक्षत, पुष्प, रक्तचन्दन, सिन्दूर, कुङ्कुम, कण्ठसूत्र, मधु, दूध, कर्पूर, फल, नैवेद्य—पता नहीं क्या-क्या इन सबों ने स्वयं सजाया है। दिनभर उन्हें एक ही काम रहा—कल पूजा के लिये क्या, कितना रक्खेंगी वे अपनी डलिया में यह दिनभर का कार्य तो उनका बन गया। अब यह कार्यक्रम चला महीने भर के लिये।

उषःकाल का झुटपुटा होते-न-होते श्रीकीर्तिकुमारी अपने भवन से पूजा की डलिया लिये निकल पड़ीं। व्रज के घरों से दूसरी बालिकाएँ उनके द्वार तक पहुँचीं लगभग उसी समय। उन्हें लिये बिना क्या अकेली जा सकती हैं ये ? सबके हाथों में पूजा की डलिया है। भला, भगवती की अर्चा की सामग्री क्या दूसरे को ढोने के लिये दी जा सकती है ? वह भी क्या कोई भार है। सबने एक दूसरे के हाथ पकड़ लिये और उनका वह सम्मिलित सुमधुर गान—अप्सराएँ, किन्नरियाँ, तुम्बुरु—व्यर्थ है इनकी चर्चा; भगवती वीणापाणि की वीणा से भी ऐसी कोमल, श्रुतिसम्मोहन स्वरलहरी उठ सकती है—सन्देह ही है। वह क्या गा रही हैं ? व्रज में श्याम के मनोहारी चरित्रों को छोड़कर और भी कुछ गेय हो तो यह प्रश्न उठे। गोपों के आलाप में, गोपियों के दधिमन्थनगानमें, वन्दियों के यशोगान में—यहाँ सर्वत्र ही तो उसी नवघनसुन्दर का मङ्गलचरित गाया जाता है।

बालिकाएँ न बरसाने के मुख्य घाट पर गयीं और न उस प्रख्यात पनघट पर। उन्हें आराधना करनी है, अतः एकान्त चाहिये। बरसाने के मुख्य घाट से हटकर वे एक नीरव पुलिन पर पहुँचीं और उन्होंने पुलिन की स्वच्छ भूमि पर अपनी डलिया रख दीं। तटपर पहुँचकर शरीर पर के सब वस्त्र उतार कर रख दिये। ये कौशेय वस्त्र—ये तो नित्य पवित्र हैं। इन्हें धोने की आवश्यकता ही नहीं होती। घर से स्नान के पश्चात् बदलने के लिये वस्त्र लाने की बात उन्होंने सोची ही नहीं। इसकी आवश्यकता भी नहीं। ये छः से साढे नौ वर्ष तक की बालिकाएँ—इन्हें भला, यह विचार भी कैसे हो कि उनके नंगे स्नान करते समय कोई इधर आ जाय तो ?—आ जाय तो हुआ क्या !

उन सबों ने स्नान किया—मार्गशीर्ष का पावन मास कल से प्रारम्भ होगा, परंतु उसका स्नान तो कार्तिकी पूर्णिमा से आज ही प्रारम्भ हो गया है। शीत बढ़ गया है, जल में देर तक रहा नहीं जा सकता। डुबकियाँ लगाकर वे बाहर आ गयीं, वस्त्रों पर जल के छींटे देकर पहिन लिये और

झटपट पूजा करने बैठ गयीं। वेणियों से बूँदें टपक रही हैं, मुख पूरे भीगे हैं, शरीर पोंछा नहीं गया, सूक्ष्म वस्त्र भीगे शरीर से लगकर भीग गये स्थान-स्थान से—यह सब देखने, सोचने-समझने योग्य अभी वे हुई ही कहाँ हैं और फिर इस समय—इस समय तो उनका ध्यान यहाँ है ही नहीं। उन्हें पूजा करनी है। वे महामाया भद्रकाली कात्यायनी की पूजा करेंगी--भला, कहीं ऐसा भी हो सकता है कि उनकी पूजा से जगदम्बा प्रसन्न न हों। फिर भगवती पूर्णमासी ने कहा जो है। उन्हें लगता है कि भद्रकाली उनकी पूजा की प्रतीक्षा में ही हैं--उनकी पूजा की प्रतीक्षा वे न करें, तो करें किसकी प्रतीक्षा।

× × × ×

बालिकाएँ अपनी-अपनी डलिया लेकर मण्डलाकार बैठ गयीं। उन्होंने मृदुल लाल-लाल करों से ऊपर की रेत एक ओर हटाकर स्वच्छ की भूमि और वहीं की कुछ गीली रेत एकत्र करके बड़ी-सी स्तूपाकार पिण्डी बनायी। अपने हाथों से उसे धीरे-धीरे थप-थपाकर ऐसा कर दिया कि पूजा सामग्री चढ़ने पर फिसले नहीं। यह हो गया उनका भद्रकाली-पीठ। जिसके भ्रू-विलास के संकेत पर महामाया कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों का सृजन-पालन-संहार किया करती हैं, उसीने बड़ी उत्कण्ठा से यह पीठ बनाया है। इसमें भी क्या प्राण-प्रतिष्ठा की आवश्यकता है? इतना जाग्रत्, इतना भाव-शवल पीठ कभी भी बना या बन सकेगा—स्वयं भद्रकाली भी नहीं बना सकतीं; किंतु इस पीठ को वे महामाया कात्यायनी प्रणाम ही कर सकती हैं। इस पर चरण रखकर अर्चा का उपहार स्वीकार करने का साहस उनमें नहीं। यह तो उनका भी वन्द्य, आराध्य पीठ ही है।

आराधना है ही भाव की वस्तु। विधि—वहाँ भाव ही मुख्य विधि है और फिर ये लड़कियाँ—ये क्या जानें विधि। किसी ने पहले चन्दन चढ़ाया, किसी ने पुष्प और किसी ने नैवेद्य से महामाया को पहले तृप्त करके तब चन्दन-पुष्प से शृङ्गार करना ठीक समझा। वे भी जब क्षुधातुर होती हैं तो पहले भोजन करके ही तो वेणी गुँथाने बैठती हैं। उनके करों के नैवेद्य के लिये महामाया क्षुधातुर न होंगी, यह कहने का साहस कौन करेगा? क्रम कुछ भी रहा हो, उन्होंने पूजा तो कर ही दी। डलिया में जो कुछ ले आयीं थीं वे, सब चढ़ा दिया। चन्दन, अक्षत, पुष्प जो बच भी गया था, उसे दुबारा चढ़ा दिया। कुछ बचा क्यों रह जाय।

पूजा समाप्त हुई। सबने अञ्जलि बाँधी, नेत्र बंद कर लिये और एक ही प्रार्थना करनी है सबको—'कात्यायनी, जगदम्बा, भगवती, महामाया, तुम सर्वेश्वरी हो! तुम सब कुछ करने में समर्थ हो! ये व्रजपति नन्द के जो कुमार हैं, उन्हें हमारा पति बना दो!' बड़ी सीधी-सी प्रार्थना, पर सबके कमल-दल-विशाल दृगों की बंद पलकों से बिन्दु टपक रहे हैं। सबने वहीं पर भूमि पर मस्तक रखकर प्रणाम किया।

बात क्या है? पूजा हो गयी, प्रार्थना भी हो गयी; पर वे महामाया तो प्रगट नहीं हुईं। उन्होंने अलक्ष्य रहकर ही 'एवमस्तु' कह दिया होता, वह भी तो नहीं हुआ। बालिकाओं ने एक क्षण भूमि पर मस्तक रक्खे-रक्खे ही प्रतीक्षा की—कदाचित् वे भद्रकाली आती हों। भगवती पूर्णमासी झूठ तो बोलतीं नहीं, तब क्यों कात्यायनी ने उन्हें आशीर्वाद नहीं दिया। उन्हें तो आशा थी कि पूजा करते ही भगवती प्रगट हो जायँगी। 'कुछ भूल हुई होगी, यह पुष्प कुछ मलिन है, यह फल पूरा पका नहीं है, मेरा पूजा का क्रम ठीक नहीं था—भला, कहीं सिन्दूर भी पीछे चढ़ाया जाता है! अच्छा कल—कल सब खूब सावधान रहेंगी। कल सब ठीक-ठीक पूजा करेंगी। कल तो भगवती प्रगट हो ही जायँगी।' पता नहीं क्या-क्या मन्त्रणा कर डाली उन्होंने परस्पर। कल—कल—कल, इस प्रकार दिन टलता गया। वह कल कभी आज बनता ही जो नहीं।

भगवती भद्रकाली—इतना संकोच, इतना असमंजस, इतनी अन्तर व्यथा उन्होंने भी कभी अनुभव नहीं की। वे जिनके पदों में स्वयं प्रणत रहती हैं, वे ही—वे ही आज-कल नित्य अपनी सहेलियों के साथ उनकी श्रद्धा, उत्कण्ठा, उल्लास से पूजा करती हैं! यह हेमन्त का शीतकाल, इसमें बड़े सबेरे वे सुकुमार कर पूजा की सामग्री भरी डलिया ले आते हैं। कालिन्दी के हिम-शीतल जल में

स्नान करके कितनी आशा से वे पूजा करने बैठती हैं, प्रार्थना के समय जब उनके विशाल लोचनों से बिन्दु टपकने लगते हैं, भद्रकाली, कात्यायनी, महामाया कहकर जब वे पुकारने लगती हैं, इच्छा होती है, प्रकट होकर, हाथ जोड़कर, उनके श्रीचरणों में मस्तक रखकर कह दूँ—'आज्ञा दो, देवि!' और कृतार्थ हो जायँ; किंतु - किंतु ये श्यामसुन्दर, ये साधन-साध्य कहाँ हैं। इनको देने की बात—यहाँ भी तो केवल इच्छा का अनुवर्तन करने ही का अधिकार है महामाया को। वे भी केवल इन मयूरमुकुटी से प्रार्थना ही तो कर सकतीं हैं। जब वह नटनागर श्रीकीर्ति-किशोरी की नित्य-नित्य की प्रार्थना को अभी सुनकर भी अटका है, तो उनकी प्रार्थना किस गिनती में है; लेकिन आज पूर्णिमा है, आज बालिकाओं के अनुष्ठान की पूर्णिमा है, आज भी क्या वे निराश ही लौटेंगी? महामाया का हृदय आज आकुल है। वे अपने आराध्य को कातर की भाँति स्मरण करने लगीं हैं।

'आज मार्गशीर्ष की पूर्णिमा है—भगवती पूर्णमासी ने पूर्णिमा तक स्नान-पूजन करने का आदेश दिया था। आज ही महामाया प्रकट होंगी। व्यर्थ हम सब बीच में प्रतीक्षा करती थीं। यदि बीच में ही उन्हें प्रत्यक्ष होना होता तो भगवती एक महीने तक की पूजा ही क्यों बतातीं। भूल तो हम सबों की है; लेकिन आज पूर्णिमा है। आज तो कात्यायनी अवश्य 'एवमस्तु' कहेंगी।' बालिकाओं का विश्वास तो कभी विचलित हुआ ही नहीं। आज उनकी डलिया अधिक सुसज्ज, अधिक भारी हो गयी है। आज उनके कलकण्ठ के गीत गद्गद स्वर के कारण कुछ विचित्र हो गये हैं। आज उनके शरीर का रोम-रोम पुलकित है।

× × × ×

कन्हैया आज बड़े सबेरे जग गया है। दाऊ का जन्म-नक्षत्र है, वह वन में नहीं जायगा। मैया की इच्छा नहीं कि श्याम एकाकी वन में जाय; पर वह तो आज अँधेरे में ही उठ गया। गो-दोहन के लिये आज उसने बाबा को उकताहट में डाल दिया। गायों के पुकारने से पूर्व ही वह गोष्ठ में पहुँच गया।

'भद्र, बड़ा आलसी है तू! उठेगा भी या मैं सब गायें दुह लूँ!' आज उसीने बाबा के पलँग पर सोये भद्र को जगाया। दाऊ को तो जाना नहीं है, अतः उसे जगाने की भी आवश्यकता नहीं जान पड़ी; गोदोहन में आज ही दाऊ को सम्मिलित नहीं होने दिया इस नटखट ने।

'मैया, जल्दी से कलेऊ करा दे! मैं आज चुपचाप गायें और बछड़े ग्राम से बाहर ले जाकर तब शृङ्ग बजाऊँगा। सब सोते से उठेंगे और भाग-दौड़ मचायेंगे, बड़ा आनन्द आयेगा।' मैया कहाँ कर पाती है इतनी शीघ्रता; लेकिन श्याम की तत्परता ने उसे विवश किया। आज सूर्योदय के पूर्व ही उसने गायें खोल दीं और यह बजा उसका शृङ्ग!

'मैं कितना सबेरे उठा, तुझे पता भी है!' सखाओं के एकत्र होने पर श्याम ने श्रीदामा को सम्बोधित किया।

'चाहे जितना सबेरे उठे, मेरी बहिन से पहले थोड़े ही उठा होगा। वह तो अपनी सखियों के साथ कब की श्रीयमुनाजी के तटपर चली गयी और अब तो स्नान करके पूजा भी करती होगी।' श्रीदामा भला, हार क्यों मान ले। क्या हुआ जो वह कुछ देर से जगा, उसकी बहिन जब शीघ्र जग गयी तो भाई होने के नाते इस गौरव में उसका कुछ तो भाग होगा ही।

'अच्छा, यह बात है! तभी वे सब आज-कल वन में दही नहीं ले आतीं। आओ, देखें तो कैसी पूजा करती हैं सब!' श्याम ने यमुनाजी की ओर मुख किया।

'जैसे वे सब घाट पर तुझे मिल ही जायँगी!' श्रीदामा ने बताया कि वे सब तो उधर दूर अकेले में नहाने जाती हैं।

'गायों को इधर ही चरने दो! चुपचाप आओ! किसी की पूजा में विघ्न करना अच्छा नहीं होता।' छिपकर ही देखना है तो धीरे-धीरे चुपचाप तो चलना ही पड़ेगा।

'दाम, देख न! सब नंगी स्नान कर रही हैं! है न बुरी बात! अच्छा छकाता हूँ इन्हें!' श्रीदाम ने जब समाचार दिया, उसका अनुमान कुछ बहक गया। ये लड़कियाँ अभी तो स्नान ही कर

रही हैं। कन्हैया ने एकबार उसके मुख की ओर देखा, कंधे पर हाथ रक्खा और बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये वह क्या झुका हुआ, दबे पैर चला जा रहा है पुलिन पर।

'अरे, श्याम ने तो सबके कपड़े उठाकर लाद लिये कंधों पर! वह भागा, वह तो समीप के मौलिश्री के वृक्ष पर ही चढ़ गया।' लड़कों ने तालियाँ बजायीं।

लड़कियाँ चौंक पड़ीं। वे आज उल्लास में हैं। आज उनकी पूजा का अन्तिम दिन है। आज तो अवश्य जगदंबा प्रगट होंगी। परस्पर जलके छींटे देकर विनोद करने लग गयीं थीं वे। उन्होंने बालकों की तालियाँ और हास्यध्वनि सुनी, चौंककर तट की ओर देखा! 'ये सब क्यों इस प्रकार हँस रहे हैं!' बालकों की दृष्टि के साथ उनकी दृष्टि भी वृक्ष पर गयी। 'अरे' वे एक दूसरे का मुख देखने लगीं। उनके अधरों पर हास्य खेल गया। 'वह बैठा है पत्तों के बीच से झाँकता मयूर-मुकुटी। वे हँस रहे हैं उसके विशाल किंचित् अरुणाभ लोचन। वे रक्खी हैं पास की शाखा पर साड़ियाँ और उत्तरीय। वह तो इस प्रकार डालपर जम कर बैठा है, जैसे उसे वहाँ से उतरना ही नहीं है।' बालिकायें कुछ और गहरे जल में जाकर खड़ी हो गयीं। क्या करें वे, परस्पर एक दूसरी को और उस कदम्ब पर बैठे नटखट को देखकर मन्द-मन्द हँसती जा रही हैं।

'अरे, तुम सब इस प्रकार क्यों खड़ी हो! यहाँ आओ और अपने-अपने वस्त्र ले लो! मैं सच कहता हूँ, तुम सब तो स्वयं इस सबेरे-सबेरे के स्नान और पूजा से दुबली हो गयी हो; भला, तुमसे क्या हँसी की जाय। तुम्हारे यहाँ आते ही मैं वस्त्र दे दूँगा। मैं झूठ नहीं कहता, तुम्हें विश्वास न हो तो इन में से किसी सखा से पूछ लो। मैने तो पहले भी कभी झूठ नहीं कहा है, ये सब इसे जानते हैं। तुम सब चाहे एक-एक करके आकर वस्त्र ले लो, चाहे सब साथ आ जाओ!' आज जैसे बड़ा दयालु हो गया है यह चपल। लड़के तो ताली बजा-बजाकर हँस रहे हैं और वह भी हँसता जाता है। पाँच से नौ वर्ष तक के ये लड़के, सब सोचते हैं कि कन्हैया ने अच्छा छकाया है इन सबों को।

बालिकाएँ—उनमें भी कोई पूरे दस वर्ष की नहीं है। इन बालकों में अधिकांश के भाई हैं, लेकिन सब नटखट हैं। सब आज उन्हें चिढ़ाने पर उतारू हो गये हैं। उन्हें जल से बाहर आने में क्या संकोच होना था, यदि ये लड़ या दूसरे कोई गोप होते; लेकिन यह श्यामसुन्दर—इसी को पति बनाने के लिये वे इस प्रातः-स्नान में लगी हैं। इस वनमाली के सम्मुख कैसे नंगे निकला जाय। इसके सम्मुख लज्जा का अनुभव तो स्वाभाविक है। उन्हें भी हँसी आ गयी श्याम की इस चपलता पर। जैसा वह स्वयं है, वैसे ही सखाओं को साक्षी बना लिया है इसने। सब परस्पर एक दूसरे को देखकर खिलखिलाकर हँस पड़ीं और वहीं जल में खड़ी रहीं।

'कन्हैया, तू बड़ा निष्ठुर है! देख न, सबके कमल-जैसे मुख लाल-लाल हो गये हैं शीत से। सब काँपने लगी हैं। दे भी दे इनके वस्त्र।' लेकिन भद्र की बात आज कौन सुने? ये सब लड़के इतने मग्न होकर ताली बजा रहे हैं, कूद रहे हैं, हँस रहे हैं कि भद्र के शब्द किसी को सुनायी पड़ ही नहीं सकते। 'अच्छा, मेरी बात नहीं सुनता तू!' भद्र यह उपेक्षा कैसे सह ले। 'सब दुष्ट हैं। यह श्रीदाम—यह भी दुष्ट है। इसे अपनी बहिन पर दया भी नहीं आती। बिचारी भोली लड़की कैसी काँप रही है। कितना लाल हो गया है उसका मुख। मैं इन सबों से बोलूँगा ही नहीं।' भद्र ने लकुट उठाया और गायें की ओर अकेला ही रूठकर चला गया। किसी का ध्यान ही उसकी ओर नहीं गया।

यह हेमन्त का शीतकाल, यह यमुना का हिम-शीतल सलिल, कण्ठ तक जल में खड़ी ये सुकुमार बालिकाएँ, इनका शरीर काँप रहा है। पतले अधर हिलने लगे हैं। कब तक वे इस कष्ट को सह सकती थीं। उनमें एक ने बड़ी नम्रता से कहा—'मोहन! तुम तो श्रीव्रजपति के कुमार हो, तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिये। व्रज में सब लोग तुम्हारी बड़ी प्रशंसा करते हैं, तुम हमें अत्यन्त प्रिय हो; देखो, हम सर्दी से काँप रही हैं, हमारा वस्त्र दे दो!' कन्हैया क्या बातों में आनेवाला है? वह तो वह नीप के सघन पत्तों में खिलखिला कर हँस रहा है!

'यह कहे तो श्याम मान लेगा !' लड़कियों ने श्रीवृषभानुकुमारी को प्रेरित किया। भला, यह भोली लड़की क्या कहे। मुख नीचे करके बड़ी कठिनता से वह कोकिल-कण्ठ कूजित-सा हुआ—'श्यामसुन्दर, हम सब तो तुम्हारी दासियाँ हैं ! तुम जो कहो, वही करेंगी। तुम स्वयं धर्म को जानते हो, हमारे वस्त्र दे दो !'

'बड़ा धर्मज्ञ है यह—ऐसे कहीं प्रार्थना की जाती है !' एक लड़की का तेज श्रीराधा की इस प्रार्थना को नहीं सह सका। उसने झटपट बात पूरी की—'देखो, यदि तुम वस्त्र नहीं दोगे तो हम जाकर व्रजराज से कह देंगी।

'जा, तू कहकर आ !' धमकी का उत्तर तो कन्हाई ने दिया; पर अभी जो धमकी से पूर्व वह नम्रतर स्वर था, भला, क्या उसकी उपेक्षा की जा सकती है। मोहन का स्वर भी भावक्षुब्ध हो गया। 'तुम सब यदि मेरी दासियाँ हो और मेरी बात तुम्हें माननी है तो यहाँ आकर अपने वस्त्र ले लो!

'इस भोली बालिका के भोलेपन का कुछ ठिकाना !' श्याम आज्ञा दे रहा है तो वह एक क्षण भी कैसे रुकी रह सकती है। सबसे सुकुमार, पुष्प-सी कोमल, सम्भवतः शीत अब इसे असह्य हो गया है। सखियों को अच्छा तो नहीं लगा; किंतु श्रीवृषभानुनन्दिनी ने तो उनकी ओर देखा तक नहीं। दोनों हाथ नीचे करके गुप्ताङ्ग छिपा लिया और जल से तट की ओर मुख नीचे किये चल पड़ीं वे। सखियाँ अब कैसे रुकीं रहें। उनके हठ का अर्थ भी अब क्या रहा। सब उसी प्रकार पीछे चलीं और उस नीप के नीचे आकर खड़ी हो गयीं।

श्याम ने सबके वस्त्र उठाकर अपने कंधों पर लाद लिये। 'तुम सबों ने जल में इतने दिनों नंगी होकर स्नान किया। बाबा कहते हैं कि जल के देवता होते हैं। नंगे नहाने से उनका अपमान होता है। तुम्हारी पूजा में तो रोज यह अपराध हुआ है।' बड़ी गम्भीरता से उसने यह बात कही है। हास्य का लेश तक नहीं उसकी वाणी में।

'नित्य अपराध हुआ !' बालिकाएँ चौंकीं। कदाचित् इसी अपराध से भगवती कात्यायनी ने अबतक उनको आशीर्वाद नहीं दिया। तब क्या उनका उद्देश सफल नहीं होगा ? उनका यह व्रत व्यर्थ गया ?' उनके विशाल दृग भर गये। उनके काँपते अधर सूखने-से लगे। चिन्ता से उनका मुख कुछ और झुक गया।

'चिन्ता करने की बात नहीं है !' श्यामसुन्दर की स्वस्थ वाणी सुनायी पड़ी। 'बड़ा सरल है इस अपराध का प्रायश्चित्त। तुम सब अञ्जलि बाँधकर मस्तक से लगाकर भगवान् सूर्य को प्रणाम कर लो और फिर अपने वस्त्र ले लो !'

भद्र—वह रूठकर चला तो गया, पर क्या इस प्रकार एकाकी दूर जा सकता है वह। उसके कान पीछे ही लगे हैं, कोई उसे पुकारेगा, कोई मनाने आयेगा। नीप के उच्चवृक्ष से सुनी उसने भी श्याम की वाणी। 'ओह, कितना दयालु है उसका कन्हाई ! बिचारी लड़कियों का महीने भरका परिश्रम मिट्टी में मिला जाता था, यह कनूं अपनों की बिगड़ी बनाने सदा ही तो समय पर उपस्थित हो जाता है। वह नटखट है सही—पर बड़ा दयालु है ! उससे क्या रूठा जा सकता है।' भद्र का मान स्वतः गल गया। वह लौटा।

बालिकाएँ—उन्हें तो जैसे प्राणदान मिला। उन्होंने अपने छोटे-छोटे कोमल हाथ जोड़ लिये और मस्तक से लगाकर ऊपर देखा। पूर्व दिशा में जैसे किसी ने होली खेली है। वह ज्योतिर्मय भास्कर-बिम्ब और उसके मध्य—श्याम के ठीक पीछे ही वह भगवान् आदित्य का बिम्ब है और ऐसा लगता है, मोहन के मुख-मण्डल का ही वह ज्योतिर्वलय हो। व्रजेन्द्रनन्दन ही जैसे उस बिम्ब का अधिष्ठाता है। मुग्ध-सी एक पल दृष्टि उस छविपर स्थिर रही और फिर लड़कियों के मस्तक श्रद्धा से झुक गये।

मोहन सबके वस्त्र पहचानता है। एक साथ, एक क्षण में उसने सबको उनके वस्त्र उनके ऊपर गिरा दिये। सबको लगा, वस्त्र पहले उसे ही मिला है। न तो वस्त्र देने में भूल हुई और न

विलम्ब। लड़कियों ने झटपट वस्त्र पहिने और अब उन्हें जाना चाहिये; पर वे तो मुख नीचे किये, पद के नखों से भूमि कुरेदती खड़ी ही हैं।

सखाओं ने देखा, श्याम वृक्ष से उतर आया है। लड़कियों में प्रत्येक ने देखा, वह उसी के सामने कूदकर खड़ा हो गया है। लड़कियों ने सिर झुका रक्खा है--उन्हें भ्रम होना सम्भव है। 'तुम सबों ने जिस उद्देश से यह भद्रकाली की आराधना की है, वह मुझे ज्ञात है। अगले वर्ष शारदीय रात्रियों में तुम मेरे साथ क्रीड़ा करना!' और भी कुछ कह गया वह--परंतु लड़कियों के श्रवण-हृदय तो यहीं तृप्त हो गये। आगे सुनने, समझने योग्य न उनका मन है और न उन्हें आवश्यकता है।

'कनूँ, तू इन सबों से कब तक अनुनय करेगा और क्षमा माँगेगा। श्रीदाम ने चिढ़ाया। 'हमारी गायें दूर चली गयीं!'

सचमुच गायें दूर चली गयी हों तो? वह कूदता-उछलता सखाओं के मध्य में आ गया। लड़कियाँ देखती रहीं--देखती रहीं उसे।

—❀⊂❀⊂❀—